हिंदी बालग्रंथावली

प्रथम श्रेणी.

: प्रकाशक :

धी ज्योति कार्यालय लीमीटेड.

जुमा मसीद के सामने, अहमदाबाद.

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी • • पुष्प १

श्री ऋषभदेव

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ वि. | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पीरमशाहरोड,
अमदावाद.

बालकों के माता-पिता के प्रति—

(गुजराती-संस्करण से)

शुष्क-तत्वज्ञान, साधारण-मनुष्यों की बुद्धि में नहीं आता। उनकी समझ में यह तभी आता है, जब कथाओं के द्वारा उन्हें समझाया जाय। सम्भव है, इस प्रकार कथाओं द्वारा दिये गये उपदेश का कोई प्रत्यक्ष-प्रभाव न दीख पड़े, किन्तु यह तो निश्चित ही है, कि सूक्ष्म-रीति से इन कथाओं का संस्कार, सुननेवाले के मन पर पड़ता रहता है। यही कारण है, कि जैन-साहित्य का एक बड़ा भाग इस प्रकार की कथाओं से परिपूर्ण है। समय तथा लोकरुचि के अनुकूल, इन कथाओं के विद्वान लेखकों ने, शैली तथा भाषा का उपयोग किया है, तथापि जिस प्रकार माला की प्रत्येक गुरिया एक ही सूत्र में गुँथी होती है, उसी प्रकार ये सब कथाएँ शान्त-रस—वैराग्य-भावना की पुष्टि में ही रची गई हैं।

इन कथाओं की रचना का उद्देश्य, मनुष्य-शरीर में रहनेवाली पाशविक-वृत्तियों को उत्तेजित कर, नीच-कोटि का आनन्द देना नहीं है। यही कारण है, कि इनमें श्रृङ्गार, वीर, करुणा तथा अद्भुत आदि सभी रसों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग होने पर भी, उन्हें केवल गौण-स्थान

ही दिया गया है—अर्थात् इन रसों को कभी प्रधानता नहीं दीगई। इन कथाओं का उद्देश्य, मनुष्य—जीवन में रहनेवाले कषाय की अग्नि को शान्त करके, महान्-अमृत—आत्मज्ञान रूपी अमृत—का रस चखाना है, जिसमें उन्हें काफी सफलता मिल चुकी है।

" भिन्न—भिन्न स्थलों पर रहनेवाले मनुष्यों को, कथाओं के भिन्न—भिन्न स्वरूपों द्वारा ही शिक्षा दी जा सकती है " इस महान्—सत्य को दृष्टि में रखकर ही इन कथाओं की रचना की गई है। इनमें, केवल वास्तविकता की खोज के लिये मंथन करनेवाले, अनेक साहित्यिक—मनुष्यों को, असंभव—कथाएँ, केवल अर्थहीन तथा अनावश्यक प्रतीत होती हैं। किन्तु, वे यह बात भूल जाते हैं, कि आजकल भी, वास्तविकता के महान्—पुजारी पाश्चात्य—देशों में, पहले भूमिका के लिये उप—वार्ताओं का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया जाता है। सारी कथाएँ वास्तविक ही होनी चाहिएँ, यह कोई आवश्यक बात नहीं है। कल्पना—शक्ति का, स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग करने मात्र से, कथा लिखने का महत्व किंचित् भी कम नहीं होता। बल्कि, जिस उद्देश्य से लेखक कथा लिखता है, उस उद्देश्य को पुष्ट करने के लिये वह काफी कल्पना—शक्ति का उपयोग करता है, जिसके फलस्वरूप कथा का महत्व अधिक हो जाता है। यद्यपि, इस विषय की चर्चा करने का स्थान यह नहीं

है, तथापि प्रसंगवशात् इतना कहना उचित प्रतीत होता है।

आज से, कुछ वर्ष पहले, छपाई की कला का प्रचार न था। किन्तु, उस समय ये बातें, सम्भवतः जनसमाज में अधिक फैली हुई थीं। इसके अनेक कारण हैं। जीवन-संग्राम, जटिल न होने के कारण, व्याख्यान आदि शान्तिपूर्वक सुने जाते थे। पुस्तकें, यद्यपि कम होती थीं, किन्तु उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ा जाता था। अवकाश के समय ये कथाएँ मित्र-मंडली में कही जाती थीं। सुधरी हुई माताओं के बच्चे, शायद ही कहीं ऐसे होते हों, कि जिन्हें माता की भक्तिपूर्ण तथा मीठी-वाणी से इन महान्-व्यक्तियों के उत्तम-चरित्र श्रवण करने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो। लेखक को तो इसका अपूर्व-लाभ प्राप्त हुआ है, तथा अन्य मनुष्यों को भी इसी प्रकार का लाभ प्राप्त करते देखा गया है।

किन्तु, जीवन-पथ की दिशा बदल जाने के कारण, आज की माताएँ, धर्म-संस्कार से दूर होती जाती हैं। अपने धर्म तथा महा-पुरुषों के जीवन का जिन्हें काफी ज्ञान हो, ऐसी महिलाएँ बहुत कम संख्या में दिखाई देती हैं। यही कारण है, कि आज की सन्तान को, अपनी इस अमूल्य पैतृक-सम्पत्ति से वंचित रहने का अवसर आया है। यह परिस्थिति सर्वथा असह्य है। जब बालकों के सम्पर्क में आने पर मुझे यह विदित हुआ, कि महान्-से-महान्

पुरुष के जीवन के विषय में भी, दस–दस वर्ष की अवस्था तक उन्हें एक शब्द नहीं बतलाया गया है, तब अत्यन्त खेद हुआ। यही कारण है, कि आर्थिक–स्थिति अच्छी न होने पर भी, मैंने इस ओर थोडा–सा नम्र–प्रयास करने का प्रयत्न किया। आजतक, इसी प्रकार की, यानी बाल–साहित्य की ४० पुस्तकें (गुजराती में) प्रकाशित हो चुकी हैं। जिन्हें, जैन–समाज की प्रत्येक श्रेणी तथा बम्बई–प्रान्तीय शिक्षा–विभाग ने, अपनी प्राथमिक–पाठशालाओं में पुरस्कार तथा लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत करके, उत्तम–स्थान प्रदान किया है। यही कारण है, कि थोड़े ही समय में इन पुस्तकों की लगभग १ लाख से अधिक प्रतियें प्रकाशित करने में मैं समर्थ हुआ। इन बातों को देखते हुए, यह कहा जा सकता है, कि मेरा प्रयत्न किसी अंश में सफल हुआ। यद्यपि, जैन–बन्धुओं का अधिकांश–भाग, व्यापार–प्रिय होने के कारण, साहित्य की ओर उचित ध्यान नहीं देता है, तथापि अब वह समय आगया, जब कि यह उपेक्षा बिलकुल नहीं चल सकती।

ऐसी पुस्तकें, बचपन से ही बालकों के हाथ में देकर उन्हें विशाल जैन–साहित्य का लाभ प्राप्त करने का स्वर्ण-अवसर देने में, कौन से माता–पिता चूक सकते हैं?

जिन–जिन बन्धुओं ने, आजतक इस ग्रन्थावली के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की है, अथवा किसी प्रकार

की सहायता पहुँचाई है, उनसे हमारी एक ही प्रार्थना है, कि भविष्य में प्रकाशित होनेवाली पृथक्-पृथक् ग्रन्थमाला-ओं में भी वे ऐसी ही सहायता पहुँचावें, तथा जैन-साहित्य के प्रचार में हमारे साथ उचित सहयोग करें। वन्दे वीरम्।

श्रावण कृ० ८ सं. १९८६ वि० } विनम्र-संघसेवक—
खानपुर—**अहमदाबाद** } **धीरजलाल**

श्री ऋषभदेव

: १ :

अत्यन्त प्राचीन-काल की बात है। उस समय की, जब कि इस देश में न तो छोटे-छोटे ग्राम ही थे और न बड़े-बड़े शहर ही। सब जगह, हरी-हरी, सघन और सुहावनी झाड़ियें थीं। जहाँ देखो, वहीं अमृत के समान मीठे-फल वृक्षों पर लदे रहते थे। जहाँ देखो, वहीं अमृत के समान मीठा-पानी पीने को मिलता था। उस समय के मनुष्य, ऐसे अमृत के समान मीठे-फल खाते, अमृत के सदृश मीठा-पानी पीते तथा जंगल में भ्रमण करते हुए आनन्द करते थे। वह, पूर्ण-स्वतन्त्रता का युग था। उन दिनों कोई भी किसी से लड़ता-झगड़ता नहीं था, परस्पर वैर नहीं होता था और न आजकल की तरह लोग धोखेबाजी ही करते थे। प्रत्येक-मनुष्य पवित्र-हृदय होता था।

मनुष्य-समाज, इस प्रकार वन में रहते हुए आनन्दपूर्वक दिन काट रहा था, कि अकस्मात एक दिन वहाँ हाथी आगया। इस हाथी के साथ, एक मनुष्य की मित्रता होगई, अतः वह प्रतिदिन इस

हाथी पर चढ़ता और जंगल में भ्रमण करता। इस मनुष्य का नाम था विमलवाहन।

काल की महिमा विचित्र है। धीरे-धीरे फल-फलादि कम होते गये, जिसके कारण मनुष्यों में आपस में लड़ाई होने लगी। एक कहता, कि यह मेरा वृक्ष है और दूसरा कहता, कि नहीं यह तो मेरा झाड़ है। एक कहता, कि इसके फल मैं लूँ और दूसरा कहता, कि इन फलों पर मेरा अधिकार है। ऐसे समय में, उधर से विमलवाहन निकले। वे, हाथी पर बैठे थे और देवता की तरह सुन्दर मालूम होते थे। मनुष्य लड़ते-लड़ते उनके पास आये।

मनुष्यों ने, विमलवाहन से प्रार्थना की-"पिताजी! हम लोगों का झगड़ा निबटाइये"। विमलवाहन ने उन लोगों का झगड़ा मिटा दिया और वृक्षों को सब में बाँटकर बतला दिया, कि "यह झाड़ तुम्हारा है और वह झाड़ उसका है। जाओ, आपस में लड़ो मत और खाओ-पीओ तथा आनन्द करो।" विमलवाहन, इन सब टोलियों यानी कुल के स्वामी माने गये, अतः वे 'कुलकर' कहलाये।

: २ :

इस बात को, वर्षों बीत गये। विमलवाहन की

मृत्यु हो गई और उनकी छः पीढ़ियें और भी बीत गईं। सातवीं-पीढ़ी में हुए नाभिकुलकर। उनकी स्त्री का नाम था मरुदेवी। इन्हीं मरुदेवी की कोख से, सुन्दरता की खान तथा सोने के समान शरीर-वाले पुत्र-रत्न ने जन्म लिया, जिनका नाम हुआ श्री ऋषभदेव। वे, लाड़-प्यार से पाले-पोसे जाकर बड़े होने लगे।

: ३ :

एक दिन, देवी के समान सुन्दर एक रमणी वन में घूम रही थी। उस बेचारी के न माता थी, न पिता। लोगों ने उसे भटकते देखा, तो कृपापूर्वक उसे श्री नाभिकुलकर के पास ले आये। उस सुन्दरी का नाम था सुनन्दा।

उसे देखकर नाभिकुलकर ने कहा-"कन्या अत्यन्त उत्तम है, इसका विवाह ऋषभदेव के साथ करूँगा। एक तो यह सुनन्दा है और दूसरी है सुमंगला। इन दोनों के साथ ऋषभदेव का विवाह उत्तम होगा।"

ऋषभदेव के विवाह की तय्यारियाँ होने लगीं। सारी व्यवस्था ठीक होजाने पर, श्री ऋषभदेव का सुनन्दा तथा सुमंगला के साथ विवाह हो गया। इस

शुभ–विवाह से, सर्वत्र जय–जयकार होने लगा। सब लोग, आनन्द के साथ अपना समय व्यतीत करने लगे।

कुछ दिनों के बाद, सुमंगला के उदर से एक पुत्र तथा एक कन्या–रत्न ने जन्म लिया। इनके नाम हुए भरत तथा ब्राह्मी। इसी प्रकार सुनन्दा के भी एक पुत्र तथा एक पुत्री का जोड़ा हुआ, जिनके नाम हुए बाहुबली तथा सुन्दरी। सुमंगला के और भी अनेक पुत्र हुए।

: ४ :

अब तो, अमृत के समान फल भी कम हो गये और अमृत के समान मीठे–पानी भी न रहे। मनुष्य–समाज, पत्ते, फल–फूल तथा जंगल में उगे हुए अनाज खाकर दिन काटने लगा। किन्तु, यह अनाज हजम नहीं होता था। भूख लगने पर लोग अनाज खा तो लेते थे, किन्तु हजम न होने पर अन्त में दुःखी होते थे। इस कष्ट से दुःखी होकर, सब श्री ऋषभदेव के पास आये और उनसे बोले–"श्रीमान्! कोई उपाय बतलाइये, हम लोगों को खाया हुआ अनाज हजम नहीं होता।"

श्री ऋषभदेव ने कहा—अनाज को हाथ से

मींजो, पानी में भिजोओ और दोने में लेकर खाओ, तो बदहजमी न होगी।

अब, लोग ऐसा ही करने लगे। किन्तु, थोड़े ही दिनों के बाद फिर अजीर्ण का रोग प्रारम्भ हो गया। तब, सब ने कहा—" चलो श्री ऋषभदेवजी के पास चलें, उनके सिवा हमारा भला चाहनेवाला और कौन है ? "

सब मिलकर, श्री ऋषभदेवजी के पास आये और उनसे बोले—"भगवन् ! आपके कहने के मुताबिक ही हमने अन्न को सुधारकर खाया, किन्तु वह भी हजम नहीं होता। "

श्री ऋषभदेवजी बोले—" भिजाये हुए अनाज को मुट्ठी में कुछ देर दाबे रहो, तब उसे खाओ। "

मनुष्यों ने सोचा—" चलो, अब छुट्टी मिली। " किन्तु, थोड़े समय के बाद ही अजीर्ण फिर होने लगा। सब विचारने लगे, कि " अब क्या करना चाहिये ? " इतने ही में, बडे ज़ोर से हवा चली। वायु का वेग, इतना तेज़ था, कि आमने-सामने के वृक्षों की मोटी-मोटी डालियें परस्पर टकराती थीं, जिनसे ज़बरदस्त आवाज़ होती थी। जहाँ देखो, वहीं आँधी और बवण्डर दिखाई देते थे। डालियों

के टकराने से पैदा हुई आवाज़ कान फाड़े डालती थी। इस तरह झाड़ों की डालियों की परस्पर रगड़ से अग्नि उत्पन्न हो गई और वह धक् धक् करके जलने लगी।

बेचारे भोले मनुष्यों ने एक दूसरे से कहा— "मित्र! यह देखो, देखने के लायक यह कैसी बढ़िया-चीज़ आई है; वाह, यह तो खूब चमकती है, चलो इसे हम उठा लें।" किन्तु, ज्यों ही उसे उठाने को हाथ बढ़ाया, त्यों ही हाथ जलने लगा। "अरे बाप रे! यह तो बहुत बुरी चीज़ है" यों कह-कहकर सब चिल्लाने लगे। फिर, सब मिलकर श्री ऋषभदेवजी के पास गये और उनसे प्रार्थना की—"नाथ! जंगल में एक भूत आया है, वह सब को वहुत हैरान करता है; आप हम लोगों को उससे बचाने का प्रबन्ध कीजिये।"

श्री ऋषभदेवजी ने कहा—"उसे हाथ से मत छुओ, उसके आस-पास की घास उखाड़ डालो और उस पर लकड़ी डालते रहो। इस प्रकार उन जलती हुई लकड़ियों को इकट्ठी कर दो और उन पर तुम्हारा भिजोया हुआ अनाज पकाओ। इस तरह पकाया हुआ अनाज तुम खाओगे, तो तुम्हें फिर बदहजमी न होगी।"

सब मनुष्य, जंगल में आये और आग के आस–पास की घास उखाड़ डाली। धीरे–धीरे, जलती हुई लकड़ियों को इकट्ठा किया और एक बड़ा–सा आग का ढेर बना दिया। फिर भिजोकर अपनी मुट्ठी में रखे हुए अनाज को उस ढेर पर डाल दिया और बैठकर उसके पकने का मार्ग देखने लगे। किन्तु कहीं अनाज जैसी चीज़ इस तरह पकाई जाती है? थोड़ी ही देर में, सब जलकर राख हो गया। उसमें से वापस क्या मिल सकता था?

मनुष्यों ने कहा–" मित्र! यह तो सचमुच बहुत ही बुरा है। जितना भी दो, उतना सब खा-जाता है और वापस कुछ भी नहीं देता!"

सब, निराश होकर श्री ऋषभदेवजी के पास फिर आये और आग के स्वार्थीपन की शिकायत की।

श्री ऋषभदेवजी, हाथी पर बैठे हुए देवता की तरह शोभायमान हो रहे थे। मनुष्यों की शिकायत सुनकर, उन्होंने कहा—" गीली–मिट्टी का एक पिण्डा बनाकर लाओ।"

थोड़ी ही देर में गीली–मिट्टी का पिण्डा आ गया। श्री ऋषभदेवजी ने वह पिण्डा हाथी के सिर पर रखा और उससे एक सुन्दर तथा सुडौल बर्तन

बनाया। यह बर्तन, मनुष्यों को बतलाकर कहा— ऐसे बर्तन बनाओ और उनमें अनाज पकाओ ”।

सबने, अब ऐसा ही करना प्रारम्भ किया।

: ९ :

मनुष्य, बर्तनों में भोजन बनाकर खाने लगे। किन्तु अब यह प्रश्न पैदा हुआ, कि इन बर्तनों को रखा कहाँ जावे ? अब, मनुष्यों के शरीर भी पहले जैसे नहीं रह गये थे। रात–बिरात, जंगली जानवरों का हमला होने लगा, जिनसे रक्षा हो–सकना कठिन प्रतीत हुआ।

श्री ऋषभदेवजी ने विचारा–“अब मैं इन मनुष्यों को घर बनाना सिखलाऊँ, क्योंकि घर के बिना इनका काम नहीं चल सकता।” यों सोचकर, उन्होंने कुछ मनुष्यों को बुलाया और उन्हें घर बनाने की शिक्षा दी। इस के बाद, सब लोग घर बनाकर जंगल में रहने लगे।

किन्तु, घर कहीं यों ही शोभा दे सकते थे ? उनमें चित्रों का होना आवश्यक प्रतीत हुआ। अतः श्री ऋषभदेवजी ने कुछ मनुष्यों को चित्र बनाना सिखलाया।

थोड़े–समय के बाद, मनुष्यों को नंगे घूमने में लज्जा अनुभव होने लगी। उन्होंने सोचा—“ यदि

शरीर ढाँकने के लिये कुछ कपड़े हों, तो अच्छा हो! शरीर भी जिससे ढँका रहे और सर्दी-गर्मी से भी हमारी रक्षा हो"। उनके इस विचार को जानकर श्री ऋषभदेवजी ने सोचा, कि अब मनुष्यों का काम बिना कपड़े के नहीं चल सकता। अतः उन्होंने कुछ मनुष्यों को बुलाकर कपड़े बुनना सिखलाया।

: ६ :

इस प्रकार, धीरे-धीरे श्री ऋषभदेवजी ने मनुष्थों को कला तथा सभ्यता की समुचित शिक्षा दी। किन्तु, अब मनुष्यों के चित्त मैले होने लगे। जहाँ देखो, वहीं झगड़ा-लड़ाइ तथा जहाँ देखो वहीं परस्पर विग्रह। अन्त में, जब लड़ते-लड़ते मनुष्य दिक होगये, तब विवश होकर श्री ऋषभदेवजी के पास आये और उनसे कहने लगे-"प्रभो! कोई ऐसी व्यवस्था कीजिये, जिससे लड़ाई-झगड़ा बन्द हो, तो अच्छा है। कोई एक-दूसरे की बात भी नहीं सुनता और सदा कलह होता ही रहता है।"

श्री ऋषभदेवजी ने कहा-"यदि, तुम लोग किसी को अपना राजा बना लो, तो यह दुःख दूर हो जाय।"

मनुष्यों ने कहा-"आप ही हमारे राजा हैं"।

श्री ऋषभदेवजी ने कहा–" पिताजी की आज्ञा के बिना मैं राजा कैसे बन सकता हूँ ? आप लोग पिताजी के पास जाइये, वे जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही करूंगा।

सब मिलकर, श्री नाभिकुलकर के पास आये और उनसे अपना दुःख कहा। उन्होंने उत्तर दिया–" ठीक है, ऋषभदेव तुम्हारे राजा बन जावेंगे। "

उत्तर सुनकर, सब लोग प्रसन्न हुए और श्री ऋषभदेवजी ने राजा का पद ग्रहण कर लिया। श्री ऋषभदेवजी, इस प्रकार सब से पहले राजा हुए, अतः वे " आदिनाथ " कहलाये।

: ७ :

अब तक, लोग जंगल में बिखरे हुए रहते थे। किन्तु, श्री ऋषभदेवजी के राजा होने पर एक सुंदर शहर बसाया गया, जिसके चारों तरफ मज़बूत कोट बनाया। भीतर, बड़े–बड़े मकान तथा बड़े–बड़े चौक बनाये गये। बड़े–बड़े बाजारों तथा सार्वजनिक–स्थानों का निर्माण हुआ।

इस तरह, जगह–जगह पर ग्राम बसे, तथा नगरों का निर्माण हुआ। देखते ही देखते, सारे–देश में, सर्वत्र सुधारों का प्रचार हो गया।

अब, लोग अपने ही हाथ से खेती करते और अनाज पैदा करते थे। किन्तु, हाथ से की जानेवाली खेती में कितने दिन सफलता मिल सकती थी? अतः गाय, भैंस, घोड़ा इत्यादि जंगल में रहनेवाले जानवरों का पालना सिखलाया गया। अब तो लोग जानवरों से खेती कराने लगे, तथा गाय–भैंस आदि से दूध भी प्राप्त करने लगे।

पशुओं की सहायता से, खेती खूब होने लगी और अनाज भी खूब पैदा होने लगा। अब तो एक–दूसरे के माल से लेन–देन होने लगा और इस तरह व्यापार की नींव पड़ी। देखते ही देखते, व्यापार बहुत बढ़ गया।

इस तरह, सब प्रकार के सुधारों का प्रारम्भ श्री ऋषभदेवजी ने किया, अतः वे मानवजाति के सर्वप्रथम–सुधारक माने जाने लगे।

: ८ :

अब श्री आदिनाथ, राज–पाट का उपभोग तथा आनन्द करने लगे। इसी दशा में उन्हें विचार आया कि मैंने मनुष्यों को कला तो सिखलाई, किन्तु धर्म की शिक्षा नहीं दी; अतः अब उन्हें धर्म की शिक्षा देनी चाहिये। धर्म की शुरूआत दान से होती है, यह

सोचकर उन्होंने राजमहल में एक दानशाला खोली और एक वर्ष तक सोने की मुहरों का दान दिया।

फिर, श्री ऋषभदेवजी ने, अपने सभी पुत्रों को भिन्न-भिन्न देशों का राज्य सौंप दिया और स्वयं, सारे वैभव को छोड़कर, बिलकुल-सादा जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। बिलकुल सादा-जीवन व्यतीत करनेवाले को साधु कहा जाता है। सारांश यह, कि श्री ऋषभदेवजी साधु हो गये।

शरीर पर एक ही कपड़ा, सिर और पैर नंगे; न जाड़े का डर, न गर्मी की चिन्ता। जब देखो, तब ध्यानमग्न ही रहते। भिक्षा लेने जाते, किन्तु लोग नहीं जानते थे, कि उन्हें कौन-सी चीज़ दी-जा सकती है।

कोई कहता-"ये गहने लीजिये"। कोई कहता-"यह कन्या ग्रहण कीजिये"। किन्तु, ये चीजें साधु के लिये किस काम की थीं? इस तरह, एक वर्ष व्यतीत होगया और श्री ऋषभदेवजी घूमते-घूमते हस्तिनापुर पहुँचे।

मनुष्यों के झुण्ड के झुण्ड, इन महात्मा के दर्शन करने आते और अपने घर भोजन करने के लिये आने का निमन्त्रण देते। किन्तु, श्री ऋषभदेवजी उन लोगों की बातों का कोई उत्तर न देते थे।

इस प्रकार भ्रमण करते हुए, वे श्रेयांसकुमार के मकान के सामने आये। श्रेयांसकुमार, श्री ऋषभदेवजी के पुत्र बाहुबली के पौत्र थे। लोगों ने, श्री ऋषभदेवजी को चारों तरफ से घेर रखा था और कोलाहल कर रहे थे। श्रेयांसकुमार ने यह कोलाहल सुनकर, अपने सेवक से कहा—" बाहर जाकर मालूम करो, कि इतना शोर क्यों हो रहा है ? "

सेवक ने, बाहर जाकर जांच की और वापस लौटकर श्रेयांसकुमार से कहा—महाराज ! श्री ऋषभदेव—भगवान, जो आप के परदादा होते हैं, यहाँ पधारे हैं। उनके आसपास जो भीड़ एकत्रित हो रही है, उसी का यह कोलाहल है।

श्रेयांसकुमार, यह सुनते ही एकदम दौड़े और प्रभु के चरणों में अपना मस्तक रख दिया। उनका हृदय, भक्ति तथा आनन्द से गद्-गद् हो उठा। आनन्द के वेग में, विचार करते-करते उन्हें ध्यान आया, कि साधु को किस प्रकार की भिक्षा दी जा-सकती है।

: ९ :

इस समय, श्रेयांसकुमार के यहाँ गन्ने का रस

आया हुआ था। अतः, उन्होंने श्री ऋषभदेवजी से प्रार्थना की, कि–" भगवन्! मेरे यहाँ से भिक्षा ग्रहण करके मुझे पवित्र कीजिये । आपके लेने योग्य, यह गन्ने का रस हाज़िर है।"

यह सुनकर, श्री ऋषभदेवजी ने अपने दोनों हाथ मिलाकर फैला दिये। हाथों की अञ्जलि ही उनका बर्तन थी। इस तरह, एक वर्ष के बाद, श्रेयांसकुमार ने श्री ऋषभदेवजी को शुद्ध-भिक्षा दी।

जिस भोजन से, तप की पूर्ति होती है, उसे "पारणा" कहते हैं। श्री ऋषभदेवजी ने पारणा किया, अतः सब लोग प्रसन्न हुए। उन सबने, श्रेयांसकुमार को धन्यवाद दिया और कहा, कि– "धन्य हैं ऐसे सुपात्र और धन्य है ऐसे सुपात्र को ऐसा दान देनेवाला।"

: १० :

श्री आदिनाथ भगवान, इस तरह बहुत दिनों तक भ्रमण करते रहे। घूमते-घूमते, उन्होंने संसार का सच्चा और पूरा ज्ञान, यानी 'केवलज्ञान' प्राप्त किया। उन्होंने, लोगों को उपदेश दिया कि—अपनी भूलों को सुधारकर जीवन को पवित्र बनाओ, किसी जीव का वध मत करो, सब के साथ प्रेम का बर्ताव

करो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, शील–व्रत (ब्रह्मचर्य) का पालन करो, सन्तोष से रहो, व्यसनों से दूर रहो, और साधु–सन्तों की सेवा करो। बहुत से लोग, इस धर्म का पालन करने लगे।

जो लोग उपर कहे हुए धर्म का पालन करने लगे, उनका एक संघ बन गया। इसी संघ को तीर्थ भी कहते हैं, इसी कारण, आदिनाथ प्रथम तीर्थ बनाने वाले हुए यानी पहले 'तीर्थंकर' हुए।

इस प्रकार, बहुत समय तक उपदेश देकर, वे निर्वाण–पद को प्राप्त हो गये।

श्री ऋषभदेवजी के अनेक तीर्थ हैं। शत्रुंजय, आबू, राणकपुर, केसरियाजी, झगड़ियाजी—आदि।

बोलो श्री ऋषभदेव–भगवान. की जय!

बोलो श्री आदेश्वरदेव की जय!!

—: जैन ज्योति :—

जैन जनताका प्रथम सचित्र कलात्मक मासिक

: तंत्री :

धीरजलाल टोकरशी शाह

वार्षिक मूल्य रु. २–८–०] [एक अंक चार आना

नोंध

नोंध

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी ✤ ✤ पुष्प २

श्री नेमिनाथ

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ वि. } प्रथमावृत्ति { मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पीरमशाहरोड,
अ म दा वा द

श्री नेमिनाथ

: १ :

यमुना नदी के किनारे, शौरिपुर नामक एक बहुत बड़ा नगर था। उसमें, समुद्रविजय नामक एक अत्यन्त-अच्छे राजा राज्य करते थे। इनकी रानी का नाम था शिवादेवी। इन्हीं शिवादेवी के उदर से, राजा के एक पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम हुआ अरिष्टनेमि। अरिष्टनेमि को, लोग नेमिनाथ भी कहते थे। नेमिनाथ के ज्ञान, उनके गुण आदि इतने उत्तम थे, कि उनका वर्णन भी नहीं किया जा सकता।

: २ :

राजा समुद्रविजय के नौ भाई थे। ये सब, उनसे छोटे थे। सब से छोटे भाई का नाम था वसुदेव। वसुदेव के रूप तथा गुण का पार न था। इसी रूप-गुण के कारण, उन्हें अनेक राजाओं तथा धनी-मानी लोगों ने अपनी लड़किये विवाह दी थीं। वसुदेव की अनेक रानियों में से, रोहिणी के बलदेव तथा देवकी से श्रीकृष्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ये दोनों भाई अत्यन्त-पराक्रमी थे।

: ३ :

शौरिपुर से थोड़ी दूरी पर, मथुरा नामक एक विशाल-नगर था। इस नगर में, कंस नाम का एक राजा राज्य करता था, जो अत्यन्त-क्रूर था। वह इतना निर्दय था, कि अपने बाप उग्रसेन को भी उसने कैद कर दिया था, तथा उन्हें नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाता था। श्रीकृष्ण तथा बलदेव ने, उस दुष्ट-राजा कंस को मारकर, फिर उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाया। कंस का मरना सुनकर, उसका ससुर जरासन्ध अत्यन्त नाराज हुआ। जरासन्ध बहुत बड़ा राजा था। शौरिपुर का राज्य ऐसा नहीं था, कि वह कंस से लड़कर जीत सके। साथ ही, मथुरा का राज्य भी इतना बलवान न था, कि वह कंस का मुकाबला कर सके। इसी कारण, ये अपने परिवारों को साथ लेकर वहाँ से चल दिये। चलते-चलते, ये लोग काठियावाड़ में पहुँचे। वहाँ, समुद्र के किनारे एक बड़ा नगर बसाया, जिसका नाम द्वारिका पड़ा। श्रीकृष्ण, बहुत बलवान थे, अतः उन्हें द्वारिका के राजा बनाया गया।

: ४ :

द्वारिका-नगर की शोभा वर्णन नहीं की जा

सकती। उसमें, बड़े–बड़े महल तथा बड़े–बड़े बाजार बनाये गये थे। बड़े–बड़े मन्दिरों तथा बड़े–बड़े चबूतरों का निर्माण किया गया था। यों तो, सारी द्वारिका अत्यत–सुन्दर थी, किन्तु विशेषरूप से श्री-कृष्ण का हथियारखाना अधिक दर्शनीय माना जाता था।

एक दिन, श्री नेमिनाथ अपने मित्रों के साथ घूमते–घूमते उस हथियारखाने में आये। उन्होंने, उन सब हथियारों को देखा। इन हथियारों में, एक सुन्दर–शंख भी दिखाई दिया। शंख, श्री नेमिनाथ को अत्यन्त–सुन्दर मालूम हुआ, अतः उन्होंने उसे लेकर बजाने का विचार किया। जब, वे शंख को उठाने लगे, तब उस हथियारखाने के रखवाले ने उनको प्रणाम करके प्रार्थना की, कि–आप, यद्यपि हैं तो श्रीकृष्ण के भाई, किन्तु इस शंख को आप न उठा सकेंगे। इस शंख को उठाने में तो केवल श्री-कृष्ण ही समर्थ हैं। अतः, आप इसे उठाने के लिये, फिजूल परिश्रम क्यों करते हैं ?

यह सुनकर, श्री नेमिनाथ हँसे। उन्होंने, गेंद की तरह उस शंख को उठा लिया और बड़े जोर से बजाया। शंख की आवाज सुनकर, सब लोग विचार

में पड़ गये। स्वयं श्रीकृष्ण को भी आश्चर्य हुआ। वे विचारने लगे, कि यह शंख किसने बजाया है? इसी समय हथियारखाने के रखवाले ने आकर प्रार्थना की, कि महाराज! श्री नेमिनाथजी ने, खेल ही खेल में उस भारी-शंख को उठाकर बजाया है।

श्रीकृष्ण, यह सुनकर आश्चर्य करने लगे और विचारने लगे, कि क्या श्री नेमिनाथ में इतना अधिक बल है? अच्छा, मैं स्वयं जाकर इसकी परीक्षा करूंगा।

: ५ :

श्रीकृष्ण तथा श्री नेमिनाथ मिले, आपस में बातचीत हुई।

श्रीकृष्ण—भाई नेमिकुमारजी! चलिये हमलोग आपस में कुश्ती लड़ें।

श्री नेमिनाथ—हाँ, मैं तैयार हूँ। लेकिन भाई! कुश्ती लड़कर मिट्टी में लोटने से तो यह अच्छा है, कि हमलोग एक दूसरे का हाथ लम्बा करके झुकावें।

श्रीकृष्ण—अच्छी बात है, ऐसा ही कीजिये।

श्री नेमिनाथ—तो अपना हाथ लम्बा कीजिये।

श्रीकृष्ण ने अपना हाथ लम्बा किया, और श्री नेमिनाथजी ने देखते ही देखते उस हाथ को झुका दिया। फिर, श्रीकृष्ण से बोले—भाई! अब आपकी बारी है, मैं अपना हाथ लम्बा करता हूँ, इसे झुकाइये। श्रीकृष्ण ने, बड़ी मिहनत की, किन्तु वे हाथ को झुका न सके।

इसके बाद श्रीकृष्ण को विश्वास होगया, कि श्री नेमिनाथ अवश्य ही मेरी अपेक्षा अधिक बलवान हैं।

: ६ :

श्री नेमिनाथ, अब जवान हो गये थे। एक दिन, माता–पिता ने उन्हें बुलाया और कहा—बेटा! अब तुम बड़ी उम्र के होचुके हो, अतः यदि तुम अपना विवाह करलो, तो हमें सन्तोष हो जाय।

श्री नेमिनाथने कहा—माता–पिताजी! मैं किसी भी जगह अपने विवाह के योग्य स्त्री नहीं देखता। जब, मुझे अपने विवाह के योग्य स्त्री मिलेगी, तभी मैं अपना विवाह करूंगा।

यह सुनकर, उनके माता–पिता ने, विशेष–आग्रह करना छोड़ दिया।

: ७ :

फाल्गुण का महीना आया। पलास के वृक्षों में, लाल-लाल फूल खिल रहे हैं। आम के वृक्षों में मौर आ रहा है। खिरनी के वृक्ष, नये हरे-हरे पत्तों से शोभित हो रहे हैं। कोयल, अत्यन्त-मीठे-स्वर में कुहुक रही है सरोवर में हंस तैर रहे हैं। इस समय, गिरनार-पर्वत की शोभा निराली ही होती है। जब, सारी प्रकृति में ही आनन्द का समावेश होजाता है, तब भला कौन ऐसा होगा, जो आनन्द न करना चाहे? इसी ऋतु का आनन्द लूटने, श्रीकृष्ण-महाराज अपनी पटरानियों सहित गिरनार-पर्वत पर आये हुए हैं। साथ ही, श्री नेमिनाथ तथा द्वारिका के अन्य बहुत से लोग भी आये हैं।

श्रीकृष्ण तथा सत्यभामा आदि पटरानियें, प्रकृति की शोभा देखती हुई, वहां की कुंजों में घूम रही हैं। ऐसे समय में, श्रीकृष्ण को श्री नेमिनाथ का विचार आया। उन्होंने सोचा-यदि श्री नेमिनाथ लग्न करें, तो अच्छा हो। जैसे भी होसके, मैं उनका चित्त विवाह करने की तरफ आकर्षित करूँ। ऐसा विचार-कर, श्रीकृष्ण ने फूलों की एक माला बनाई और श्री नेमिनाथजी के गले में पहनाई। इसे देखकर, श्रीकृष्ण की रानियों ने समझ लिया, कि—श्री-

कृष्णजी महाराज, अपने भाई को विवाह करने के लिये समझा रहे हैं। अतः, उन्होंने भी श्री नेमिनाथजी को विवाह करने के लिये बहुत समझाया। इस तरह, सारा दिवस आनन्द में ही व्यतीत हो गया।

: ८ :

इसी तरह, फाल्गुण तथा चैत्र का महीना भी व्यतीत हो गया और वैशाख का महीना आया। गर्मी की अधिकता से मनुष्यों के जी घबराने लगे। ऐसे समय में, सब ठण्डक चाहते थे। ठण्डक की इच्छा से ही, श्रीकृष्ण महाराज अपनी पटरानियों तथा श्री नेमिनाथ के साथ गिरनार-पर्वत पर आये।

गिरनार के बगीचों में लताओं के सुन्दर-सुन्दर मण्डप, तथा वृक्षों की हरी-हरी घटा-सी छाई हुई है। वहाँ, काँच के सदृश साफ तथा सुन्दर-पानी के हौज भरे हैं।

गर्मी दूर करने के लिये, सब उन हौजों में नहाने लगे। नहाते-नहाते, सत्यभामा आदि रानियों ने श्री नेमिनाथ के विवाह न करने के विचार की दिल्लगी की। प्रेमपूर्वक, अन्य भी बहुत-सा मज़ाक किया और विवाह करने के लिये बहुत समझाया।

श्रीकृष्ण महाराज ने भी, विवाह करने के बारे में, उनसे बहुत कुछ कहा।

विवाह का, इतना अधिक आग्रह होते देख, श्री नेमिनाथ ने विचारा, कि "सगे-सम्बन्धियों तथा कुटुम्बियों को कितना अधिक मोह है? वे, जिस प्रकार का जीवन स्वयं व्यतीत करते हैं, उसी प्रकार का जीवन बिताने का मुझ से भी आग्रह कर रहे हैं। किन्तु, मुझे तो इस जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचा-जीवन बिताना है। फिर भी, अभी इन स्नेहियों की बात मुझे स्वीकार कर लेनी चाहिये और मौका पाते ही, अवश्य आत्मोद्धार का प्रयत्न करना चाहिये।" ऐसा विचारकर, उन्होंने उन सब का आग्रह स्वीकार कर लिया, जिससे सब को बड़ी प्रसन्नता हुई।

: ९ :

श्रीकृष्ण ने, श्री नेमिनाथ के योग्य कन्या तलाश करना प्रारम्भ कर दिया। जाँच करने पर, राजा उग्रसेन की पुत्री, राजमती, उनके सर्वथा योग्य मालूम हुई। श्री नेमिनाथ का, राजमती के साथ, विवाह-सम्बन्ध पक्का हो गया।

ब्राह्मण को बुलाकर, उससे लग्न का दिन दिख-

वाया, किन्तु उसने कह दिया, कि चातुर्मास में, विवाह नहीं हो सकता। सब ने, ब्राह्मण से कहा, कि चाहे जो हो, किन्तु विवाह का दिन तो अवश्य ही नज़दीक ढूंढ निकालो। इसमें देर करना उचित नहीं प्रतीत होता।

ब्राह्मण ने, श्रावण सुदी छठ का दिन शोध निकाला और सब ने उसे स्वीकार कर लिया।

: १० :

श्री नेमिनाथ के विवाह की तैयारियाँ होने लगीं, दोनों घरों में तोरण बाँधे गये। मंगलगान होने लगे और सारा शहर खूब सजाया गया। इस तरह, विवाह का दिन आ पहुँचा।

रात्रि के व्यतीत होते ही, गान-वाद्य होने लगा। मीठे-मीठे स्वर में सहनाई बजने लगी। मंगल-चौघड़ियों की गड़गड़ाहट सुनाई देने लगी। इस मीठे-संगीत के शब्द से, सब लोग जाग उठे। स्त्रियों ने, मंगल-गीत गाना प्रारम्भ कर दिया। विवाह के लिये, श्री नेमिनाथजी सजाये जाने लगे। उनके सिर पर, एक सुन्दर सफेद-छत्र धरा गया। दोनों तरफ, सफेद-चँवर ढुलने लगे। किनारीदार, दो शुद्ध तथा सफेद-वस्त्र उनके शरीर पर धारण कराये

गये। गले में, बढ़िया-बढ़िया-मोतियों की मालाएँ पहनाई गईं। शरीर पर, अत्यन्त-सुगन्धित चन्दन का लेप किया गया। एक, अद्भुत सामग्रियों से सजे हुए सुन्दर-रथ में, दो सफेद-घोड़े जोते गये और श्री नेमिनाथजी को उस रथ में बैठाया गया।

आगे-आगे, बाराती चले। दोनों तरफ हाथियों पर चढ़कर अमीर-उमराव लोग चले। रथ के पीछे, राजा समुद्रविजय तथा उनके भाई चले। इनके पीछे, पालकियों में बैठकर, मीठे-मीठे गीत गाती हुई, रानियें चलीं। इस बरात की अपार-शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है?

बरात, धीरे-धीरे चलने लगी। नगर के लोग, इस बरात को देखने के लिये, झुण्ड के झुण्ड एकत्रित हुए। मकानों की मंजिलें तथा छतें, बच्चों एवं स्त्रियों से खचाखच भरी थीं। बाजारों में, पुरुषों का पार ही न था।

इस तरह, अपनी सुन्दरता से, देखनेवालों के चित्त प्रसन्न करती हुई वह बरात, धीरे-धीरे राजा उग्रसेन के महल के समीप पहुंचने लगी।

इधर, राजमती भी सोलह-श्रृङ्गार सजकर,

खिड़की में बैठी हुई बरात को देख रही हैं। वे, दूर ही से श्री नेमिनाथ को देखकर, मन में अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं। वे विचारती हैं, कि मेरा भाग्य बड़ा ही जबरदस्त है, अन्यथा ऐसा पति कैसे मिल सकता था? इतने ही में, उनकी दाहिनी-आँख फरकने लगी तथा दाहिनी-भुजा भी उसी समय फरक उठी। यह अशकुन देखकर, उनके चित्त में शंका पैदा हुई, कि अवश्य ही कुछ बुरा होनेवाला है। इस चिन्ता से, उनका चेहरा फीका पड़ गया। उन्होंने, अपनी सखियों से, अपने चित्त की यह बात कही। सखियें बोलीं-बहिन! अकारण ही चिन्ता क्यों करती हो? तुम्हारा विवाह, अच्छी तरह पूर्ण हो जावेगा।

: ११ :

बरात, चलते-चलते राजा उग्रसेन के घर के सामने पहुंची। वहाँ पहुँचने पर, एकदम जानवरों का चीत्कार सुनाई दिया। बेचारे बकरे, मेंढे, हरिण, तीतर, इत्यादि पशुपक्षी आर्त्त-स्वर से चिल्ला रहे थे। श्री नेमिनाथ ने, अपने सारथि से पूछा, कि-सारथि! इतना अधिक शब्द, किस चीज का सुनाई दे रहा है?

सारथि बोला—महाराज ! आपके विवाह में रसोई करने के लिये ही, इन सब जानवरों को पकड़ा गया है। ये बेचारे, मरने के भय से चिल्ला रहे हैं।

सारथि का यह उत्तर सुनकर, श्री नेमिनाथ बोले–सारथि ! मेरा रथ उन प्राणियों के पास लेचलो।

रथ, प्राणियों के पास लेजाया गया। वह पहुंचकर श्री नेमिनाथ देखते हैं, कि किसी को गले से और किसी को पैर से बाँध रखा है, तथा किसी को पींजरे में बन्द कर रखा है, एवं किसी को जाल में फँसा रखा है। यह दृश्य देखकर, श्री नेमिनाथ का हृदय दया से भर आया। उन्हें, संसार का विचार आया और संसार के बाहरी दृश्यों से उनका मोह छूट गया। उनका मन, आत्मा तथा जगत का सच्चा स्वरूप समझने के लिये छटपटाने लगा।

उन्होंने, सारथि से कहा—सारथि ! इन सब जानवरों को अभी छोड़ दो।

श्री नेमिनाथ की आज्ञा पा, सारथि ने उन सब जानवरों को छोड़ दिया। जानवरों के छूटने से प्रसन्न हो, श्री नेमिनाथजी ने अपने सारे आभूषण

उतारकर सारथि को इनाम में दे दिये । फिर उस से बोले—मेरा रथ पीछा लौटाओ ।

रथ, पीछा लौट पड़ा । रथ को पीछा लौटते देखकर, उनके माता-पिता आये और कहने लगे—बेटा ! एकदम यह क्या कर रहे हो? यदि, तुमसे प्राणियों का दुःख नहीं देखा जाता, तो अब तो तुमने उन्हें छुड़वा ही दिया है, फिर चलते क्यों नहीं हो ?

श्री नेमिनाथ बोले—किन्तु, आपलोग मुझे जिस सम्बन्ध में जोड़ना चाहते हैं, उससे कहीं अधिक विशाल तथा अत्यन्त-पवित्र-सम्बन्ध बाँधने की मेरी प्रबल-इच्छा हो रही है । इसलिये, मुझे क्षमा कीजिये और इस विषय में अब कोई आग्रह न कीजिये ।

इस तरह, श्री नेमिनाथ ने अपना विवाह नहीं किया और बालब्रह्मचारी रहे । उनका ब्रह्मचर्य धन्य है और धन्य है उनके विचारों की पवित्रता तथा उच्चता ।

: १२ :

राजमती ने, जब यह समाचार सुना, कि श्री नेमिनाथ पीछे फिर गये, तब वे दुःख के मारे

मूर्छित हो गईं और, जब होश में आईं, तब बडे जोर से रोने लगीं। वे, श्री नेमिनाथ को ही याद करती रहतीं और रोया करती थीं। यह देखकर, सखियों ने, राजमती से कहा—बहिन! आप, ऐसे प्रेमरहित पति के लिये शोक क्यों करती हो? थोड़े ही समय में, दूसरा योग्य-पति आपके लिये ढूंढ निकाला जावेगा।

सखियों की यह बात सुनकर, राजमती ने अपने कानों पर हाथ रखे और बोलीं—अरे बहनो! ऐसी बुरी बात क्यों बोलती हो? पति तो मेरे श्री नेमिनाथ हो चुके, अब उनके सिवा दूसरा पति कैसे हो सकता है? मैं भी, अब उनका ही अनुकरण करूंगी और अपना जीवन सफल बनाऊंगी।

: १३ :

श्री नेमिनाथ का वैराग्य अब दिन-दिन बढ़ता ही जाता था।

वैराग्य की वृद्धि के कारण ही, उन्होंने एक वर्ष तक सोने की मुहरों का दान दिया और अन्त में साधु हो गये। साधु होजाने का मतलब है-मन से पवित्र हो गये तथा माता-पिता एवं भाई-बहनों के प्रेम-सम्बन्ध को विशाल करके, संसार के सभी

मनुष्यों के साथ मित्रता का बर्ताव करने लगे। सारांश यह, कि अब वे 'विश्व-बन्धुत्व' की स्थिति में पहुँच गये।

वे, रूखा-सूखा जैसा मिल जाता, वैसा अन्न खाते, जमीन पर सोते, एक ही कपड़ा पहनते और सर्दी-गर्मी के कष्ट सहन करते। इतना सब होने पर भी, वे अपने चित्त में कभी दुःख का अनुभव न करते थे और न सुख ही मानते थे। अपने मन से, सब की भलाई चाहते थे। जो कुछ अपने मुँह से बोलते, वह केवल सच्ची और मीठी-बात ही होती थी। इस तरह, पवित्र-जीवन व्यतीत करने के लिये ही, वे एक स्थान से दूसरे स्थान में भ्रमण करने लगे। मुनियों के ऐसे भ्रमण को 'विहार' कहते हैं।

: १४ :

इस तरह घूमते हुए, थोड़े दिनों के बाद ही उन्हें 'केवलज्ञान' हो गया। केवलज्ञान होने का मतलब है-जगत का सच्चा और पूरा-ज्ञान हो जाना। अब, उनकी सब जगह पूजा होने लगी।

श्री नेमिनाथजी को, केवलज्ञान के प्राप्त होने से जो आनन्द मिला, उस आनन्द से दुनिया को लाभ पहुंचाने तथा अन्य-मनुष्यों को उस आनन्द की प्राप्ति

हो, इसके लिये वे उपदेश देने लगे। उनके उपदेश का सार यों है:—

" सब के साथ मित्रता की भावना रखनी चाहिये। सदा सत्य और मीठी-वाणी ही बोलनी चाहिये। बिना आज्ञा किसी की वस्तु न लेनी चाहिये। शीलव्रत का पालन करना चाहिये। सन्तोष से रहना चाहिये। अपने जीवन को दयामय बनाना चाहिये। धर्म को, प्राणों के समान प्रिय मानना चाहिये। और यदि आवश्यकता आ पड़े, तो धर्म के लिये अपना जीवन भी दे देना चाहिये-इत्यादि। "

श्रीकृष्ण आदि बहुत-से मनुष्यों ने यह उपदेश माना। अनेक स्त्री-पुरुषों ने, साधु-जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। दूसरे अनेक पुरुषों तथा स्त्रियों ने, घर में रहते हुए भी जितना हो सके, उतना पवित्र-जीवन व्यतीत करना शुरू कर दिया। इस तरह, दोनों प्रकार के स्त्री-पुरुषों का एक संघ स्थापित हुआ। ऐसे संघ को तीर्थ कहते हैं और यही कारण है, कि ऐसे तीर्थ की स्थापना करने के कारण, भगवान श्री नेमिनाथ तथा अन्य तेइस भगवानों को तीर्थङ्कर कहा गया है। सारांश यह, कि 'तीर्थङ्कर' शब्द के मानी हैं-तीर्थ बनाने वाले।

महासती राजमती, पवित्रता की खान थीं। उन्हें भी, संसार के लालचों से मोह न हुआ था। उन्होंने, श्री नेमिनाथ का जीवन देखा और वह उन्हें अत्यन्त-पवित्र मालूम हुआ। उन्होंने, श्री नेमिनाथ का उपदेश सुना और वह भी उन्हें बहुत अच्छा मालूम हुआ। अतः, उन्होंने प्रभु श्री नेमिनाथजी सामने ही, साध्वी बनकर जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया। साध्वी की तरह, बहुत दिनों तक पवित्र-जीवन व्यतीत करके, वे मोक्ष को पधार गईं।

प्रभु श्री नेमिनाथ ने भी बहुत दिनों तक जीवित रहकर, अन्त में गिरनार-पर्वत पर निर्वाणपद प्राप्त किया। इस तरह, गिरनार-पर्वत, श्री नेमिनाथ तथा सती-शिरोमणि राजमती के चरणों से, सदा के लिये पवित्र हो गया।

बोलो, बाइसवें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ भगवान की जय।

बोलो, महासती राजमती की जय।

ॐ शान्तिः

जलमंदिर पावापुरीकी

मनोहर त्रिरंगी तस्वीर

मू. २ आना

कोइ भी प्रकारका चित्रकामके लिये
पत्रव्यवहार करो। अल्प मूल्यमें
उत्तम काम मिलेगा।

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी :: :: पुष्प ३

श्री पार्श्वनाथ

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजमिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्रो. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पोरमशाहरोड,
अमदावाद

श्री पार्श्वनाथ

: १ :

धीरे-धीरे बहनेवाली गंगाजी के किनारे पर काशी नामक एक बड़ा शहर है। वहाँ, प्राचीनकाल में अश्वसेन नाम के एक राजा राज्य करते थे। इन राजा की पट-रानी का नाम वामादेवी था। ये दोनों, आपस में एक दूसरे से बड़ा प्रेम रखते हुए आनन्द पूर्वक दिन बिता रहे थे।

एक दिन, घोर-अँधेरी रात में वामादेवी अपने पलँग पर सोई हुई थीं। इसी समय, एक काला-नाग उनके पास होकर निकल गया। एक तो घोर अँधेरा, दूसरे साँप भी काला ! भला ऐसे काले-अँधियारे में काले-साँप को कोई कैसे देख सकता था ? किन्तु आश्चर्य की बात है, कि वामादेवी ने उस समय भी उस काले-साँप को जाते देख लिया। उस काले तथा डरावने साँप को देखकर, वामादेवी को जरा भी डर न मालूम हुआ। रानी ने, दूसरे दिन यह बात राजा से कही। रानी की बात सुनकर,

राजा अश्वसेन बोले—" रानीजी, अँधेरी–रात में काला–साँप अपनी आँखों से तो कभी नहीं देखा जा सकता। आपको जो वह दिखाई दिया है, तो यह अवश्य ही आपके गर्भ का प्रभाव है। मुझे मालूम होता है, कि निश्चय ही आपके एक प्रतापी–बालक जन्म लेगा। "

: २ :

समय आने पर, वामादेवी के उदर से एक पुत्र–रत्न ने जन्म लिया। उसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जासकता। उस बालक के गुण कोई गिन नहीं सकता और न यह जाना जा सकता था, कि उसमें कितना ज्ञान है।

उनका नाम रखा गया पार्श्वकुमार। भला, राजा के कुमार को किस बात की कमी रह सकती है? उनकी सेवा में अनेक दास तथा दासी हाज़िर रहती थीं। इस प्रकार आनन्दपूर्वक पाले–पोसे जाकर, श्री पार्श्वकुमार बड़े हुए। बड़े होने पर मालूम हुआ, कि उनकी शक्ति अपार है। उनके पराक्रम की, सारी दुनिया में तारीफ होने लगी।

: ३ :

इस समय, कुशस्थल नामक एक और बड़ा नगर था। इस नगर के राजा का नाम था प्रसेनजित्। प्रसेन-

जित् के एक कन्या थी, जिसका नाम प्रभावती था। राजा प्रसेनजित् ने, अपनी कन्या को बुद्धिमान बनाने के लिये बड़ा परिश्रम किया था। यह कन्या, धीरे-धीरे सयानी होने लगी। कन्या को बड़ी होगई जानकर, एक दिन राजा-रानी आपस में विचारने लगे-" देवी के समान, इस सुन्दर-लड़की का विवाह हम कहाँ करेंगे? इसके लायक पति कहाँ मिलेगा?"। वे, प्रभावती के लायक पति की बड़ी खोज किया करते थे। राजा प्रसेनजित ने, अनेक राजा-महाराजाओं के यहाँ पता लगाया, किन्तु उन्हें प्रभावती के योग्य पति कहीं न मिला।

: ४ :

एक दिन सखियों के साथ प्रभावती बाग में टहलने आईं। वहाँ, रंग-बिरंगे फूल खिल रहे हैं। वृक्षों पर, मीठे-मीठे फल लदे हुए हैं। बाग में, सुन्दर-सुन्दर लताओं के मण्डप हैं, छोटे-छोटे हौज बने हैं, जिनमें राजहंस तैर रहे हैं; हौजों के किनारे पर सारस के जोड़े चर रहे हैं, वृक्षों पर पक्षियों के झुण्ड मीठे-मीठे शब्दों में सुन्दर-शब्द कर रहे हैं।

प्रभावती, यह सारी शोभा देखकर मन ही मन प्रसन्न हो रही थीं, कि इतने ही में उन्हें यह गाना सुनाई दियाः—

प्रभावती को यह गायन बहुत पसन्द आया। इस गायन में, श्री पार्श्वकुमारजी के प्रभाव का बड़ा ही अच्छा वर्णन था। इस प्रशंसा को सुनकर, प्रभावती ने अपने मन में निश्चय किया, कि यदि मैं अपना विवाह करूंगी, तो ऐसे ही प्रभावशाली मनुष्य से; अन्यथा विवाह ही न करूंगी।

: ५ :

प्रभावती, अब योग्य-अवस्था की हो चुकी थीं। वे, सदा पति की चिन्ता में ही मग्न रहती थीं। इस चिन्ता का प्रभाव उनके शरीर पर भी हुआ। प्रभावती की सखियों को, उनकी इस चिन्ता का हाल मालूम होगया। सखियों ने, प्रभावती को इस फिकर से छुड़ाने के लिये यह बात उनके माता-पिता से कही। उन्होंने, यह बात सुनकर कहा-" श्री पार्श्वकुमार पुरुषों में श्रेष्ठ हैं और प्रभावती कन्याओं में श्रेष्ठ है। प्रभावती ने, पार्श्वकुमार को अपने लायक उचित वर ढूँढ निकाला है, अतः हमें उसके इस निश्चय को जानकर बड़ी प्रसन्नता है।"

माता-पिता का यह उत्तर, सखियों ने प्रभावती से जाकर कहा। इसे सुनकर, प्रभावती को भी बड़ा आनन्द हुआ। प्रभावती, यद्यपि अपने निश्चय से माता-पिता को सहमत जान प्रसन्न थीं, किन्तु उन्हें पार्श्वकुमार के

बिना कुछ भी अच्छा न लगता था । रात–दिन चिन्ता करती रहने के कारण, थोड़े ही दिनों में प्रभावती बहुत दुबली हो गईं । उनकी यह दशा देखकर, माँ–बाप ने निश्चय किया, कि प्रभावती को पार्श्वकुमार के पास भेज देना चाहिये ।

जो कन्या, स्वयं ही अपने लिये पति ढूँढ लेती तथा विवाह के लिये जाती है, उसे 'स्वयंवरा' कहते हैं ।

: ६ :

प्रभावती, रुप, गुण तथा ज्ञान की भण्डार थीं । उनकी सारे देश में प्रशंसा हो रही थी । यही कारण था, कि अच्छे–अच्छे राजालोग उनसे विवाह करने की इच्छा करते थे । कलिंग देश का राजा यवन अत्यन्त बलवान था। वह, प्रभावती के साथ विवाह करने का निश्चय किये बैठा था ।

देखते ही देखते, सारे देश में यह बात फैल गई, कि प्रभावती स्वयंवरा होकर पार्श्वकुमार के पास जाती हैं । यह बात, जब राजा यवन ने सुनी, तब वह बहुत नाराज़ हुआ और कहने लगा–" मेरे जीवित रहते, प्रभावती के साथ विवाह करनेवाले पार्श्वकुमार कौन होते हैं ? और प्रसेनजित् राजा की क्या मजाल है, जो

मेरे साथ प्रभावती का विवाह न करें ? मैं देखता हूँ, कि प्रभावती अपना विवाह पार्श्वकुमार के साथ कैसे करेंगी ?"

यह सोचकर, यवनराजा ने अपनी सेना तयार की और कुशस्थल नगर पर चढ़ाई करदी। थोड़े ही दिनों में फौज कुशस्थल आ पहुँची और उसने नगर के चारों तरफ अपना घेरा डाल दिया। वह घेरा इतना सख्त था, कि नगर में से कोई भी मनुष्य बाहर नहीं जा सकता था।

: ७ :

राजा प्रसेनजित् अत्यन्त चिन्ता में पड़ गये। वे सोचने लगे, कि इतनी बड़ी सेना से हमारा बचाव कैसे हो ? हाँ, यदि किसी तरह राजा अश्वसेन की सहायता हमें मिल सके, तो अवश्य ही हम बच सकते हैं। किन्तु, राजा अश्वसेन तक मदद का सन्देश पहुँचावे कौन ? विचारते-विचारते उन्हें अपने मित्र पुरुषोत्तम का नाम याद आया।

राजा प्रसेनजित् ने, पुरुषोत्तम को बुलाया और उससे अपना विचार कहा। पुरुषोत्तम, मित्र का काम करने को तैयार ही था, अतः अपने जीवन की चिन्ता न करके, रात्रि के समय वह चुपचाप नगर से बाहर निकल गया और जितना भी जल्दी हो सका, काशी पहुँचा।

: ८ :

राजा अश्वसेन, अपनी सभा में बैठे थे, धर्म-चर्चा हो रही थी, कि इतने ही में सिपाही आया और प्रणाम करके बोला-" महाराज ! दरवाजे पर एक दूर देश से आया हुआ मनुष्य खड़ा है और वह आपसे कुछ अर्ज करना चाहता है । " राजा ने कहा—"उसे जल्दी भीतर भेजो " ।

पुरुषोत्तम भीतर आया । उसने राजा को प्रणाम करके सब हाल सुनाया । पुरुषोत्तम के मुख से यह हाल सुनते ही, राजा अश्वसेन अत्यन्त नाराज़ हुए और बोले —"यवनराजा की क्या मज़ाल है, कि वह प्रसेनजित् को परेशान करे ? मैं अभी अपनी सारी सेना लेकर कुश-स्थल जाता हूँ । "

उसी समय लड़ाई के नगाड़े बजाये गये और सारी फौज इकट्ठी होने लगी ।

पार्श्वकुमार, अपने मित्रों के साथ आनन्द से खेल रहे थे । उन्होंने भी लड़ाई के नगाड़ों की आवाज़ सुनी और सेना की चहल-पहल देखी । यह देखकर, उन्होंने अपना खेल एकदम छोड़ दिया और अपने पिता के पास आये । वहाँ आकर उन्होंने देखा, कि सेनापतिलोग लड़ाई के लिये तयार हुए बैठे हैं । उन्होंने, अपने पिताजी को

प्रणाम करके नम्रता से पूछा–" पिताजी ! ऐसा कौन–सा शत्रु ह, कि जिसके लिये आपके समान पराक्रमी को इतनी तयारी करनी पड़ती है ? आपसे अधिक या आपके समान शक्तिवाला कोई भी मनुष्य मुझे नहीं दिखाई देता, फिर इस तयारी का कारण क्या है ? "। पिताजी ने पुरुषोत्तम की तरफ इशारा करके कहा–" इस मनुष्य के समाचार लाने पर, प्रसेनजित् राजा को, राजा यवन से बचाने जाने की आवश्यकता पड़ी है "।

पार्श्वकुमार ने, यह सुनकर कहा–" पिताजी ! देव तथा दानवों की भी यह शक्ति नहीं है, कि वे युद्ध में आपके सामने टिक सकें। फिर, इस यवनराजा की क्या शक्ति है, कि वह आपके सामने खड़ा रह सके ? किन्तु उसके सामने जाने की आपको आवश्यकता नहीं है। अकेला मैं ही वहाँ चला जाऊँगा और दूसरे किसी को नहीं, केवल उसे स्वयं को ही कुछ दण्ड दूँगा। राजा अश्वसेन बोले–" बेटा ! कठिनाइयों से भरी हुई इस लड़ाई में तुम्हें भेजना मुझे उचित नहीं प्रतीत होता। यद्यपि, मैं यह जानता हूँ, कि मेरे पुत्र में अपार–बल है; किन्तु मैं इसी में प्रसन्न हूँ, कि वे घर में रहकर आनन्द-पूर्वक दिन बितावें। " पिताजी का यह उत्तर सुनकर पार्श्वकुमार बोले–" पिताजी ! युद्ध करना मेरे लिये बड़ी प्रसन्नता तथा विनोद के समान ही है। उसमें,मुझे ज़रा भी

मिहनत न करनी पड़ेगी। इसलिये आप तो यहीं रहिये और मुझे लड़ाई में जाने की आज्ञा दीजिये।"

पार्श्वकुमार के बहुत कहने-सुनने पर राजा अश्वसेन ने उनकी माँग स्वीकार करली और उन्हें लड़ाई में जाने की आज्ञा देदी।

: ९ :

शुभ-मुहूर्त में, पार्श्वकुमार सेना लेकर कुशस्थल की तरफ चले। वहाँ पहुँचकर, राजाओं की रीति के अनुसार, यवनराजा को उन्होंने यह सन्देश भेजा-" हे राजा! ये प्रसेनजित् राजा मेरे पिता की शरण आये हुए हैं, इसलिये तुम इन्हें सताना छोड़ दो। मेरे पिता, स्वयं ही युद्ध के लिये यहाँ आ रहे थे, किन्तु उन्हें बड़े परिश्रम से रोककर मैं यहाँ आया हूँ। अतः मैं तुमको सूचित करता हूँ, कि तुम यहाँ से पीछे लौटकर अपने घर चले जाओ। यदि तुम जल्दी वापस लौट जाओगे, तो मैं तुम्हारा अपराध भी क्षमा कर दूंगा।"

पार्श्वकुमार ने, यवनराजा के भले के लिये ही यह सन्देश भेजा था, किन्तु अभिमान के नशे में चूर यवनराज उनकी इस बात को कैसे मान सकता था? उसने, उल्टा सन्देश लानेवाले को धमकी से भरा यह उत्तर दिया, कि-" यदि पार्श्वकुमार जीवित रहना चाहते हों,

तो चुपचाप वापस लौट जायँ"। यवनराजा को यह उत्तर देते सुन, उनका, एक बूढ़ा-मंत्री बोला-"महाराज! चाहे जो कीजिये, किन्तु लड़ाई में हमलोग पार्श्वकुमार का मुकाबला हर्गिज़ नहीं कर सकते। फिर, अपनी लड़ाई भी केवल अभिमान की है, सच्ची नहीं। तब क्यों अकारण ही मनुष्यों का रक्तपात होने दिया जाय? मेरी सम्मति में, पार्श्वकुमार का यह सन्देश मान लेना और उनकी शरण जाना ही अच्छा है।"

यवन राजा को, विचार करने पर यह बात सच्ची जान पड़ी। वह, पार्श्वकुमार की शरण आया और हाथ जोड़कर कहने लगा, कि-"मेरा अपराध क्षमा कीजिये"।

पार्श्वकुमार बोले-"हे राजा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम, मुझसे डरो मत और अपना राज्य सुखपूर्वक भोगो। किन्तु, अब फिर कभी ऐसी ग़ल्ती न करना।"

: १० :

कुशस्थल नगर के चारों तरफ से फौज का घेरा उठाकर राजा यवन अपने घर चला गया। यह देखकर, राजा प्रसेनजित् के हर्ष की सीमा न रही। उन्हें, दो खुशियें एक ही साथ हुईं। एक तो शत्रु का भय दूर हुआ और दूसरे पार्श्वकुमार-जिनकी उन्हें आवश्यकता थी-घर बैठे आगये।

वे, प्रभावती को लेकर पार्श्वकुमार की छावनी में आये और हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की, कि–"आपने यवनराजा के भय से हमें बचाकर, हम पर बड़ा उपकार किया है। किन्तु, अब इस प्रभावती के साथ अपना विवाह करके हम पर दूना उपकार कीजिये। यह आपको ही चाहती है और आप ही को सदा याद किया करती है!"

यह सुनकर पार्श्वकुमार बोले, कि–"हे राजा! मैं तो केवल शत्रु से तुम्हारी रक्षा करने के लिये यहाँ आया हूँ, विवाह करने के लिये नहीं। मेरा काम पूरा होगया, इसलिये अब मैं वापस चला जाऊँगा।"

पार्श्वकुमार का यह उत्तर सुनकर, प्रभावती के दुःख का पार न रहा। वे, बड़ी चिन्ता में पड़ गईं और सोचने लगीं, कि–"अब मेरा क्या होगा?"। राजा प्रसेनजित् भी विचार में पड़ गये और सोचते–सोचते उन्होंने अपने मन में यह निश्चय किया, कि–"पार्श्वकुमार स्वयं तो यह बात नहीं मानेंगे, किन्तु राजा अश्वसेन के कहने से वे अवश्य इस बात को स्वीकार कर लेंगे। अतः राजा अश्वसेन से मिलने का बहाना बनाकर मुझे पार्श्वकुमार के साथ ही काशी जाना चाहिये।"

पार्श्वकुमार को बिदा किया। बिदा करते समय राजा प्रसेनजित् बोले–" हे प्रभु ! राजा अश्वसेन के चरणों में प्रणाम करने के लिये मैं भी आपके साथ चलना चाहता हूँ "। पार्श्वकुमार ने, बड़ी प्रसन्नता से उनकी यह बात स्वीकार करली, अतः राजा प्रसेनजित् प्रभावती को अपने साथ लेकर काशी आये।

: ११ :

राजा प्रसेनजित् ने, अश्वसेन राजा को राज–रीति के अनुसार नमस्कार करके अपनी सारी हकीकत कही। राजा प्रसेनजित् की बात सुन लेने के बाद, राजा अश्वसेन ने कहा–" ये कुमार, प्रारम्भ से ही वैराग्य–प्रिय हैं, अतः अबतक हम यही नहीं जान सके हैं, कि वे क्या करेंगे। हमारी, यह बड़ी लालसा है, कि कब पार्श्वकुमार किसी योग्य–कन्या से अपना विवाह करें ? यद्यपि, उन्हें विवाह करना पसन्द नहीं है, तथापि तुम्हारे आग्रह से प्रभावती के साथ उनका विवाह कर दूँगा।"

राजा अश्वसेन, प्रसेनजित् राजा को साथ लेकर पार्श्वकुमार के पास गये और उनसे कहा, कि–" पुत्र ! प्रभावती को तुमसे बड़ा ही प्रेम है। तुमसे विवाह करने के लिये उसने बड़े–बड़े कष्ट उठाये हैं। सचमुच तुम्हारे लिये इससे अधिक योग्य–कन्या कोई है ही नहीं। इस-

लिये तुम मेरा कहना मानो और प्रभावती के साथ विवाह करके सुखपूर्वक जीवन बिताओ।

पार्श्वकुमार बोले–" पिताजी, मुझे वैवाहिक–जीवन पसन्द नहीं है "। पार्श्वकुमार का उत्तर सुनकर, राजा अश्वसेन ने उन्हें बहुत समझाया और विवाह करने के लिये विशेषरूप से आग्रह किया। अन्त में, पिता का अधिक आग्रह देख, पार्श्वकुमार ने प्रभावती के साथ अपना विवाह कर लिया।

विवाह होजाने पर, प्रभावती के आनन्द की कोई सीमा न रही। वे गाने लगीं:—

जो कन्या यह पति पाजावे, उस सम धन्य न और।
जीवन सफल करे वह अपना, हो सब में सिर मौर॥

: १२ :

एक दिन पार्श्वकुमार, अपने महल पर खिड़की में बैठे हुए काशी नगरी की छटा देख रहे थे, कि इतने ही में उन्होंने देखा, कि लोगों के झुण्ड के झुण्ड फूलों की टोकरियें लिये हुए, जल्दी–जल्दी नगर से बाहर की तरफ जा रहे हैं।

पार्श्वकुमार ने, अपने पास के मनुष्यों से पूछा, कि–" आज कौन–सा त्यौहार है, जो लोग इतने अधिक उतावले होकर नगर से बाहर जा रहे हैं ? " मनुष्यों ने

उत्तर दिया, कि–" कमठ नामक एक बहुत-बड़ा तपस्वी शहर से बाहर आया हुआ है। वह आपने चारों तरफ अग्नि सुलगाता है और सिर पर सूर्य की गर्मी सहन करता है; अर्थात वह पंचाग्नि-तप करता है । लोग, उसी की पूजा करने के लिये इतने जल्दी-जल्दी जा रहे हैं।"

पार्श्वकुमार को, यह तमाशा देखने की इच्छा हुई। वे, अपने मनुष्यों के साथ वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा, कि कमठ ने अपने चारों तरफ मोटी-मोटी लकड़ियें रखकर धूनी जला रखी थी।

चतुर पार्श्वकुमार ने, अपने ज्ञान से, इन लकड़ियों में एक बड़े-सर्प को जलते देखा। यह देखकर, उनका हृदय दया से भर आया। वे बोल उठे-"अरे! यह कितनी भारी नासमझी है? केवल शरीर को कष्ट देने से कहीं तप होसकता है? अज्ञानवश, पशु की तरह ठण्ड तथा गर्मी सहन करने से क्या लाभ निकल सकता है? तप इत्यादि, धर्म के अंग अहिंसा के बिना फिजूल हैं। अहिंसा ही सब से बड़ा धर्म है।"

पार्श्वकुमार की यह बात सुनकर, शरीर को कष्ट देने में ही धर्म माननेवाला कमठ बोला-" हे राजकुमार! धर्म के विषय में तुम क्या जानो? तुम तो हाथी-घोड़ों

की सवारी और उनका दौड़ाना जाननेवाले हो, धर्म तो हमारे समान तपस्वी ही जानते हैं।"

कमठ का उत्तर सुनकर, पार्श्वकुमार को विचार हुआ, कि–" अहो, मनुष्य को कैसा अभिमान होता है ? बेचारे को दया की तो खबर ही नहीं है और सोचता है, कि मैं धर्म कर रहा हूँ !"। इसके बाद, उन्होंने अपने मनुष्यों से कहा–" इस लकड़ी को धूनी में से खींच लो और सावधानी से उसे बीच में से चीर कर, उसके दो हिस्से करो "। मनुष्यों ने वैसाही किया, तो उसमें से एक बड़ा साँप निकला। उस साँप का शरीर झुलस चुका था, इससे उसके शरीर में बड़ी तकलीफ हो रही थी। पार्श्वकुमार ने, उसे अपने मनुष्य द्वारा पवित्र–शब्द (नवकार मंत्र) सुनवाया। वह नाग, उसी क्षण मर गया !

कमठ, यह देखकर बड़ा लज्जित हुआ। उसे ऐसा जान पड़ा, कि पार्श्वकुमार ने मुझे सब लोगों के सामने फजीहत किया है। वह अत्यन्त क्रोधित हुआ। किन्तु, फिर भी उसने उसी प्रकार का तप जारी ही रखा। थोड़े ही दिनों में, ऐसा तप करते–करते वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। मरकर वह एक प्रकार का देवता हुआ। वहाँ, उसका नाम हुआ मेघमाली और वह सर्प मरकर नागराज हुआ, जिसका नाम हुआ धरणेन्द्र।

वसन्त–ऋतु के आगमन से, वन की शोभा कुछ निराली ही हो उठी। सारे वृक्ष, हरे–हरे पत्तों से शोभित हो गये। फूलों का तो कोई पार ही न था। फूलों का रस पान करने के लिये, भौंरों के झुण्ड गुंजार करते हुए चारों तरफ घूम रहे थे। वृक्षों पर पक्षियों के मधुर–गायन हो रहे थे, और मीठे–पानी के झरने कल–कल करके बह रहे थे।

पार्श्वकुमार, प्रभावती के साथ इस वन की शोभा देखने निकले। वे, घूमते–घूमते एक महल के सामने आये। महल की शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। जहाँ नजर पहुँचती, वहीं कोई सुन्दर बनावट और जहाँ देखते वहीं कुछ विचित्रता दिखाई देती थी। इस महल में, पार्श्वकुमार तथा प्रभावती आराम करने को गये। महल के दीवानखाने में, चित्रों को देखते–देखते वे एक सुन्दर चित्र के सामने आये। उस चित्र में एक जगह श्री नेमिनाथ की बरात का दृश्य बना था, फिर श्री नेमिनाथजी पशुओं का चीत्कार सुनते हुए दिखाये गये थे। इसके बाद के दृश्यों में, उनका हृदय दया से भर आता, वे पशुओं को छुड़ा देते और अपना रथ वापस लौटाते, आदि बातें दिखलाई गई थीं। यह सब देखकर, पार्श्वकुमार को अपने जीवन के सम्बन्ध में विचार हुआ। वे सोचने लगे–“संसार के सुख–भोग में ही जीवन व्यतीत करना

यह जीवन का सच्चा-उद्देश्य नहीं है। मनुष्यजीवन का सच्चा-स्वरूप समझकर, उसे आचरण में लाना, यही उचित है।"

इन विचारों के आने पर, पार्श्वकुमार का चित्त सांसारिक-सुखभोग से अलग हो गया। ऊँची-तरह का जीवन व्यतीत करने की उनकी इच्छा बहुत बढ़ गई। ऐसी इच्छा को वैराग्य कहा जाता है।

पार्श्वकुमार, दुःखियों के आश्रयदाता थे, पतितों के उद्धारक थे और सदा यह इच्छा रखनेवाले थे, कि मैं मन, वचन अथवा काया से किसी भी जीव को दुःख न पहुँचाऊँ। उनका वैराग्य बढ़ता ही गया। वैराग्य के बाहरी चिन्ह स्वरूप, उन्होंने एक-वर्ष तक सोने की मुहरों का दान दिया। अन्त में, उन्होंने तीन उपवास किये और माता-पिता का छोटा-सा सम्बन्ध छोड़कर सारे संसार के साथ प्रेमपूर्ण तथा विशाल-सम्बन्ध स्थापित किया। अर्थात् सब जीवों के कल्याण की इच्छा से वे साधु होगये। और भी बहुत से मनुष्य, उनके साथ साधु-व्रत लेकर उनका अनुकरण करने लगे। ये लोग, साधु-जीवन व्यतीत करते हुए, एक स्थान से दूसरे स्थान में भ्रमण करने लगे।

: १४ :

श्री पार्श्वनाथजी, घूमते-घूमते एक दिन शहर के

नजदीक, तापस के आश्रम के पास आये। शाम पड़ चुकी थी और रात्रि के समय उन्हें भ्रमण नहीं करना था, इसलिये वहीं एक कुएँ के समीप, बड़ के वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर खड़े होगये।

मेघमाली को श्री पार्श्वनाथजी से वैर था, इसलिये उस रात्रि में उसने श्री पार्श्वनाथजी को अनेक प्रकार से सताने का प्रयत्न किया। उसने सिंह तथा हाथी के भय दिखलाये, रीछ तथा चीते के डर बतलाये, साँप तथा बिच्छू से भी डरवाया। किन्तु, पार्श्वनाथजी अपने ध्यान से जरा भी न डिगे। मेघमाली ने जब देखा, कि मेरे ये सारे प्रयत्न फिजूल गये, तब अन्त में उसने भयङ्कर-वर्षा का उपद्रव करना शुरू किया। आकाश में, घनघोर बादल हो आये, चारों तरफ कान को फोड़नेवाला बादलों का शब्द सुनाई देने लगा और बिजली इस तरह कड़कड़ाने तथा चमकने लगी, कि मानों गिरना ही चाहती हो। मूसलाधार वर्षा शुरू होगई।

इस उपद्रव के कारण, झाड़ उखड़ गये, बेचारे पशु-पक्षी इधर-उधर भागने लगे और जिधर देखो, उधर सारी-पृथ्वी जलमग्न दिखाई देने लगी।

प्रभु-पार्श्वनाथजी के चारों तरफ पानी घूम गया। देखते ही देखते पानी कमर तक पहुँच गया और थोड़ी

ही देर में वह छाती तक आ पहुँचा। फिर तो वह बढ़ते-बढ़ते गले तक और अन्त में उनकी नाक तक भर आया। किन्तु, पार्श्वनाथजी अपने ध्यान में इस तरह मग्न थे, कि उन्हें इस उपद्रव का पता भी न चला और वे अपनी समाधि से ज़रा भी न डिगे।

धरणेन्द्र नामक नागराज ने जब यह दशा देखी, तब उसने प्रभु द्वारा अपने पर किये गये उपकारों का बदला चुकाने की इच्छा से, स्वयं वहाँ आकर, वह उपद्रव बन्द करवाया। इस समय भी, श्री पार्श्वनाथजी तो शान्त-भाव से ही खड़े थे। उनके लिये तो धरणेन्द्र तथा मेघमाली, दोनों एक-समान थे। अर्थात्, वे शत्रु तथा मित्र दोनों को समान-दृष्टि से देखते थे। जो महात्मा, दोस्त और दुश्मन दोनों को सम-भाव समझते हैं, वे वास्तव में धन्य हैं।

: १५ :

श्री पार्श्वनाथजी को, इस घटना के थोड़े ही दिन बाद 'केवलज्ञान' अर्थात् सच्चा और पूर्ण-ज्ञान हो गया। केवलज्ञान होजाने के बाद, उन्होंने सब लोगों को पवित्र-जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। आप के उपदेश से बहुत से पुरुष तथा स्त्रियों ने पवित्र-जीवन व्यतीत

करना प्रारम्भ किया। इस तरह पवित्र-जीवन बितानेवालों का एक संघ स्थापित हुआ। इस प्रकार के संघ को तीर्थ कहते हैं। ऐसे तीर्थ की स्थापना करने के कारण ही, श्री पार्श्वनाथजी तीर्थ बनानेवाले अर्थात् तीर्थङ्कर कहलाये।

उनके माता-पिता तथा प्रभावती आदि सब परिवार भी उनके इस संघ में सम्मिलित होगया।

कुल, एक-सौ वर्ष की आयु व्यतीत कर, श्री पार्श्वनाथजी निर्वाण-पद को प्राप्त हो गये, अर्थात सब कर्मों के बन्धन से छूटकर, मुक्त-पद पागये।

बोलो, श्री पार्श्वनाथ-भगवान की जय !
बोलो, श्री तेईसवें तीर्थङ्कर-देव की जय ! !

ॐ शान्तिः

भगवान् श्री पार्श्वनाथको मेघमालीका परिषह। बडा खुबसुरत त्रिरंगी मनोवेधक चित्र। बढिया आर्ट पेपर। साइझ १०"×१५" आज ही मंगाइये। मू० ४ आना.

मोघ

नोंध

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम-श्रेणी :: :: पुष्प ४

प्रभु-महावीर

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ वि० | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पोरमशाहरोड,
अ म दा वा द

प्रभु-महावीर

श्री वीर-जिनेश्वर देव को, कोटिन बार प्रणाम ।

: १ :

भारतवर्ष में, मगधदेश एक अत्यन्त सुहावना प्रान्त है। इस प्रान्त के बीच में होकर गंगाजी बहती हैं, तब फिर इसकी सुन्दरता में कमी कैसे हो सकती है? जहाँ देखो वहीं अनाज से भरे हुए हरे-हरे खेत, चित्त को प्रसन्न करने-वाली तथा आनन्द देनेवाली आम की वाटिकाएँ एवं छोटे-बड़े ग्राम-नगर आदि दिखाई देते।

इस देश में क्षत्रियकुण्ड नामक एक बड़ा सुन्दर शहर था। इस नगर में सिद्धार्थ नामक एक राजा राज्य करते थे। ये बड़े ही धर्मात्मा और न्यायी-राजा थे। प्रजा के पालन और दीन-दुःखी की सहायता करने में ये सदा तत्पर रहते थे। इनके त्रिशलादेवी नामक एक चतुर रानी थीं।

कुछ समय के बाद त्रिशलादेवी गर्भवती हुईं। गर्भवती होने पर, उन्हें बड़े ही सुन्दर-सुन्दर स्वप्न दिखाई दिये। इससे उन्होंने जाना, कि मेरे महा-प्रतापी बालक जन्म लेगा। भविष्य की इस प्रसन्नता को सोचकर वे अत्यन्त खुश हुईं।

इसी दिन से, उन के कुल में धन-धान्य तथा आनन्द की वृद्धि होने लगी।

: २ :

चैत्र-सुदी तेरस की रात्रि है, चन्द्रमा का प्रकाश फैल रहा है आकाश अत्यन्त स्वच्छ है और सुन्दर-वायु धीरे-धीरे चल रही है। सारी-पृथ्वी, मानों आनन्द से परिपूर्ण हो रही है। इसी समय, त्रिशलादेवीजी ने, एक अत्यन्त-सुन्दर और तेजस्वी पुत्र-रत्न को जन्म दिया। उस समय सारे संसार में एक अलौकिक-तेज तथा आनन्द की लहर-सी फैल गई।

देवताओं ने इस बालक के यश का बखान किया और बड़ी प्रसन्नता के साथ उत्सव मनाया। राजा सिद्धार्थ ने भी, पुत्र-जन्म की खुशी में बड़ा उत्सव किया।

ये बालक, धन-धान्य तथा आनन्द की बढ़ती करनेवाला थे, इसलिये इनका नाम 'वर्द्धमान' रखा गया।

वर्द्धमानकुमार बहुत अधिक सुन्दर थे। उनके शरीर की बनावट अत्यन्त दृढ़ तथा सुडौल थी। उनके मन में मैल न था, पेट में पाप न था। वे दिन-प्रतिदिन गुणों में तरक्की ही करते जाते थे।

वर्द्धमानकुमार के नन्दिवर्धन नामक एक बड़े भाई, तथा सुदर्शना नामक एक बड़ी-बहिन भीं थीं।

: ३ :

वर्द्धमानकुमार, आनन्द से पाले-पोसे जाकर, बड़े होने लगे। सात-वर्ष की अवस्था में, वे एक बार अपने मित्रों के साथ बाहर खेलने गये। वहाँ एक झाड़ के सामने बड़ा-भारी साँप पड़ा था। उस साँप को देखकर और सब तो भाग गये, किन्तु वर्द्धमानकुमार ने उसे उठाकर दूर फेंक दिया। भय का तो वे नामभी न जानते थे।

खेल खेलने में वे अपनी तरह के एक ही थे।

: ४ :

आठ-वर्ष की अवस्था में उन्हें पढ़ने के लिये पाठ-शाला में भेजा गया। किन्तु वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ, कि उनकी अवस्था के हिसाब से उनकी समझ बहुत ज्यादा है और प्रत्येक बात को वे अपनी बुद्धि से ही समझ लेते हैं। अतः उन्हें कुछ सिखलाने की जरूरत न पड़ी, वे स्वयं ही प्रत्येक-बात सीख गये।

: ५ :

श्री वर्द्धमान, माता-पिता के बड़े भक्त थे। वे अपने माता-पिता का चित्त कभी दुःखी न करते थे। यहीं तक नहीं, वे प्राणिमात्र के कल्याण की भी भावना रखते थे। वे कभी किसी पर क्रोध नहीं करते, चित में कभी अभिमान का अंश भी न आने देते। सदा सरल-प्रकृति से रहते, सदैव सन्तोष रखते और अपनी मुखमुद्रा को सदैव शान्त तथा प्रसन्न रखते थे। जो कुछ बोलते, वह अत्यन्त-मीठा और दूसरों को सुख पहुँचानेवाला होता था। भला ऐसा स्वभाव किसे अच्छा न लगता?

उन्हें संसारिक विषय-लालसा अपनी तरफ आकर्षित न कर पाती थीं

: ६ :

श्री वर्द्धमानकुमार बड़ी अवस्था के जवान होगये, किन्तु विवाह करने की उनकी ज़रा भी इच्छा न थी। तथापि, माता-पिता के अधिक आग्रह करने पर, उन्होंने यशोदा नामक राजकुमारी से अपना विवाह कर लिया। यशोदा के गुण और उनकी सुन्दरता अपार थी। कुछ समय के पश्चात् उनके एक कन्या-रत्न ने जन्म लिया, जिसका नाम रखा गया-प्रियदर्शना।

: ७ :

वर्द्धमानकुमार, अट्ठाइस-वर्ष के हुए। इस समय उनके

माता-पिता धर्म-ध्यान करते हुए परलोकवासी होगये। श्री वर्द्धमानकुमार ने, यह दुःख शान्तिपूर्वक सहन किया। किन्तु, नन्दिवर्धन अत्यन्त दुःख करने लगे। उन्हें अत्यन्त-दुःखी देख, श्री वर्द्धमान ने कहा-" भाई ! शोक क्यों करते हो ? जरा विचार से काम लो और अपने हृदय में हिम्मत रखो। हिम्मत के साथ मुसीबत का मुकाबला करना ही सच्ची-वीरता है।" भाई का यह उपदेश सुनकर, नन्दिवर्धन का दुःख कम हुआ और उन्होंने शोक करना छोड़ा।

अब, पिताजी की गादी खाली पड़ी थी। यद्यपि बड़े होने के कारण उस गादी पर नन्दिवर्धन का अधिकार था, तथापि नन्दिवर्धन ने अपनी बुद्धिमानी और गुण-ग्राहकता के कारण श्री वर्द्धमान से कहा-" वर्द्धमान ! तुम राज्य का उपभोग करो, वास्तव में तुम्हीं उसके लायक हो "। श्री वर्द्धमान बोले-" नहीं भाई साहब ! आप ही गादी की शोभा बढ़ाइये, मेरे समीप राज्य का गुजर नहीं है। इसके बाद, सब ने एकत्रित होकर, नन्दिवर्धन को ही राजा बना दिया।

: ८ :

वर्द्धमानकुमार ने अब विचारा, कि माता-पिता के जीवित रहने तक दीक्षा न लेने की मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगई।

अब तो आत्मा के उद्धार करने और जगत् के कल्याण करनेका समय आ पहुँचा है। अतः बड़े भाई साहब से आज्ञा लेकर मुझे वैसा ही करना चाहिये।

यह सोचकर वे नन्दिवर्धन के पास आये और उनसे दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी। श्री वर्द्धमान का विचार सुनते ही नन्दिवर्धन के दुःख की कोई सीमा न रही। वे कहने लगे-" प्यारे भाई! अबतक माता-पिता का वियोग मुझे दुःख दे ही रहा है, तिसपर अब तुम भी ऐसी बातें कर रहे हो! भला सोचो तो, कि मैं तुम्हारा वियोग कैसे सह सकता हूँ ? "

बड़े-भाई के आग्रह से कुछ दिनों के लिये श्री वर्द्धमान ने अपने विचारों को स्थगित रखा। किन्तु उसी क्षण से उन्होंने अपने जीवन के सभी तरीकों में भारी रद्दोबदल कर दिया। वे साधु की तरह जीवन व्यतीत करने लगे।

: ९ :

अनेक प्रकार के सुख साधनों तथा नाना प्रकार की सुविधाओं से भरपूर राजमहल, खमा-खमा करते हुए सैकड़ों नौकर-चाकर और अत्यन्त गुणवती रानी यशोदा, इन सब का सहवास छोड़कर, श्री वर्द्धमान राजमहल के एकान्त-भाग में निवास करने लगे। इस स्थान पर रहकर वे भविष्य की तयारियें करने और अपना अधिक समय आत्म-

चिन्तन में ही व्यतीत करने लगे। आवश्यकता पड़ने पर शुद्ध अन्न-पानी ही ग्रहण करते थे। इस तरह एक-वर्ष व्यतीत होगया।

दूसरे वर्ष के प्रारम्भ से ही उन्होंने दान देना शुरू किया और बहुत-अधिक सोने की मुहरों का दान दिया। एक वर्ष तक दान देकर वे साधु-जीवन व्यतीत करने को तत्पर हुए।

: १० :

मागशिर-विदी दसमी का दिन है, आज सारा क्षत्रियकुण्ड नगर उत्सव मना रहा है। नगर के बाहर ज्ञात-शील नामक एक सुन्दर बाग है। वहाँ मनुष्यों की बड़ी भीड़ लग रही है। सब मनुष्य, वर्द्धमानकुमार के आने का मार्ग देख रहे हैं।

कुछ समय के पश्चात् हजार ध्वजावाला इन्द्रध्वज वहाँ आया। जिसके पीछे नगाड़े तथा बाजेवाले आये। इनके पीछे नन्दिवर्धन राजा तथा उनके मन्त्रीगण पधारे। फिर सामन्त तथा सेठ-साहूकार आदि आये। इनके पीछे-पीछे एक सुन्दर पालकी आई, जिसमें श्री वर्द्धमानकुमार बैठे थे। इस पालकी के पीछे-पीछे, अन्तःपुर की रानियें तथा नगर की स्त्रियें गीत गाती हुई आती थीं। अहा! वह भी कैसा

सुन्दर दृश्य था ? स्त्रियों के नेत्रों में तो आँसू भरे थे और मुँह से गीत गाती जा रही थीं।

श्री वर्द्धमानकुमार, पालकी में से नीचे उतरे। उन्होंने अपने शरीर में अत्यन्त-सुगन्धित पदार्थ लगा रखे थे। उनके शरीर पर के वस्त्रों तथा आभूषणों की शोभा का वर्णन नहीं किया जासकता,। वहाँ आकर श्री वर्द्धमान ने अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक एक के बाद एक, इस तरह अपने शरीर पर के सारे वस्त्राभूषण उतार डाले। केवल एक ही अलौकिक वस्त्र अपने शरीर पर रखा। सिर के बाल अपने ही हाथ से उखाड़ डाले और साधु-जीवन की महान्-प्रतिज्ञा ली। उस प्रतिज्ञा का सारांश यों है:—

"आज से मैं किसी भी प्रकार का पापकार्य, मन, वचन और काया से न करूंगा और सम्पूर्ण रूप से अपनी आत्मशुद्धि करूंगा।"

इसके बाद, वहाँ पधारे हुए सब मनुष्यों को सम्बोधन करके श्री वर्द्धमान बोले-"महानुभावो! मेरा जीवन आज से एक दूसरी दिशा की ओर प्रारम्भ होगया है। अब, मैं दूसरी जगहों पर जाने की आज्ञा माँगता हूँ।" सब ने आज्ञा दी।

तीस-वर्ष के जवान-राजकुमार, अपनी आत्मशुद्धि के लिये चल निकले।

: ११ :

बड़े भाई नन्दिवर्धन ने श्री वर्द्धमान की भावना समझकर ही उन्हें आज्ञा दी थी। किन्तु उनका प्रेम अथाह था। जब, श्री वर्द्धमान चले, तब नन्दिवर्धन रोने लगे और उनके नेत्रों से टप-टप आँसू गिरने लगे। किन्तु अब श्री वर्द्धमान का मन ऐसा नहीं रह गया था, कि वह जगत् के माया-जाल में फँस सके। उन्हें जो महान्-साधना करनी थी, उसी की तरफ लक्ष रखकर, वे शान्तचित्त से चलने लगे।

: १२ :

यद्यपि, महात्मा तो बहुत हो चुके हैं, किन्तु वर्द्धमान से अच्छा कोई न हुआ। उन्होंने साधुपना लेते ही, बड़े कड़े-तप करना प्रारम्भ किया। किसी समय दो उपवास, किसी समय चार उपवास, कभी पन्द्रह और कभी-कभी बीस उपवास तक कर डालते थे। यहीं तक नहीं, उन्होंने छः-छः महीने तक के लम्बे-उपवास भी कर डाले।

श्री वर्द्धमान खूब उपवास करते और ध्यान धरते थे। और ध्यान भी कैसी जगह धरते थे? किसी खँडहर अथवा मसान में, किसी जंगल या गुफा में, किसी मन्दिर अथवा किसी अन्य भयङ्कर-जगह में।

वहाँ बर्र काटतीं, मधुमक्खियें काटतीं और भौंरे काटते।

किन्तु, वे ये सारी तकलीफें शान्ति से सहन कर लेते थे। उन पर चाहे जैसा कष्ट पड़ता, किन्तु 'महावीर' अपने ध्यान से कभी न चूकते।

: १३ :

एकबार वे चले जारहे थे। मार्ग में उन्हें कुछ ग्वाले मिले। वे कहने लगे—"महाराज! आप इस रास्ते से न जाइये। आगे, एक भयङ्कर-वन आवेगा, वहाँ एक काला और मणिधर नाग रहता है। वह फुफकार से ही मनुष्यों के प्राण ले लेता है, अतः आप यदि इस रास्ते से न जाकर किसी और रास्ते से जायँ, तो बड़ा अच्छा हो।"

किन्तु, श्री वर्द्धमान तो वीर-हृदय थे, वे भला संसार में किसी से कैसे डर सकते? फिर वह भयङ्कर-वन अथवा भयङ्कर काला-नाग उन्हें क्या भयभीत कर पाता? वे तो बिना किसी प्रकार का डर अनुभव किये, आगे की तरफ को बढ़ चले। आगे चलने पर एक घोर-जंगल आया। वहाँ जाने की किसी की भी हिम्मत न होती थी। उस वन में जहाँ देखो वहीं वृक्ष तथा लतादि की झाड़ी थी, जहाँ देखो वहीं वृक्षों के बीच में कचरा-काँटा भरा था। पत्तों के तो इस तरह ढेर लगे हुए थे, कि मार्ग भी नहीं मालूम होता था। किन्तु इन सारी आपत्तियों की परवाह न कर, दृढ़-निश्चयी श्री वर्द्धमान तो आगे की तरफ चले।

उस वन में एक बड़ी-भारी बिल था, जिसमें एक काला-नाग रहता था। वह बहुत ज्यादा जहरीला था। उसकी फुफकारमात्र से मनुष्य अथवा पशु कोई भी हो, मर जाता था। उसका नाम था-चण्डकोशी।

चण्डकोशी ने, श्री वर्द्धमान को देखा। फिर तो पूछना ही क्या था? उन्हें देखते ही वह फुफकारने लगा। किन्तु उसके बार-बार और जोर-जोर से फूँ-फूँ करने पर भी वर्द्धमान पर कोई असर न हुआ।

अपना प्रयत्न असफल होते देख, चण्डकोशी अपने मन में सोचने लगा—"अरे, यह क्या? यह तो कोई विचित्र-मनुष्य मालूम होता है! इसके शरीर पर ज़हर का प्रभाव क्यों नहीं होता? अच्छा, तो अब मैं काटकर देखता हूँ, कि आखिर जहर का प्रभाव कब तक नहीं होता!" वह दौड़ा और श्री वर्द्धमान के दाहिने-पैर के अँगूठे में काट खाया। किन्तु इसका भी उनके शरीर पर कोई प्रभाव न पड़ा, वे तो सच्चे-सन्त जो ठहरे!

अब साँप के ज़हर का क्या प्रभाव होसकता था? अपने सारे प्रयत्न असफल होते देख, वह बेचारा बिलकुल ठण्डा पड़ गया। उसको शान्त होते देख, श्री वर्द्धमान बोले-"चण्डकौशिक! कुछ सोच-समझ, जरा अपने आत्मा का भी ध्यान रख"।

श्री वर्द्धमान के सदृश महात्माओं के पवित्र-मुख से निकली हुई वाणी किसे लाभ नहीं करती ? उपरोक्त पवित्र-शब्द कान में पड़ते ही, महान्-ज़हरी चण्डकोशी का विष नाश हो गया और वह आत्मकल्याण के मार्ग पर लग गया। श्री वर्द्धमान आगे की तरफ चले ।

: १४ :

श्री वर्द्धमान चलते-चलते राजगृह नामक एक बड़े-शहर में आये । उस नगर का एक भाग नालन्दा के नाम से प्रसिद्ध था । श्री वर्द्धमान नालन्दा में ही एक बुनकर की बुनकरशाला में उतरे ।

इस समय के बाद चातुर्मास प्रारम्भ होता था और चौमासे में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का मुनियों का नियम नहीं है, अतः श्री वर्द्धमान वहीं रह गये ।

वहाँ गोशाला नामक एक चित्रकार का लड़का आया। वह बड़ा कुलक्षणी और ज़बरदस्त उपद्रवी था। लोगों को तसवीरें दिखला-दिखलाकर, वह अपना गुजर चलाता था। उसने सोचा-" चलो मैं इन सन्त का शिष्य होजाऊँ, बस फिर कमाने-धमाने की आफत से छुट्टी मिल जाय " ।

श्री वर्द्धमान ध्यान में खड़े थे। वहाँ आकर गोशाला बोला—" भगवान ! मैं आपका चेला बनना चाहता हूँ " ।

किन्तु भगवान कुछ भी न बोले, न कुछ सङ्केत ही किया। कुछ उत्तर न पाकर, गोशाला स्वयं ही उनका चेला बन गया, यानी उसने अपने आपको श्री वर्द्धमान का चेला घोषित कर दिया।

चौमासा पूरा होगया और श्री वर्द्धमान ने विहार कर दिया। उनके साथ ही साथ गोशाला भी चला। गुरु कितने शान्त सहिष्णु और मूर्तिमान धर्म तथा चेला कितना उच्छृंखल, असहिष्णु और स्वार्थी ? कैसा विचित्र साथ हुआ !

: १८ :

श्री वर्द्धमान सदैव ध्यान में ही रहते । गोशाला लोगों के प्रति उपद्रव करता और फल-स्वरूप खूब मार खाता और अपने साथ ही वह गुरु को भी मार खिलाता। चेले का व्यवहार तो देखिये !

एक दिन श्री वर्द्धमान चले जारहे थे। गोशाला भी उनके साथ ही था। रास्ते में कुछ सिपाही मिले। सिपाहियों ने पूछा—"तुम कौन हो ?"। श्री वर्द्धमान तो ध्यान में थे ही, अतः वे कुछ न बोले; किन्तु गोशाला ने भी ध्यान लगा लिया और वह भी कुछ न बोला।

सिपाहियों ने दोनों को पकड़ा और बन्दी बनाकर उन्हें बड़े कष्ट दिये। किन्तु वर्द्धमान तो सच्चे साधु थे, भला सन्तों की परीक्षा सिपाही क्या कर सकते ?

थोड़ी देर के बाद सिपाहियों ने जाना, कि ये तो कोई महापुरुष हैं। वे सोचने लगे—"अहो! हमने बड़ा ही बुरा किया। बिना पहचाने एक महात्मा को दुःख दिया। अच्छा चलो, हमलोग उनसे माफी माँगें।"

उन्होंने श्री वर्द्धमान से अपने पापों के लिये माफी माँगी किन्तु। श्री वर्द्धमान तो क्षमा के भण्डार थे, उन्हें सिपाहियों के बर्ताव से किंचित् भी क्रोध न था, जिससे माफी देने अथवा माफी माँगने की कोई आवश्यकता ही न रही थी।

: १६ :

एक बार, श्री वर्द्धमान चलते-चलते एक जंगली-मुल्क में पहुंचे, जिसका नाम राढ़ था। वहां के रहनेवाले मनुष्य भी जंगली ही थे। वे लोग साधु को देखते ही मारने दौड़ते और अपने कुत्तों को उन पर छोड़ देते। इस तरह वे अपने सभी असभ्य-उपाय आजमाते थे।

उन लोगों ने, अपनी रीति के अनुसार ही, श्री वर्द्धमान को भी खूब सताया। उन्हें रहने के लिये न तो मकान ही मिलता था और न भिक्षा ही मिलती थी। किन्तु उन्हें तो तप अत्यन्त-प्रिय था, अतः व तप और ध्यान किया करते थे। इस तरह कई मास उन्होंने उसी प्रदेश में भ्रमण करके बिता दिये।

इस समय गोशाला उनके साथ न था। उसे मालूम था, कि राढ़ कैसा देश है और वहाँ साधुओं के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है। राढ़-प्रदेश में से जब श्री वर्द्धमान लौट आये, तब गोशाला फिर आकर उनके साथ हो लिया।

: १७ :

एक बार श्री वर्द्धमान पूर्ण-ध्यान में खड़े थे । अँधेरी रात्रि और उसमें भी कड़ाके का पड़नेवाला जाड़ा, मानों उनकी परीक्षा कर रहा था। इसी समय व्यापारियों का एक काफला वहाँ आपहुँचा, जो व्यौपार के लिये दूर-दूर के देशों में जाना चाहता था।

रात्रि का समय और सर्दी को अधिकता होने के कारण उन व्यौपारियों ने तापने के लिये आग जलाई। उस आग से वे सबेरे तक तापते रहे और सबेरा होजाने पर आगे को चल दिये। व्यौपारी तो चले गये, किन्तु वह अग्नि ज्यों की त्यों सुलगती ही रही। पास ही बहुत-सा घास लगा था, जो अग्नि के कारण किसी तरह जलने लगा। उस अग्नि में जंगली-पदार्थों के जलने से बड़े जोर का धमाका होने लगा और अग्नि प्रचण्ड-रुप धारण करती हुई बहुत बढ़ गई। अग्नि जलती-जलती श्री वर्द्धमान तथा गोशाला के सामने भी पहुंची ।

सच्चे-साधु श्री वर्ध्धमान तो इस विपत्ति के समय भी अपने स्थान से हिले-डुले नहीं। किन्तु गोशाला से उस अग्नि की गर्मी न सही गई और वह चिल्लाकर बोला-" गुरुजी! भागो, सर्वग्राही-अग्नि आपहुँची, अभी हमलोग जलकर भस्म होजावेंगे "।

इतना कहकर गोशाला भाग खड़ा हुआ। सच्चे-साधु श्री वर्द्धमान तो शान्तिपूर्वक अपने स्थान पर ही खड़े रहे। चाहे शरीर रहे या जल जाय, किन्तु लगाया हुआ ध्यान कैसे छोड़ा जा सकता था? उनके दोनों पैर खूब झुलस गये।

ध्यान पूरा होने पर श्री वर्द्धमान आगे चले। गोशाला उनसे फिर आ मिला और पीछे से एक विद्या साधने के लिये पृथक् होगया।

: १८ :

एक बार श्री वर्द्धमान ध्यान में खड़े थे। उसी समय वहाँ एक ग्वाला आया, उसके साथ बैलों की जोड़ी थी। उस ग्वाले को गाँव में जाकर वापस वहीं आना था। उसने सोचा-" थोड़ी देर के लिये इन बैलों को गांव में क्यों ले जाऊँ? यहीं क्यों न छोड़ दूँ? " फिर श्री वर्द्धमान से बोला-"ऐ भाई! थोड़ी देर इन बैलों को देखते रहो, मैं गाँव से अभी वापस आता हूँ "। श्री वर्द्धमान तो ध्यान में

मग्न थे, अतः उन्होंने कोई उत्तर न दिया। ग्वाला गांव की तरफ चल दिया और पीछे से बैल भी जंगल में चले गये।

ग्वाले ने वापस लौटकर देखा, तो उसे वहाँ बैल न दिखाई दिये। वह बोला—" अरे साधु महाराज ! मेरे बैल कहां हैं ? "। किन्तु श्री वर्द्धमान ने कोई उत्तर न दिया। ग्वाले को बड़ा क्रोध आया, उसने फिर से पूछा--" अरे महाराज ! मेरे बैल कहां गये ? "। किन्तु फिर भी कोई उत्तर न मिला, अतः ग्वाले को और भी ज्यादा क्रोध हो आया।

वह फिर बोला--" क्यों बे साधु ! सुनता नहीं है क्या ? क्या ये तेरे कान के छेद फिजूल हैं ? कुछ जवाब नहीं देता ? अच्छा, ला तब ये छेद बन्द ही क्यों न कर दूँ ? " यह कहकर वह नोकदार घास की सलाइयें ले आया और उन्हें घुसेड़कर कान के सूराख बन्द कर दिये। सलाइयों का जो भाग बाहर रह गया था, उसे उसने इसलिये काट डाला, कि कोई उन्हें खींचकर बाहर न निकाल दे।

अहा ! इतने भारी संकट के पड़ने पर भी श्री वर्द्धमान के मुख से ' अरे ' न निकला। कैसी क्षमा ? कितनी सहनशीलता !

ध्यान पूरा होने पर, श्री वर्द्धमान ने ग्राम में जाकर

भिक्षा ग्रहण की। वहाँ दो भाई रहते थे, वे बड़े ही चतुर थे। उन्होंने पहचाना, कि इन सन्त के शरीर में कोई पीड़ा है। किन्तु सन्त तो भिक्षा ग्रहण करके ग्राम से बाहर आ, ध्यान में मग्न होगये।

उन दोनों भाइयों से, श्री वर्द्धमान का दुःख न देखा गया और वे दवा लेकर श्री वर्द्धमान के पीछे-पीछे वहीं आये। वहाँ आकर उन्होंने चतुरतापूर्वक कान में से सलाइयें खींच लीं। इस समय अत्यधिक-पीड़ा के कारण, श्री वर्द्धमान के मुख से एक आह निकल पड़ी। थोड़ी देर के बाद वे शान्त होगये और फिर ध्यान करने लगे।

अहा! कैसी वीरता! ऐसी वीरता न कभी देखी, और न सुनी। ऐसी वीरता के कारण ही, श्री वर्द्धमान महावीर कहलाये।

: १९ :

प्रभु-महावीर, एक अनाज के खेत में, शालिवृक्ष के नीचे ध्यान में मग्न बैठे थे, पास ही एक नदी बहती थी। दिन का चौथा पहर था और उन्हें छट्ठका तप था।

ऐसे समय में उन्हें केवलज्ञान हुआ, अर्थात् सब बातें वे ठीक-ठीक रूप में जानने लगे। उन्हें सच्चे सुख का मार्ग मिल गया।

: २० :

इस समय देश में धन-धान्य खूब था, कला-कौशल का भी खूब प्रचार था। किन्तु सच्चा-धर्म दुर्लभ था। लोग यज्ञ-यागादिक खूब करते और उनमें प्राणियों को मार-मारकर बलि चढ़ाते थे। धर्म के नाम पर निर्दोष-प्राणियों का संहार होता था। ब्राह्मण तथा अन्य उच्च-जातियें, शूद्रों एवं अछूतों को बहुत ही नीच-दृष्टि से देखती थीं। शूद्र अथवा अछूत, अपने किसी भी नागरिक-अधिकार का उपभोग न कर पाते थे। स्त्रियों का दर्जा बहुत-अधिक गिर गया था। धर्मशास्त्र, विद्वानों की भाषा संस्कृत में ही लिखे जाते थे, अतः जन-साधारण उन शास्त्रों से कोई लाभ न उठा सकते थे। अनेक सम्प्रदाय तथा अनेक धर्म उस समय चल रहे थे। प्रभु महावीर ने यह सारी स्थिति ध्यान में रखकर अपना उपदेश प्रारम्भ किया। उनके उपदेश का सार यों है :—

" हिंसा से भरे हुए होम-हवन अथवा क्रियाकाण्ड से सच्चा-धर्म नहीं होता। धर्म तो केवल आत्मशुद्धि से ही होता है।

जो सद्गुणी है, वही ब्राह्मण है और जो दुराचारी है, वही शूद्र है।

धर्म का ठेका किसी मनुष्य-विशेष को नहीं है।

प्रत्येक मनुष्य को धर्म करने का अधिकार है, फिर वह चाहे ब्राह्मण हो या चाण्डाल, स्त्री हो या पुरुष। अहिंसा ही परम–धर्म है।

जिसकी आत्मा का पूरा-विकास होजाता है, वही परमात्मा बन जाता है।

वस्तु की प्रत्येक दिशा पर विचार करने से ही उसका सच्चा--स्वरूप समझा जासकता है—इत्यादि।"

प्रभु--महावीर, लोगों की प्रचलित--भाषा में ही अपना उपदेश देने लगे। तीस--वर्ष तक उन्होंने देश के भिन्न–भागों में भ्रमण करके अपना उपदेश दिया। चारों वर्ण के स्त्री–पुरुष उनके शिष्य हुए। इन्द्रभूति गौतम, सुधर्मा आदि ब्राह्मण; मेघकुमारआदि क्षत्रिय; धन्ना, शालिभद्र आदि वैश्य; मेतारज, हरिकेशी वगैरा शूद्र, भगवान के त्यागी–शिष्य थे!

वैशालीपति चेड़ा महाराज, राजगृहपति श्रेणिक और उनके पुत्र कोणिक आदि क्षत्रिय; आनन्द तथा कामदेव व्यौपार एवं खेती करनेवाले वैश्य; शकडाल तथा ढंक आदि कुमहार; प्रभु के खास गृहस्थ–शिष्य थे।

त्यागी स्त्री–शिष्याओं में, चन्दनबाला तथा प्रियदर्शना क्षत्रिय–कन्याएँ थीं; देवनन्दा ब्राह्मणी थीं। गृहस्थ स्त्री–शिष्याओं में रेवती, सुलसा, जयन्ती आदि विदुषी–बहनें थीं।

कुल १४००० साधु तथा ३६००० साध्वियों ने भगवान महावीर के हाथ से दीक्षा पाई थी। इनके अतिरिक्त गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी बहुत थे।

भगवान-महावीर ने इन सब को मिलाकर एक संघ स्थापित किया। एसा संघ तीर्थ कहा जाता है। यही कारण है, कि वे तीर्थङ्कर कहलाये। इनके बाद, फिर कोई तीर्थङ्कर नहीं हुए। इसीलिये ये अन्तिम-तीर्थङ्कर कहे जाते हैं। उन्होंने अपने राग-द्वेष को पूरी तरह जीत लिया था, इसलिये वे 'जिन' भी कहे जाते हैं। और उनका अनुकरण करनेवालों को 'जिन' शब्द के सम्बन्ध से जैन कहते हैं।

पतित मानव-समाज के सामने, आदर्श-जीवन व्यतीत करनेवालों का यह संघ स्थापित कर, भगवान ने संसार के सुधार की घोषणा की। अनेक भ्रम तथा बहुत-सी कुरीतियों की जड़ उखड़ गई। लोग, अहिंसा का रहस्य समझने लगे। संसार को ज्ञान और सच्चे-त्याग का भारतवर्ष में फिर एक प्रकाश दिखाई दिया।

: २१ :

विहार करते-करते प्रभु-महावीर पावापुरी गये। वहाँ बहुतसे राजालोग इकट्ठे हो रहे थे। उन्हें भगवान ने अपनी अमृत-वाणी से उपदेश दिया। यह अन्तिम-धर्मोपदेश देकर, प्रभु-महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। अहा! भारतवर्ष का

सूर्य अस्त हो गया, भक्तों ने उनकी कमी पूरी करने के लिये लाखों दिये जलाये, जिनसे दिवाली का त्यौहार शुरू हुआ।

जिस महापुरुष ने अद्वितीय-जीवन बिताकर अपनी आत्मा तथा जगत का कल्याण किया, उसके गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? जबतक संसार का अस्तित्व है, तबतक वह इस उपकार को याद रखेगा और उनके उपदेश का अनुसरण कर, अपना कल्याण साधेगा।

अगणित वन्दन हों प्रभु-महावीर को!
अगणित प्रणाम उस मानवजाति के उद्धारक को!

प्रभु महावीरकी निर्वाणभूमि - जलमंदिर पावापुरी
का
अत्यंत मनोहर त्रिरंगी चित्र।
मू. २ आना

त्रिशला माताको आये हुए चौदह स्वप्न
भाववाही त्रिरंगी चित्र।
मू. २ आना २५ नकल रु. २॥
ज्योति कार्यालय

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथमश्रेणी : : पुष्प ५

वीर धन्ना

लेखकः
श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

अनुवादकः
श्री भजामिशङ्कर दीक्षित

सर्वाधिकार—सुरक्षित

संवत १९८८ वि० | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

प्रकाशक :

ज्योति-कार्यालय :

हवेली की पोल, रायपुर,

अ ह म दा बा द.

मुद्रक :

चीमनलाल ईश्वरलाल महेता.

" व सं त मु द्र णा ल य "

घीकांटारोड :: अ ह म दा बा द.

वीर धन्ना

: १ :

दक्षिण देश में गोदावरी नदी के किनारे पर एक बड़ा शहर था। उसका नाम पैठण था। वहाँ एक सेठ रहता था। उसका नाम धनसार था। धनसार सेठ के चार पुत्र थे। सबसे छोटे पुत्र का नाम धन्ना था। धन्ना में उसके नाम के अनुसार ही गुण भी थे। उसके जन्मते ही धनसार सेठ के यहाँ धन-वृद्धि होने लगी।

धन्ना खेलने में बहुत चालाक था। धन्ना के पिता ने धन्ना को आठ-वर्ष की अवस्था में पढ़ने के लिये बैठाया। पाठशाला में धन्ना लिखना, पढ़ना, गणित, राग-रागिनी आदि बहुत-सी कलाएँ सीखा और समस्त विद्याएँ पढ़ा। सब लोग धन्ना की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे, कि-"धन्ना बहुत होशियार है"।

धन्ना के बड़े भाई धन्ना की बड़ाई सुन-सुनकर ईर्ष्या के मारे जलने लगे। वे आपस में बातें करके कहने लगे, कि "धन्ना की इतनी बड़ाई क्यों? उसमें पिताजी

तो धन्ना की बड़ाई सीमा से भी अधिक करते है। जब देखो, तब धन्ना की प्रशंसा की ही बात। वे यही कहा करते हैं, कि मेरा धन्ना ऐसा है और मेरा धन्ना वैसा है! समझ में नहीं आता, कि छोटा-सा बालक धन्ना ऐसा क्या करता है, जिसके कारण पिताजी उसकी इतनी बड़ाई करते हैं? धन्ना केवल खाता-पीता तथा चलता फिरता है, तब भी उसकी इतनी बड़ाई करते हैं और हम तीनों भाई व्यापार करके धन कमाते हैं, फिर भी पिताजी हमारी बड़ाई क्यों नहीं करते?"

होते-होते धनसार सेठ को मालूम हुआ, कि मेरे तीनों लड़के अपने छोटे-भाई धन्ना से ईर्ष्या करते हैं। स्वयं तो बुद्धिमान तथा विचारशील हैं नहीं, और दूसरे की बुद्धिमानी तथा विचारशीलता इनसे देखी नहीं जाती। यही कारण है, कि ये लोग धन्ना से ईर्ष्या करते हैं। इसलिये यह उचित होगा, कि चारों-लड़कों की परीक्षा लेकर धन्ना की बुद्धि से इन तीन ईर्ष्यालु लड़कों को परिचित किया जावे। ऐसा किये बिना ये तीनों ईर्ष्या न छोड़ेंगे।

: २ :

इस प्रकार विचार सेठ ने अपने चारों लड़कों को बुलाकर कहा, कि-"ये स्वर्णमुद्रा लो और इससे पृथक्

पृथक् व्यापार करो। संध्या के समय घर लौट आना, तथा व्यापार से जो आमदनी हो, उसी से सब को भोजन कराना।"

पिता की दी हुई स्वर्णमुद्रा लेकर धन्ना बाजार में आया। वह एक दुकान के सामने खड़ा हो गया। दूकान का सेठ पत्र पढ़ रहा था। उस पत्र के उलटे अक्षर दूसरी तरफ से दिखाई देते थे। धन्ना ने पत्र की पीठ की ओर से उन उलटे-अक्षरों को पढ़ा। पत्र में लिखा था, कि—

"अभी बंजारे की बालद (काफिला) आती है। उसमें बहुत-महँगा किराना है, इसलिये जल्दी से जाकर वह किराना खरीद लेना। ऐसा करने से बहुत लाभ होगा।"

उलटे-अक्षरों को पढ़ने से धन्ना को पत्र का हाल मालूम होगया। उसने सोचा-चलो, अपना तो बेड़ा पार है! वह नगर के बाहर आया और बंजारे से मिलकर सौदा तय कर लिया। उसी समय वह सेठ भी आगया। सेठ ने बंजारे से कहा-"अरे भाई बंजारे! क्या किराना बेंचोगे?" सेठ की बात के उत्तर में बंजारा बोला-"सेठ जी! किराने का सौदा तो हो चुका और खरीदने वाले ये खड़े हैं"।

बंजारे का उत्तर सुनकर सेठ आश्चर्य में हुआ और कहने लगा, कि-"यह मेरा दोस्त किराना खरीदने के

लिये कहाँ से आगया ? अब, मैं इसी से किराना खरीद लूँ। सेठने धन्नासे पूछा कि–"क्यों भाई ! किराना बेंचना है ?" धन्ना ने उत्तर दिया–"हाँ, बेंचना है"। सेठ ने फिर पूछा कि–"क्या लोगे ? " धन्ना बोला–" नफे की सवा-लाख सोने की मुहरें लूंगा "। सेठ ने कहा–"अच्छा ऐसा ही सही, तुम नफा लेलो और मुझे किराना दे दो" ।

धन्ना ने सेठ से नफे की सवा-लाख स्वर्णमुद्रा ले लीं और घर की ओर रवाना हुआ।

धन्ना के तीनों बड़े-भाई व्यापार करके धन प्राप्त करने के लिये बाजार में गये। उन्होंने खूब दौड़-धूप की, परन्तु काफी लाभ न हुआ। संध्या होगई । पिता के हुक्म के मुताबिक संध्या के समय घर को लौटना आवश्यक था, इसलिये तीनों-भाई घर की तरफ चले।

चारों-भाई घर आये। तीन बड़े-भाइयों की आय बहुत कम हुई थी, इसलिये इन तीनों में से एक भाई मूँग लाया, दूसरा भाई चँवले लाया और तीसरा भाई उर्द लाया। लेकिन धन्ना कुटुम्ब को भोजन कराने के लिये मेवा-मिठाई लाया और साथ ही-भौजाइयों को देने के लिये अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण भी लाया।

सारा कुटुम्ब धन्ना पर प्रसन्न हुआ, लेकिन उन

तीनों-भाइयों के मुँह उतर गये। वे कहने लगे, कि-"धन्ना ने ठगाई की है। इसने बेचारे सेठ का उलटा कागज पढ़ लिया था। इस प्रकार ठगाई करना, व्यापार नहीं है। व्यापार में धन्ना की परीक्षा करने पर मालूम हो जावेगा, कि धन्ना प्रशंसा के योग्य है, या हम प्रशंसा के योग्य हैं"।

धनसार-सेठ ने अपने तीनों लड़कों को समझाते हुए कहा-" बच्चो! समझो। ईर्ष्यालु होना अच्छा नहीं है"। तीनों लड़कों ने कहा-"ठीक, हम तो इर्ष्यालु हैं, एक आपका धन्ना ही अच्छा है।

: ३ :

तीनों भाई धन्ना की बड़ाई से जलने लगे। सेठ ने कहा, कि-"अच्छा मैं फिर से तुम चारों की परीक्षा करता हूँ"। सेठ ने अपने चारों लड़कों को बुलवाया और उन्हें थोड़ी-थोड़ी सोने की मुहरें देकर कहा, कि-"इस बार होशियारी से काम लेना। इन सोने की मुहरों से व्यापार करके संध्या के समय घर को लौट आना और जो आमदनी हो, उससे सब को भोजन कराना!"

चारों भाई व्यापार करने चले। धन्ना के तीन-भाई बहुत घूमे, लेकिन उनकी समझ में यही न आया, कि हम कौन-सा व्यापार करें।

धन्ना पशुओं के बाजार में गया। पशुओं के बाजार में गायें भैंसे, घोड़े, ऊँट, बकरे, भेड़े आदि बहुत से पशु थे। धन्ना ने वहाँ एक अच्छा-सा भेड़ा खरीदा। भेड़ा बहुत—अच्छा था।

भेड़ा लेकर धन्ना बाजार से चला। मार्ग में धन्ना को राजकुमार मिले। उन के साथ भी भेड़ा था और सब के साथ बाजी लगाकर उनके भेड़े से अपना भेड़ा लड़ाते थे।

भेड़ा लिये हुए धन्ना को देखकर राजकुमार ने धन्ना से कहा—"सेठजी! भेड़ा लड़ाना है?" धन्ना ने कहा, कि—"प्रसन्नता से लड़ाइये"। राजकुमार बोले, कि—"भेड़ा लड़ाने में एक शर्त है। जिसका भेड़ा हारेगा, वह सवा-लाख सोनेकी मुहरें देगा"। धन्ना ने उत्तर दिया, कि "मुझे यह शर्त स्वीकार है"। धन्ना ने अपना भेड़ा राजकुमार के भेड़े से लड़ाया। राजकुमार का भेड़ा धन्ना के भेड़े से हार गया, इसलिये राजकुमार ने धन्ना को सवालाख सोने की मुहरें दीं।

राजकुमार ने विचारा, कि यह भेड़ा बहुत अच्छा है। इसे भेड़े को ले लेवें, तो बहुत जीत होगी। इसलिये इसे खरीद लें। इस प्रकार विचारकर राजकुमार ने धन्ना से कहा,—"सेठ! भेड़ा बेंचना है?" धन्ना ने उत्तर

दिया—"हाँ, लेकिन इसकी कीमत बहुत है"। राजकुमार ने पूछा, कि—"कितनी कीमत है ?" धन्ना ने कहा—"सवा लाख सोने की मुहरें"। राजकुमार बोला—"ये सवा लाख सोने की मुहरें लो और यह भेड़ा मुझे दो"। धन्ना ने भेड़ा राजकुमार को देकर राजकुमार से सवा—लाख सोने का मुहरें ले लीं।

धन्ना, कैसा भाग्यवान था, कि उसे ढाई—लाख सोने की मुहरं मिल गईं ! उसके बड़े भाई बहुत दौड़े धूपे, लेकिन किस्मत के फूटे थे। उन्हें कोई आमदनी नहीं हुई। चारों भाई घर आये। सब लोग धन्ना की बड़ाई करने लगे। धन्ना का बड़ाई सुनकर उन तीनों—भाइयों के मुँह उतर गये। वे कहने लगे, कि—"धन्नाने तो जुआ खेला था। शर्त लगाना, जुआ ही कहलाता है। जुआ खेला था, उसमें कभी हार गया होता, तो क्या दशा होती ? जुआ खेलना, व्यापार नहीं कहलाता। व्यापार में धन्ना की परीक्षा करो !"

धनसार सेठ ने अपने बड़े लड़कों से कहा—"कि—"लड़को ! पागल मत बनो। किसी को अच्छा देखकर प्रसन्न होना चाहिए, उसकी ईर्ष्या न करना चाहिए। पिता की बात सुनकर तीनों लड़कों ने उत्तर दिया, कि—"अच्छा, हम तीनों तो तो बेवकूफ हैं और आपका एक धन्ना हा समझदार है!"

: ४ :

सज्जन, सम्बन्धी, जाति-न्याति में धन्ना की खूब बडाई होतीथी। धन्ना के तीनों बडे भाइयों से धन्ना की बड़ाइ सही न जाती। वे सदा ही कुढ़ा करते।

सेठ ने सोचा कि लाओ, एक बार फिर इन सब की परीक्षा करूँ। इस प्रकार विचारकर सेठ ने अपने सब लड़कों को बुलाया। लड़कों को थोड़ी-थोडी सोने की मुहरें देकर सेठ ने सब से कहा, कि-इस बार भूल मत करना। सब ध्यान रखकर इन सोने की मुहरों से कमाई करना। संध्या के समय सब, घर को लौट आना और अपनी आमदनी सब को बताना। सब लडके सोने की मुहरें लेकर चले। एक भाई इस तरफ गया और दूसरा भाई उस तरफ गया। इस तरह चारों भाई पृथक्-पृथक् होगये।

धन्ना, बाजार में गया। बाजार में एक सुन्दर पलँग बिक रहा था, लेकिन बेंचनेवाला स्मशान का भंगी था, इसलिये कोई उसे लेता न था। पलँग को देखकर धन्ना ने विचार किया, कि पलँग में निश्चय ही कोई करामात है, इसलिये इस पलँग को लेना अच्छा है। इस प्रकार विचारकर धन्ना ने उस बिकते हुए पलंग को ले लिया।

वे तीनों भाई खूब दौड़े-धूपे, लेकिन कुछ न कमा सके। निराश होकर घर लौटे। घर में धन्ना के लाये हुए पलँग को रखा देखकर तीनों भाइयों ने धनसार सेठ से कहा, कि-"पिताजी! अपने समझदार लड़के को देखो। यह पलँग तो मुर्दे का है इसे क्या घर में रखा जासकता है? हम तो इस पलँग को घर में न रहने देंगे। इस प्रकार कहकर तीनों भाई उठे और उस पलँग को उठाकर पटक दिया। पटक देने से पलँग की पट्टी और पाये अलग-अलग हो गये और उसमें से बड़े कीमती-रत्न निकले।

तीनों भाई चकित रह गये और मुँह में उँगली दबाकर उन रत्नों की ओर देखने लगे। सेठ ने तीनों लड़कों से कहा, कि-"कहो धन्ना की बड़ाई न सह सकने-वाले लड़को! धन्ना की परीक्षा हो गई या और बाकी है?" तीनों भाई पिता से कहने लगे, कि-"हाँ पिताजी! हाँ, हम सब तो न देख सकने वाले हैं और एक आपका धन्ना अच्छा है। आप हमारी कभी भी बड़ाई न करेंगे।

: ८ :

एक बार गोदावरी में एक जहाज आया। जहाज में बहुत कीमती किराना भरा हुआ था। किराने का

स्वामी मर गया था, इसलिये सब किराना राजा के अधिकार में आया। राजा ने सब व्यापारियों को एकत्रित होने तथा जहाज का किराना खरीदने की आज्ञा दी। सब व्यापारी इकट्ठे हुए।

धनसार सेठ के यहाँ भी राजा का बुलौआ आया, कि आपके यहाँ से भी किसी एक व्यक्ति को राजा का बिकता हुआ किराना खरीदने के लिये भेजिये। राजा के बुलौए पर धनसार सेठ ने अपने सबसे बड़े–लड़के से कहा, कि–"धनदत्त! किराना खरीदने के लिये जा"। धनदत्त ने पिता से उत्तर में कहा, कि–"प्रशंसा करने के लिये तो धन्ना याद आता है और काम करने के लिये धनदत्त से क्यों कहें? मैं तो नहीं जाता, आपका समझदार–लड़का जावेगा"।

धनसार सेठ ने, अपने दूसरे तथा तीसरे लड़के से भी राजा का किराना खरीदने के लिये जाने को कहा। लेकिन उनने भी धनदत्त की तरह ही उत्तर दे दिया। तब धनसार सेठ ने धन्ना से कहा, कि–"बेटा! तू जा। धन्ना ने कहा, कि–जो पिता की आज्ञा है, वही करूँगा। यह कहकर धन्ना किराना ख़रीदने गया।

जहाज पर सब व्यापारी एकत्रित हुए। जहाज के किराने में से किसी व्यापारी ने केसर किसी ने क-

स्तूरी और किसी ने बरास लिया। इसी प्रकार कपूर, चन्दन, अगर आदि समस्त अच्छा-अच्छा किराना व्यापारियों ने ले लिया। पीछे से केवल नमक की तरह की मिट्टी का ढेर रह गया।

सब व्यापारियों ने कहा, कि-यह मिट्टी का ढेर धन्ना को दे दो। धन्ना अभी लड़का है, समझदार तो है नहीं, इसलिये यह मिट्टी उसी को दे दो। एक व्यापारी धन्ना से बोला, कि-"धन्ना! तू व्यापार का प्रारम्भ करता है, इसलिये यह नमक ले जा। इस नमक को ले जाने से व्यापार का बहुत अच्छा शकुन होगा। दूसरे व्यापारी ने पहले व्यापारी के इस कथन का समर्थन करते हुए धन्ना से कहा, कि-ये सेठजी ठीक कहते हैं। धन्ना समझ गया, कि-ये सब लोम मुझे उल्लू बनाते हैं, लेकिन देखता हुँ, कि कौन उल्लू बनता है। कोई चिन्ता कि बात नहीं है। इस-प्रकार विचार कर धन्ना ने कहा, कि-" मेरे भाग्य में यह नमक है, तो कोई हर्ज नहीं, मैं इसे ही ले लूँगा"

धन्ना, उस नमक को लेकर घर आया। धन्ना की लाईहुइ नमक की-सी मिट्टी को देखकर तीनों भाई पिता से कहने लगे, कि-"पिताजी! अपने समझदार लड़के की करतूत देखो। हम कहते ही थे, कि-सच्चे व्यापार में पराक्षा होती है। शहर में और सब ने तो अच्छा-

अच्छा किराना लिया, लेकिन भाई ने मिट्टी खरीदी। कहिये धन्ना होशियार है न ?

धनसार सेठ धन्ना से पूछने लगे, – "धन्ना ! तू मिट्टी क्यों लाया ? तुझे कोइ अच्छा किराना नहीं मिला था ? धन्ना ने उत्तर दिया, कि–पिताजी ! यह मिट्टी नहीं है। यह तेजन्तुरी है। कड़ाही को गरम करके उसमें तेजन्तुरी डाल देने से सोना बन जाता है। धन्ना के कथनानुसार प्रयोग करके देखा, तो सचमुच सोना बन गया। सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और धन्ना बहुत धनवान बन गया।

: ६ :

धन्ना के तीनों भाइयों ने, धन्ना से ईर्ष्या करना नहीं छोड़ा। वे नित्य कलह किया करते। धन्ना ने विचार किया, कि–"भाइयों का यह द्वेष अच्छा नहीं है। मेरे कारण दूसरे भाइयों को दुःख होता है। इसलिये मेरा यहाँ से निकल जाना अच्छा है। यहाँ से निकल कर मैं परदेश जाऊँगा और वहाँ उद्योग करके मौज करूंगा."

इस प्रकार निश्चय करके धन्ना एक दिन जल्दी उठा और घर से बाहर निकलकर परदेश के लिये चल दिया।

धन्ना, चलता हुआ और बहुत कुछ देखता हुआ एक नगर के बाहर आया। उस नगर का नाम राजगृह था। नगर के बाहर एक सूखा हुआ बाग था। उस सूखे हुए बाग में ही धन्ना रात के समय रहा। 'भाग्यशाली के पाँव जहाँ पड़ें, वहाँ क्या नहीं होता?' इसके अनुसार जिस सूखे-बाग में धन्ना रात के समय रहा था, सबेरे वह सूखा बाग हरा दीखने लगा।

बाग के माली ने बाग हरा होने की सूचना बाग के मालिक सेठ को दी। यह सूचना पाकर सेठ बहुत हर्षित हुआ। सेठ ने धन्ना को अपने यहां बुलवाया। धन्ना, सेठ के यहाँ गया। सेठ ने धन्ना को भोजन कराया और बहुत सम्मान किया। फिर सेठ ने धन्ना से बातचीत की। बाग के हरा होने से तथा बात-चीत से सेठ समझ गया, कि यह कोई प्रतापी पुरुष है। धन्ना को प्रतापी पुरुष जानकर, सेठ ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया।

धन्ना, बड़ा भाग्यवान था। जहाँ उसके पाँव पड़ते थे, वहीं धन का ढेर लग जाता था। धन्ना को यहाँ भी खूब धन मिला। यहाँ भी वह बड़ा सेठ होगया।

राजगृही में एक बार राजा का हाथी मस्त हो-गया। उस मस्त-हाथी को कोई भी वश में न कर सका।

राजा ने ढिंढोरा पिटवाया, कि जो कोई इस हाथी को वश में करेगा, उसके साथ मैं अपनी राजकुमारी का विवाह कर दूँगा। धन्ना, बहुत साहसी था। ढिंढोरे को सुन कर उसने हाथी को वश कर लिया। राजा ने अपनी कुमारी का विवाह धन्ना के साथ कर दिया। सारे नगर में धन्ना का बहुत मान बढ़ गया।

उसी राजगृह नगर में एक करोड़पति सेठ रहता था। उस सेठ का नाम गोभद्र था। गोभद्र के यहाँ एक काना-आदमी आया। वह काना-आदमी गोभद्र सेठ से कहने लगा कि-"सेठ! आप अपने एक लाख रुपये लीजिये और मेरी जो आँख आपके यहाँ गिरवी रखी है, वह लाइये। सेठ ने उस काने को उत्तर दिया, कि-"तुम्हारी बात बिलकुल झूठ है। ऐसा होना कदापि सम्भव नहीं। सेठ ने यह उत्तर दिया, लेकिन वह काना आदमी क्यों मानने लगा? उसे तो सेठ के गले पड़ना था। आखिर को सेठ से काने ने लड़ाई की और वह राजा के पास न्याय माँगने के लिये गया। राजा समझ तो गया, कि यह काना-आदमी ठग है, लेकिन वह इस विचार में पड़ गया, कि इस काने आदमी को झूठा कैसे ठहराया जावे?

यह बात धन्ना को मालूम हुई। धन्ना, राजा के दरबार में गया और राजा से कहा, कि-"यदि आज्ञा हो,

तो इस मामले का न्याय मैं करूँ ''। राजा ने उत्तर दिया, कि-अच्छी बात है, तुम्हीं इसका न्याय करो।

धन्ना ने सेठ और उस ठग, दोनों को बुलवाया और न्याय करने के लिये ठग से कहा, कि-सेठ के यहाँ बहुत-सी आँखें गिरवी हैं। उन आँखों में यह पता कैसे लग सकता है, कि कौनसी आँख किसकी है? इस लिये तुम्हारी जो आँख सेठ के यहाँ गिरवी है, उसका नमूना लाओ और अपनी आँख ले जाओ। धन्ना के इस कहने से ठग पकड़ा गया। वह, आंख का नमूना कहाँ से दे सकता था? यदि नमूने के लिये अपनी आँख देता है, तो अंधा होता है। इस प्रकार उस काने की ठगी सिद्ध हुई और राजा ने उसे दण्ड दिया।

धन्ना के न्याय से गौभद्र सेठ बहुत हर्षित हुए। गौभद्र-सेठ ने अपनी कन्या का विवाह धन्ना के साथ कर दिया। उस कन्या का नाम सुभद्रा था।

: ७ :

एक दिन धन्ना खिडकी में बैठा हुआ नगर को देख रहा था। उसने थोड़े से भिखारियों को देखा, जो उसके कुटुम्बी ऐसे जान पड़ते थे! धन्ना ने पता लगाया, तो मालूम हुआ, कि ये भिखारी मेरे ही

कुटुम्बी हैं। धन्ना विचारने लगा, कि मेरे कुटुम्बी इस दशा में कैसे हैं ?

अपने कुटुम्बियों से इस स्थिति में पहुंचने का कारण पूछा। धन्ना के पिता ने उत्तर में कहा, कि—"बेटा! भाग्य की बलिहारी है। जब तक तू था, तब तक सभी तरह से आनन्द था, लेकिन घर से तेरे जाते ही धन भी चला गया। राजा को तेरे चले जाने की खबर मिलने पर उसने हमको बहुत हैरान किया। हमारा धन छीनकर हमें भिखारी बना दिया। इस भिखारीपने से हम वहाँ कैसे रह सकते थे? इसलिये हम परदेश को चल दिये"।

धन्ना ने अपने कुटुम्बियों को अपने साथ रखा। वह सब को अच्छा-अच्छा भोजन कराता, सब को अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाता और सब की अभिलाषा पूरी करता।

राजगृह के सब लोगों को धन्ना बहुत प्रिय था। सब लोग धन्ना की ही पूछ करते थे, धन्ना के भाइयों को तो कोई पूछता ही न था। सब धन्ना की ही बड़ाई करते थे। धन्ना के भाइयों को यह बात सहन न हुई। वे पिता के पास आकर बोले,—"पिताजी! आप हमारा भाग अलग करके हमें दे दीजिये, धन्ना के साथ रहना हमें स्वीकार नह है"।

पिता ने कहा–"बच्चो ! तुम किस वस्तु में अपना भाग चाहते हो? यह सब सम्पत्ति तो धन्ना की है। तुम्हारे शरीर पर तो कपड़ा भी नहीं था, फिर भाग कैसे चाहते हो? धन्ना की सम्पत्ति, तुम लोगों में नहीं बँट सकती।" धन्ना के तीनों भाई कहने लगे, कि–"हम सब कुछ जानते हैं। धन्ना घर से रत्न चुराकर यहाँ भाग आया है। हमें हिस्सा दीजिये, नहीं तो फजीहत होगी।"

भाइयों की बातों को सुनकर धन्ना विचारने लगा, कि–यह तो फिर से कलह हुआ। मेरे को कलह अच्छा नहीं लगता, इसलिये परदेश जाऊँगा और वहाँ कमाऊँगा तथा आनन्द करूँगा।

इस प्रकार विचार करके धन्ना प्रातःकाल जल्दी उठकर चल दिया।

धन्ना, कौशाम्बी नगर में आया। कौशाम्बी के राजा के दरबार में मणि की परीक्षा होती थी। उस मणि की परीक्षा कोई न कर सका। धन्ना ने उस मणि की परीक्षा की। मणि की परीक्षा कर देने के कारण, राजा ने अपनी लड़की धन्ना के साथ विवाह दी।

यहाँ धन्ना ने धनपुर नाम का ग्राम बसाया। धनपुर ग्राम में और सब बातों का तो सुख था, लेकिन पानी का

बहुत बड़ा दुःख था। इस दुःख को मिटाने के लिये धन्ना ने तालाब खुदवाना शुरू किया।

धन्ना, हमेशा उस तालाब पर यह देखा करता, कि कितना काम हुआ है। तालाब पर एक दिन धन्ना ने अपने परिवार को देखा। परिवार के लोग तालाब पर मजदूरी करके अपना गुजर चलाते थे। धन्ना ने पहले तो परिवार के लोगों से अपनी जान-पहचान नहीं की, लेकिन फिर जान-पहचान करके उनसे सब बात पूछी। पिता ने उत्तर में कहा—कि–"बेटा! तेरे जाने की खबर राजा को हुई, इसलिये राजा ने हमारा तिरस्कार किया। इसी कारण हमारी यह दशा हुई"। पिता का उत्तर सुन-कर धन्ना को बहुत दुःख हुआ। उसने परिवार को अपने साथ रखकर फिर सुखी किया।

धन्ना ने धनवान कुटुम्बों की और भी चार स्त्रियों के साथ विवाह किया। उसके सब मिलाकर आठ स्त्रियें होगईं। अब वह राजगृह नगर में रहने लगा। उसके माता–पिता वहाँ अनशन करके मृत्यु को प्राप्त हुए।

: ९ :

एक बार धन्ना स्नान करने के लिये बैठा था। सुभद्रा स्नान करा रही थी। सुभद्रा की आँखों में से टप–टप आँसू गिरते थे।

धन्ना ने पीछे की ओर देखा, तो सुभद्रा रोती हुई दिखाई दी। धन्ना ने सुभद्रा से रोने का कारण पूछा। उत्तर में सुभद्रा कहने लगी, कि-" मेरे भाई शालिभद्र को वैराग्य हुआ है। वह नित्य एक स्त्री को त्यागता है और इस प्रकार बत्तीस स्त्रियें छोड़नी हैं।" धन्ना बोला, कि-" तुम्हारा भाई बहुत कायर है। ऐसा करना कहीं वैराग्य कहलाता है? वह सब स्त्रियों को एक साथ क्यों नहीं छोड़ता?"

सुभद्रा बोली—"स्वामीनाथ! बोलना तो सहज है, लेकिन करना बहुत कठिन है"। धन्ना ने कहा, कि-"ऐसा है?" सुभद्राने उत्तर दिया-" हाँ "। धन्ना ने कहा, कि-" तो मैं सभी स्त्रियों को छोड़ता हूँ"।

सुभद्रा समझ गई, कि यह हँसी करते खाँसी हुई। सुभद्रा और धन्ना की अन्य स्त्रियों ने उसे बहुत समझाया, लेकिन धन्ना अपने निश्चय पर से न टला। तब धन्ना की स्त्रियों ने कहा, कि-"यदि आप नहीं मानते हैं, तो हम भी दीक्षा लेंगी "। धन्ना ने उत्तर दिया, कि-"यह तो बड़े आनन्द की बात है"। धन्ना की स्त्रियें भी दीक्षा लेने के लिये तयार हो गईं।

धन्ना, शालिभद्र के घर आया और आवाज दी —"अरे कायर! वैराग्य ऐसा होता है। मैं आठ स्त्रियों

सहित चलता हूँ, तेरे को भी चलना हो, तो बाहर निकल।" शालिभद्र के मन में व्रत लेने का जोश तो था ही, ऐसे ही समय में धन्ना की यह बात सुनी। इस कारण उसका जोश बढ़ गया।

इतने में ही समाचार मिला, कि भगवान-महावीर समीप के पहाड़ पर पधारे हैं। यह समाचार सुनकर धन्ना और शालिभद्र दोनों को बहुत आनन्द हुआ। धन्ना ने अपनी स्त्रियों सहित दीक्षा ली। शालिभद्र ने भी आकर दीक्षा ले ली।

अब धन्ना और शालिभद्र बड़े विकट-तप करने लगे। किसी समय एक मास का उपवास करते, तो किसी समय दो मास का उपवास करते। किसी समय तीन-मास का और किसी समय चार-मास का उपवास करते। इस प्रकार वे धन्ना-शालिभद्र, जो पहले बड़े विलासी थे, अब महान् तपस्वी हुए।

दोनों महान्-तपस्वियों ने, बहुत समय तक तप किया और अपने मन तथा वचन को बहुत पवित्र बनाया। अन्त में महा--तपस्वी की ही भाँति, उन्होंने अपना जीवन समाप्त किया।

धन्य है वीर धन्ना को!
धन्य है वीर शालिभद्र को!!

जैन-ज्योति

सम्पादकः

धीरजलाल टोकरशी शाह

गुजराती-हिन्दी भाषा में प्रकाशित होनेवाला यह सचित्र और कलामय मासिक जैन समाज में अनोखाही है। जैन समाज, जैन संस्कृति, जैन साहित्य, जैन शिल्प और विज्ञान के बहु मूल्य लेखों इस पत्र में प्रकाशित होते हैं। वार्षिक मूल्य सिर्फ रु. २-८-० आज ही ग्राहक बनिये।

ज्योति-कार्यालय,

हवेली की पोल, रायपुर-अहमदावाद.

तिरंगे-चित्र

प्रभु महावीर की निर्वाणभूमि जलमंदिर-पावापुरी का मनमोहक तिरंगा चित्र।

चित्रकार धीरजलाल शाह मूल्य ०-२-०

प्रभु-पार्श्वनाथ को मेघमाली का उपसर्ग: अत्यंत भावपूर्ण जयंतीलाल झवेरी का चित्र मूल्य ०-४-०

ज्योति-कार्यालय,
हवेली की पोळ, रायपुर-अहमदाबाद.

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथमश्रेणी : : पुष्प ६

महात्मा दृढ़प्रहारी

लेखकः
श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

अनुवादकः
श्री भजामिशङ्कर दीक्षित

सर्वाधिकार—सुरक्षित

संवत १९८८ } प्रथमावृत्ति } मूल्य डेढ़-आना

प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अ म दा वा द.

मुद्रक :
चीमनलाल ईश्वरलाल महेता.
" व सं त मु द्र णा ल य "
घीकांटारोड :: अ म दा वा द.

महात्मा-दृढ़प्रहारी

: १ :

एक ब्राह्मण के दुर्धर नामक लड़का था। वह, बड़ा उपद्रवी और बुरे-स्वभाववाला था। माँ-बाप का कहना न मानता, झूठ बोलता, साथियों को गाली देता, बात-बात में लड़ाई करता और किसी की वस्तु मिलते ही उसे उठा लेता।

ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया त्यों-त्यों उसकी बुरी-आदतें भी बढ़ती गईं। होते-होते उसे जुआ खेलने की भी आदत पड़ गई। वह जुआ खेलने में पैसे खूब हारता था। आखिर प्रतिदिन जुआ खेलने को पैसे कहाँ से आते? अतः उसने चोरी करना प्रारम्भ कर दिया। अपनी चालाकी की अधिकता के कारण वह चोरी करने में निपुण होगया और बड़ी-बड़ी चोरियें करने पर भी न पकड़ा जासका।

गाँव में उसके अत्याचार की कोई सीमा न रही। गाँव के चतुर मनुष्यों ने उसे शिक्षा दी—"भाई! बुरी आदतें छोड़ दो, इनसे तुम्हें क्या लाभ होता है? यदि तुम अपनी बुद्धि का अच्छे-कार्य में उपयोग करो, तो

आगे चलकर उन्नति कर सकोगे। तुम्हारा कल्याण होगा और लोग तुम्हारी प्रशंसा भी करेंगे।" किन्तु वहाँ इस उपदेश को सुनता कौन था? जो बात लोग कहते, उसे एक कान से सुनकर दूसरे कान से बाहर निकाल देता था।

चोरी करते-करते जितने भी साथी मिले, वे सब के सब छँटे हुए बदमाश। अतः वह खूब बिगड़ा। शराब पीता, मांस खाता और रंडीबाजी भी करता।

लोगों को उससे बड़ा ही कष्ट पहुँचने लगा। राजा को जब यह हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने हुक्म दिया कि—"उस दुष्ट को उलटे-गधे पर बैठाओ, सिर मुँडवाकर उस पर चूना पुतवा दो। मुँह पर काली-स्याही लगाओ, गले में फटे-जूतों का हार पहनाओ और फूटी-हण्डियें बजाते हुए सारे शहर में घुमाकर बाहर निकाल दो।"

राजा की आज्ञा का पालन किया गया, दुर्धर का जलूस निकला। साथ ही साथ यह घोषणा की गई, कि—'जो कोई दुर्धर के समान बुरे-कार्य करेगा, उसे ऐसा ही फल मिलेगा"। लोगों ने उस पर धिक्कार की वर्षा की। वह बुरी हालत में गाँव से बाहर निकाल

दिया गया। सच है, बुरे-आदमियों का यही हाल होता है।

अपने साथ किये गये इस व्यवहार से दुर्धर मन-ही-मन में बहुत कुढ़ा। उसने दिल में यह निश्चय किया कि मैं अपने अपमान का बदला इस गाँव के लोगों से अवश्य लूँगा। इसी तरह विचार करता-करता, वह आगे को चल दिया।

ः २ ः

चलते-चलते वह एक पहाड़ी-मुल्क में पहुँचा। वहाँ पर्वत की एक गुफा अत्यन्त गहरी और बड़ी ही डरावनी थी। किसी कम-हिम्मत मनुष्य की तो उस तरफ पैर बढ़ाने की भी ताक़त न थी। किन्तु दुर्धर का दिल तो बड़ा मज़बूत था, अतः वह आगे की तरफ बढ़ता ही गया।

अब झाड़ी बढ़ने लगी। उस झाडी में अनेक प्रकार के झाड़ और अनेक प्रकार की बेलें थीं। वे बेलें झाड़ों से लिपट-लिपटकर एक प्रकार के पींजरे से बनाती थीं। नीचे घास उग रहा था, जो मनुष्य के सिर के बराबर ऊँचा था। रास्ता किसी जगह ऊँचा और किसी जगह नीचा था। दुर्धर ऐसे रास्ते को तय करता हुआ आगे की तरफ चला।

आगे बढ़ने पर रास्ता इससे भी भयङ्कर आया। बड़ी-बड़ी चट्टानें और जोर से बहनेवाले झरने आये। दुर्धर ने इन्हें बड़ी मुश्किल से पार किया। और आगे बढ़ने पर उसने देखा कि वहाँ झाड़ी हद से ज्यादा है। यद्यपि सूर्यनारायण संसार में अपना प्रकाश फैलाये हुए थे, तथापि उस झाड़ी में अँधेरा ही अँधेरा था। चलते-चलते उसे जंगल में ही रात होगई।

रात्रि होजाने के कारण दुर्धर एक झाड़ पर चढ़ गया और वहीं रात बिताने का विचार किया। थोड़ी ही देर में, उसे जंगली-जानवरों का शब्द सुनाई दिया। कभी सिंह की गर्जना, तो कभी बाघ की डकार। कभी सियार का चिल्लाना और कभी चीते की आवाज़। इसी तरह सारी रात जंगली-जानवर आये और गये। दुर्धर ने उन्हें देखते ही देखते सारी रात व्यतीत की।

सबेरा हुआ। जंगली-जानवर अपने—अपने स्थानों में जा छिपे। पक्षीगण वृक्षों पर गीत गाने लगे। अब दुर्धर नीचे उतरा और फिर आगे चलने लगा।

थोड़ी ही देर में, भीलों के झोंपडे दिखाई दिये। उन्हें देखकर दुर्धर को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह यहीं आने के लिये तो निकला ही था। वह ज्यों ही कुछ और आगे बढ़ा त्यों ही उसे कुछ भील मिले। वे भील

रंग में काले-काले बिलकुल भूत की तरह थे। उनके शरीर पर वस्त्र के नाम से केवल एक लँगोटी और हाथ में तीर-कमान थी। उन्होंने दुर्धर को पकड़ लिया और अपने राजा के पास ले चले।

कुछ दूर चलने पर एक अँधेरी-गुफा आई। वहां भीलों का एक झुण्ड बैठा था। उन्होंने दुर्धर को देखा, अतः बड़े प्रसन्न हुए। वे आपस में विचार करने लगे- "भाई! यह नये खूनवाला जवान है, माता के सामने बलिदान करने के काम अच्छा आवेगा"।

वे भील दुर्धर को लेकर एक गुफा में चले। अँधेरे में चलते-चलते अन्त में एक रोशनीदार स्थान पर पहुँचे। वहां एक हट्टा-कट्टा और डरावना-भील बैठा था, जो मानों साक्षात् यम का ही अवतार हो। उसके पास ही एक स्त्री बैठी थी। वह भी खूब हृष्ट-पुष्ट और लम्बी थी। उस स्त्री ने भी अपने शरीर पर केवल एक ही वस्त्र और गले तथा हाथ में पत्थर एवं चाँदी के गहने पहन रक्खे थे। ये दोनों स्त्री-पुरुष ही भीलों के राजा-रानी थे।

राजा ने दुर्धर को देखा और उसके लक्षणों से ही वह जान गया कि यह चोरी करने में खूब होशियार है, अतः हमारे बड़े काम का मनुष्य है। उसने दुर्धर से

पूछा—" क्यों तुम्हारा क्या विचार है ? "। दुर्धर ने कहा—" आपके साथ रहना और आपका रोजगार करना ही मुझे पसन्द है "। भील-राजा ने बड़ी खुशी से उसे अपने पास रख लिया।

वह, धीरे-धीरे सब को प्रिय होगया, अतः भील-राज ने उसे अपना पुत्र बनाया और अपनी सारी-सम्पत्ति उसे ही सौंप दी।

दुर्धर बड़ी-बड़ी चोरियें करता। उन चोरियों में जो कोई उसका सामना करता वह मारा जाता। उसका प्रहार कभी भी खाली न जाता था, इस लिये उसका नाम पड़ा 'दृढ़प्रहारी'।

: ३ :

एक बार डाकुओं का एक बड़ा-भारी गिरोह लेकर वह कुशस्थल नगर लूटने गया। उस नगर में ब्राह्मण का एक कुटुम्ब रहता था। वह ब्राह्मण अत्यन्त गरीब था। उसके घर में एक दिन भोजन करने की भी सामग्री न थी। सम्पत्ति के नाम पर केवल एक गाय ही थी।

इस बुरी-हालत में ही एक त्यौहार आ पड़ा। उस दिन ब्राह्मण से बच्चों ने कहा—" पिताजी! हम

खीर खावेंगे ”। ब्राह्मण ने उन्हें खूब समझाया किन्तु बालक क्या समझ सकते थे? अन्त में वह ब्राह्मण कुछ घरों में घूमा और दूध चाँवल तथा शकर एकत्रित की। इस सामग्री से खीर बनाने की आज्ञा दे, ब्राह्मण ने ब्राह्मणी से कहा—“खीर बनकर जब तयार होजाय, तब उसे उतारकर रख देना, मैं नदी से स्नान करके अभी आता हूँ”। यों कहकर ब्राह्मण नहाने चला गया।

इतने ही में दृढ़प्रहारी के गिरोह ने गाँव में प्रवेश किया। लोग त्रास के मारे भयभीत हो-होकर भागे। सब डाकू अलग-अलग जगहों में लूट-पाट करने लगे। इनमें से एक डाकू उस ब्राह्मण के यहाँ भी जा पहुँचा। किन्तु वहाँ लूटने के लिये क्या रखा था? उस डाकू ने वह तयार की हुई खीर देखी और उसे ही लेने को झपटा।

चोर ने खीर का बर्तन उठा लिया, यह देखकर बच्चे रोने-चिल्लाने लगे। इतने में ब्राह्मण आगया। वह देखता है कि चोर ने खीर उठा ली और बच्चे खीर छिन जाने के कारण रोते-चिल्लाते हैं। यह दृश्य देखकर उसे बड़ा क्रोध आया। वह एक मोटा-सा डण्डा लेकर दौड़ा और उस डाकू से मार-पीट करने लगा।

ये दोनों आपस में जिस समय मार-पीट कर रहे थे, उसी समय वहाँ दृढ़प्रहारी आ पहुँचा। उसने

अपनी तलवार से ब्राह्मण का सिर काट डाला। लड़के चिल्लाने लगे और स्त्री थर-थर काँपने लगी। वहीं ब्राह्मण की एक गाय बँधो थी। उससे यह दृश्य न देखा गया। वह क्रोधित हुई और पूँछ ऊँची करके सीधी दृढ़प्रहारी पर दौड़ी।

किन्तु दृढ़प्रहारी तो वज्र-हृदय था, उसने अपने जीवन में भय का कभी नाम भी न जाना था। फिर भला वह इस गाय से क्या डर सकता? गाय के नज़दीक आते ही उसने तलवार का प्रहार किया, जिससे गाय का सिर भी धड़ से अलग होगया।

स्त्री से यह सब न देखा गया। वह गालियों की वर्षा करने लगी और गिरती-पड़ती दृढ़प्रहारी के सामने दौड़ी। उस बेचारी को क्या पता था कि मेरी भी मौत हो जावेगी? दृढ़प्रहारी को स्त्री पर बड़ा क्रोध आया, अतः उसने अपनी तलवार से उस पर भी आघात किया। तलवार ठीक स्त्री के पेट पर पड़ी। गर्भवती स्त्री उस घाव के लगने से जमीन पर ढेर होगई। स्त्री के साथ ही पेट का बच्चा भी मर गया!

: ४ :

ज्यों ही ये चार-हत्याएँ हुईं, त्यों ही दृढ़प्रहारी के चित्त में आत्मग्लानि पैदा हुई। उसने सोचा-"अरे, मेरे

हाथ से चार-हत्याएँ और वे भी बड़ी से बड़ी ? ब्रह्म–हत्या, गौ–हत्या, स्त्री–हत्या और बाल–हत्या ? अरे–रे ! मैंने यह क्या कर डाला ? मुझे धिक्कार है ! ”

लूट–पाट के पश्चात् दृढ़प्रहारी अपने दल के साथ नगर से बाहर निकला। किन्तु उन हत्याओं का दृश्य उसकी आँखों के सामने अब भी नाच रहा था। उसका हृदय भीतर ही भीतर जला जा रहा था। इस मानसिक–वेदना के कारण यम के समान कठोर और क्रूर दृढ़-प्रहारी ठण्डा पड़ गया।

चलते–चलते, वह एक वन में पहुँचा। वहां एक मुनिराज उसे दिखाई दिये। वे समता के भण्डार और प्रेम की मूर्ति थे। उन्हें देखते ही दृढ़प्रहारी का हृदय भर आया। वह मुनिराज के चरणों में गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा।

मुनि बोले—हे महानुभाव! शान्त हो इतना शोक क्यों करता है ?

दृढ़प्रहारी ने कहा—प्रभो ! मैं महा–पापी हूँ, मेरे लिये संसार में कहीं भी स्थान नहीं है !

मुनि ने उत्तर दिया—भाई ! निराश न हो। इस संसार में पापियों के रहने के लिये भी स्थान है। पि-

छली की हुई भूलें को याद करके रो मत। शान्तिपूर्वक अपने जीवन का विचार कर और जो बात तुझे कल्याण-कारी प्रतीत हो, उस पर अमल करना शुरू कर।

दृढ़प्रहारी बोला--प्रभो ! मैं महा-पापी हूँ। आज ही मेरे हाथ से चार-हत्याएँ हुई हैं और वे भी एक साधारण बात पर। अब मेरा क्या होगा ?

मुनि ने कहा--भाई ! घबरा मत, साधु-जीवन की दीक्षा ले और संयम तथा तप की आराधना कर। निश्चय ही तेरा कल्याण होगा।

दृढ़प्रहारी ने उसी स्थान पर दीक्षा ले ली और उसी क्षण निश्चय किया कि-" जब तक ये चार हत्याएँ मुझे याद आती रहेंगी-जब तक इनकी स्मृति मुझे रहेगी, तब तक मैं अन्न या पानी कुछ भी ग्रहण न करूँगा।

दृढ़प्रहारी शैतान से बदलकर अब साधु होगये। वे नगर के दरवाजे पर ध्यान धरकर खड़े होगये। लोग, उधर से आते-जाते हुए कहते—" यह बड़ा दुष्ट और बुरे-कामों का करनेवाला है। इस हत्यारे को खूब मारो। " यों कहकर लोग ईंट-पत्थर फेंकते, कोई लकड़ी से मारता और कोई दूसरी तरह कष्ट देता। किन्तु दृढ़प्रहारी शान्त-चित्त से यह सब सहन कर लेते।

यों करते–करते गले तक ईंट–पत्थर का ढेर-सा हो-गया, जिससे उनका श्वास भी रुकने लगा। अतः महात्मा दृढ़प्रहारी ने अपना ध्यान पूरा किया और दूसरे दरवाजे पर जाकर ध्यान धरा। वहाँ भी लोग नाना प्रकार के कष्ट देते थे। इस तरह उन्होंने ६ महीने तक दुःख सहे, किन्तु अपने निश्चय से ज़रा भी न डिगे।

उनके हृदय में, क्षमा बढ़ती ही गई। प्रेम की भी वृद्धि ही होती गई और अन्त में वे बढ़ते–बढ़ते पूर्ण-पवित्र होगये।

: ९ :

लोगों की समझ में अब यह आगया कि दृढ़-प्रहारी शैतान नहीं रहे, वे पूरे सन्त हो गये हैं। अतः उनके चरणों में पड़ने लगे और उनके पिछले सारे दोष भूल गये।

अब महात्मा-दृढ़प्रहारी एक स्थान से दूसरे स्थान में भ्रमण करने लगे। उन्होंने बहुत–से लोगों को उपदेश दिया और बहुतों के जीवन सुधार दिये। अन्त में वे धर्म–ध्यानपूर्वक पवित्र–जीवन व्यतीत करते हुए, निर्वाण-पद को प्राप्त हुए।

धन्य है सहनशील दृढ़प्रहारी को!

धन्य है महात्मा दृढ़प्रहारी को!

नोंध

नोंध

नोंध

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथमश्रेणी : : पुष्प ७

अभयकुमार

लेखकः
श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

अनुवादकः
श्री भजामिशङ्कर दीक्षित

सर्वाधिकार—सुरक्षित

संवत १९८८ वि० } प्रथमावृत्ति { मूल्य डेढ़–आना

प्रकाशक :
ज्योति-कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अ ह म दा बा द.

मुद्रक :
चीमनलाल ईश्वरलाल महेता.
" व सं त मु द्र णा ल य "
घीकांटारोड :: अ ह म दा बा द.

अभयकुमार

: १ :

वेणातट नामक एक ग्राम था। इस गाँव में, अभय नामक एक लड़का रहता था। यह बहुत अधिक चालाक, बड़ा होशियार और पढ़ने-लिखने तथा खेलने-कूदने में बड़ा तेज़ था।

अभय एक दिन खेलने गया। वहाँ खेल ही खेल में लड़ाई होगई। इतने में एक लड़का अभय से बोला—" अरे बिना बाप के उधर बैठ, तू इतनी तेजी किसके बल पर दिखला रहा है ?" अभय बोला—"जरा विचारकर बोल, मेरे पिता तो अभी मौजूद ही हैं, क्या तू भद्रसेठ को नहीं पहचानता ?"। वह लड़का कहने लगा—" अरे, वे तो तेरी माँ के पिता हैं, तेरे पिता कहाँ से होगये ?"

यह बात सुनकर अभय अपने घर आया और अपनी माता से पूछने लगा—" माताजी ! मेरे पिताजी कहाँ हैं ?"। माता ने उत्तर दिया—" बेटा ! वे दूकान पर होंगे "। अभय ने फिर कहा—" वे तो आपके पिता हैं, मैं तो अपने पिता को पूछ रहा हूँ ?"। अभय की

यह बात सुनकर नन्दा अत्यन्त दुःखी हो उठी और नेत्रों में आँसू भरकर यों कहने लगी:—

"सुन बेटा! एक बार यहाँ एक मुसाफिर आये। वे, रूप, गुण तथा तेज की खान थे। सब तरह से वे बड़े प्रतापी और योग्य मालूम हुए, अतः पिताजी ने उन्हीं के साथ मेरा विवाह कर दिया। अभी विवाह को कुछ ही दिन बीते थे, कि एक दिन परदेश से कुछ ऊँट-सवार आये। उनमें से कुछ सवार नीचे उतरे और तुम्हारे पिताजी को एकान्त में बुलाकर उनसे कुछ बातचीत की। उन सवारों की बात सुनकर, तुम्हारे पिता तत्क्षण जाने के लिये तयार हुए। उन्होंने मुझ से कहा—" मेरे पिताजी मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं, अतः मैं उनसे मिलने जाता हूँ। तुम अपने शरीर की रक्षा करना और अच्छी तरह रहना।" यह कहकर उन्होंने मुझे एक चिट्ठी दी और आप उन आये हुए सवारों के साथ चले गये। वे जब से गये, तब से फिर नहीं लौटे। वर्षों व्यतीत होगये, प्रतिदिन सूर्य उदय होकर अस्त होजाता है, किन्तु प्यारे बेटा अभय! इतने अधिक इन्तिजार के बाद भी आजतक उनका कुछ पता नहीं है।

अभय ने माता से कहा—" माँ, मुझे वह चिट्ठी

दिखलाओ, मैं देखूँ तो सही, कि उस चिठ्ठी में आखिर लिखा क्या है ?"

माता ने वह चिठ्ठी दे दी, उसे पढ़कर अभय फिर बोला—" माँ, आप चिन्ता न कीजिये, मेरे पिता तो राजगृही के राजा हैं !"

नन्दा ने बड़े आश्चर्य से पूछा—" क्या सचमुच तेरे पिता राजगृही के राजा हैं ?"

अभय—" हाँ, इस चिठ्ठी का ऐसा ही अर्थ है"।

नन्दा, यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। किन्तु इसके बाद ही, यह सोचकर वह बहुत दुःखी होगई, कि मैं ऐसे अच्छे-पति के वियोग में यहाँ पड़ी-पड़ी दिन बिताती हूँ। अभय ने, अपने जीवन में नन्दा को पहली ही बार इतनी दुःखी देखा था, इसलिये उसे भी बड़ा दुःख हो आया। वह कहने लगा--" माँ ! आप ज़रा भी चिन्ता न कीजिये; चलो, हमलोग राजगृही को चलें, वहाँ अवश्य ही मेरे पिताजी से मुलाक़ात होगी "।

: २ :

राजगृही, उस काल में मगधदेश की राजधानी थी। उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जासकता। उस नगर के महलों, मन्दिरों, बाजारों तथा चौकों की सुन्दरता अपार थी।

नन्दा और अभय, दोनों राजगृह आये और वहाँ आकर एक मनुष्य के यहाँ उतरे। इसके बाद, अभय शहर की शोभा देखने निकला। वहाँ उसने एक स्थान पर बहुत से मनुष्यों की भीड़ जमा देखी। यह देखकर अभय ने विचारा, कि आखिर ये लोग यहाँ क्यों इकट्ठे हुए हैं? अवश्य ही कोई देखने क़ाबिल बात यहाँ होगी। अच्छा, मैं स्वयं ही पूछकर देखूँ, कि आखिर मामला क्या है?

उसने भीड़ के पास जाकर एक बूढ़ेसे पूछा—"बाबा यहाँ क्या बताशे बाँटे जारहे हैं?"

बूढ़े ने कहा—"भाई! तुझे बताशे बहुत अच्छे लगते हैं, किन्तु यहाँ तो बताशों से भी कहीं अच्छी चीज़ बाँटी जारही है"।

अभय—"वह क्या?"

बूढ़ा—"वह है, महाराजा श्रेणिक का प्रधानमंत्री-पद। उनके यहाँ प्रधाममंत्री का पद आजकल खाली है। यों तो उनके यहाँ चार सौ निन्नानवे कार्यकर्ता हैं, किन्तु उनमें से एक भी ऐसा नहीं है, जो प्रधानमंत्री के पद का कार्य कर सके। उस स्थान पर तो वही मनुष्य काम कर सकता है, जो बुद्धि का भण्डार हो। यही कारण है, कि राजा ने ऐसे मनुष्य की खोज करने के लिये,

खाली-कुएँ में एक अँगूठी डलवाकर यह घोषित किया है, कि जो मनुष्य कुएँ के किनारे पर खड़ा होकर इस अँगूठी को निकाल देगा, उसे ही मैं अपने प्रधानमंत्री का पद दूँगा।"

यह सुनकर, अभय उस भीड़ में घुसा और वहाँ इकट्ठे हुए मनुष्यों को सम्बोधन कर बोला—"अरे भाइयो ! आपलोग इतनी अधिक चिन्ता में क्यों पड़े हैं ? कुएँ में से अँगूठी निकालना कौनसी बड़ी बात है ?"

उन मनुष्यों ने कहा—"भाई ! यह तुम्हारा खेल नहीं है। इसमें बड़े-बड़े बुद्धिमानों की भी बुद्धि चकरा रही है, तो तुम क्या कर सकते हो ?"

अभय बोला—"जी हाँ, मेरे लिये तो यह काम खेल ही है, किन्तु क्या मेरे समान परदेशी-मनुष्य भी इस परीक्षा में भाग ले सकता है ?"

मनुष्यों ने उत्तर दिया—"इसमें क्या है ? कहावत मशहूर है, कि 'जो गाय चरावे, वही ग्वाल'। यदि तुम सचमुच इसे निकाल सको, तो अवश्य ही तुम्हें प्रधान-पद मिलेगा।"

अभय, कुएँ पर आया। उसे देखकर लोग आपस में कानाफूसी करने लगे, कि—"यह लड़का क्या कर सकता है ?" कुएँ पर पहुँचकर अभय ने ताजा-गोबर मँग-

वाया और उसे उस अँगूठी के ऊपर डाल दिया। इसके बाद थोड़ी–सी सूखी–घास मँगवाई और उसे सुलगाकर ठीक उस गोबर पर डाल दी। आग की गर्मी के कारण वह गोबर सूख गया और वह अँगूठी भी उसी में चिपक गई। फिर उसने पास ही के एक पानी से भरे हुए कुएँ पर से उस कुएँ तक नाली खुद्वाई और उसी के द्वारा उस खाली कुएँ में पानी भरना शुरू किया। भरते–भरते, जब पानी ऊपर तक आया, तब वह कण्डा भी ऊपर आगया। अभय ने उस कण्डे को उठा लिया और उसमें से वह अँगूठी निकाल ली। वहाँ जितने लोग खड़े थे, वे सब अभय की यह चतुराई देखकर बोल उठे–"इस लड़के की बुद्धि को धन्य है"।

राजा के जो सिपाही वहाँ मौजूद थे, उन्होंने जाकर राजा से यह बात कही। राजा ने तत्क्षण अभय को अपने पास बुलाया और उससे पूछा—"भाई! तुम्हारा क्या नाम है और तुम कहाँ के रहने वाले हो?"।

अभय—"मैं वेणातट का रहनेवाला हूँ और मेरा नाम है–अभय"।

श्रेणिक—"तुम अपने यहाँ के भद्रसेठ को जानते हो?"

अभय—"हाँ महाराज! बहुत अच्छी तरह जानता हूँ"।

श्रेणिक—" उनकी नन्दा नामक पुत्री गर्भवती थी, उसके क्या हुआ था ? "

अभय—" महाराज, उनके पुत्र हुआ था "।

श्रेणिक—" उस लड़के का नाम क्या रखा गया ?"

अभय—" महाराज ! सुनिये। आप जिस समय भयङ्कर-युद्ध कर रहे हों, उस समय आपका शत्रु आपसे भयभीत होजाय। फिर, वह अपने मुँह में एक तिनका ले और आपके सामने आवे। बतलाइये, कि उस समय वह आपसे क्या माँगेगा ?

श्रेणिक—" अभय "।

अभय—" महाराज ! तो उसका भी यही नाम है। उसकी और मेरी बड़ी गाढ़ी-मित्रता है। किन्हीं मित्रों के मन तो एक होता है, किन्तु शरीर अलग-अलग होते हैं। परन्तु मेरा और उसका मन भी एक है और शरीर भी एक ही है।"

श्रेणिक—" तो क्या तुम स्वयं अभय हो ? "

अभय—"हाँ पिताजी ! आपका सोचना ठीक है"।

श्रेणिक—"तो नन्दा कहाँ और किस तरह है ?"

अभय—" पिताजी ! वे नगर के बाहर एक भले-आदमी के यहाँ ठहरी हुई हैं और आपके वियोग में अत्यन्त दुःखी हैं।"

अभय की यह बात सुनकर, राजा श्रेणिक बड़े प्रसन्न हुए। वे, बड़ी धूम-धाम और गाजे-बाजे से नन्दा को शहर में ले आये और उन्हें अपनी पटरानी बनाया। अभय को उन्होंने अपने प्रधानमंत्री का पद दिया।

: ३ :

जहाँ अभय के समान बुद्धिमान-प्रधान हों, वहाँ किस बात का दुःख रह सकता है? राजा श्रेणिक को जब कभी किसी आपत्ति का सामना करना पड़ा, तभी अभय ने अपनी बुद्धि से उस सङ्कट को दूर कर दिया। वे, सदैव राजा की सहायता के लिये तयार रहते थे।

एक बार राजा श्रेणिक चिन्ता में बैठे थे। उसी समय अभयकुमार वहाँ आये। राजा को चिन्तित देख, उन्होंने पूछा-"पिताजी! आप चिन्ता में क्यों बैठे हैं?" श्रेणिक ने उत्तर दिया-"वैशाली के राजा चेड़ा ने मेरा अपमान किया है। उनके दो सुन्दर-कन्याएँ हैं, उनमें से एक के साथ मैंने अपना विवाह करने की इच्छा प्रकट की। उत्तर में उन्होंने कहा, कि-'तुम्हारा कुल मेरे कुल की अपेक्षा हलका है, अतः मेरी कन्या तुम्हें नहीं दी जासकती'।" अभय ने कहा-"ओहो! यह कौन बड़ी-बात है? छः महीने के भीतर ही मैं उन दोनों कुमारियों का विवाह आपके साथ करवा दूँगा। पिताजी! आप ज़रा भी चिन्ता न कीजिये।"

घर आकर अभय ने अपने नगर के चतुर-चतुर चित्रकारों को बुलवाया और उनसे कहा-"महाराजा-श्रेणिक का एक सुन्दर-चित्र तयार करो। अपनी सारी कला लगाकर उसे अच्छा बनाओ और ध्यान रखो, कि उसमें ज़रा भी कसर न रहने पावे।" चित्रकारों ने रात-दिन परिश्रम करके एक सुन्दर-चित्र तयार किया। अभय ने भी चित्रकारों को खूब इनाम देकर प्रसन्न किया।

: ४ :

उस चित्र को लेकर अभयकुमार वैशाली आये। वहाँ आकर उन्होंने अपना नाम धनसेठ रखा और राज-महल के नीचे अपनी दूकान खोली। उनकी दूकान पर तरह-तरह के इत्र तेल आदि बिकते और दूसरी भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ बिकती थीं। धनसेठ, बड़ी मीठी-वाणी बोलते थे। जो ग्राहक उनके यहाँ माल लेने आता, वह प्रसन्न होकर जाता था। इसके अतिरिक्त, वे अपना माल बेंचते भी थे बहुत सस्ता और माल भी बहुत बढ़िया रखते थे। यही कारण था, कि थोड़े ही दिनों में उनकी दूकान अच्छी तरह जम गई। यों तो सब लोग उनके यहाँ सौदा खरीदते ही थे, किन्तु उनकी दूकान की प्रतिष्ठा थोड़े दिनों में इतनी बढ़ी, कि राजा के रनवास

की दासियें भी उन्हीं के यहाँ सामान खरीदने आने लगीं।

जब दासियें वस्तु खरीदने आतीं, तब धनसेठ उस चित्र की पूजा करने लगते। उन्हें यह करते देख, एक दिन एक दासी ने उनसे पूछा—"धनसेठ! आप किसकी पूजा करते हैं?" धनसेठ ने उत्तर दिया—"अपने देव को"। दासी ने कहा—"इन देव का नाम क्या है?" धनसेठ ने उत्तर दिया—"श्रेणिक"। दासी ने आश्चर्य में भरकर फिर पूछा—"मैंने सभी देवताओं के नाम सुने हैं, किन्तु उनमें श्रेणिक नाम के कोई देव न थे। क्या ये कोई नये देव हैं?"

धनसेठ ने पूछा—"हाँ, तुम अन्तःपुर की स्त्रियों के लिये मगधदेश के महाराजा-श्रेणिक सचमुच नये-देव ही हैं"।

दासी ने कहा—"क्या महाराजा-श्रेणिक इतने अधिक सुन्दर हैं? ऐसा सुन्दर-स्वरूप तो आजतक मैंने कभी देखा ही नहीं है!" यों कहकर वह चली गई।

उस दासी ने आकर, यह बात राजा चेटक की पुत्री सुज्येष्ठा से कही। सुज्येष्ठा की इच्छा उस चित्र को देखने की हुई। उसने वह चित्र मँगवाया और उसे देखते ही वह राजा श्रेणिक पर मोहित होगई। उसने

धनसेठ से कहलाया, कि–" आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे किसी भी तरह मेरा विवाह राजा श्रेणिक के साथ होजाय "।

अभयकुमार ने, शहर के बाहर से राजा के अन्तःपुर (जनानखाने) तक एक सुरंग खुदवाई। उस सुरंग के दर्वाजे पर एक रथ खड़ा किया और राजा श्रेणिक को भी वहीं बुला लिया। राजा श्रेणिक, उस रथ में बैठकर, राजा चेटक की चेलणा नामक पुत्री को ले गये। सुज्येष्ठा के बदले चेलणा कैसे आई, इसका वृत्तान्त 'रानी–चेलणा' नामक पुस्तिका में लिखा गया है।

: ५ :

एक बार, राजा श्रेणिक के बाग में चोरी होगई। उस बाग के सब से अच्छे आमों को कोई चुराकर तोड़ लेगया। राजा श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाकर कहा– "अभय! इन आमों का चोर जल्दी पकड़ लाओ"। अभय ने कहा–" जो आज्ञा "।

अभयकुमार ने, वेश बदलकर घूमना शुरू किया। एक बार घूमते-घूमते वे लोगों की एक मजलिस (मण्डली) में पहुँचे। वहाँ, इन्हें देखकर सबने आग्रह किया, कि–" भाई ! कोई कहानी कहो "। लोगों के

अधिक कहने-सुनने पर अभय ने एक कहानी कहना शुरू किया:—

एक कन्या थी। उसने एक माली को यह वचन दिया था, कि मेरा विवाह चाहे जहाँ हो, किन्तु पहली-रात्रि में मैं तुझसे अवश्य मुलाकात करूँगी। थोडे दिनों के बाद उस कन्या का विवाह हुआ। विवाह के बाद, कन्या ने अपने पति से, उस माली को मिलने जाने की आज्ञा माँगी। पति ने भी, अपनी स्त्री के दिये हुए वचन के पालन के लिये आज्ञा दे दी। स्त्री माली से मिलने को जा रही थी, कि रास्ते में उसे चोर मिले। उन्होंने, स्त्री को लूटना चाहा। यह देखकर वह स्त्री बोली—"भाई! यदि तुम मुझे लूटना चाहो, तो प्रसन्नता से लूटना, किन्तु पहले मुझे अपना एक वचन पालन करने दो। विवाह की पहली-रात में एक माली से मिलने का मैंने वादा किया है, अतः पहले मुझे उससे मिल आने दो।" चोरों ने आपस में कहा—"ऐसी कड़ी-प्रतिज्ञा की पालन करनेवाली कभी झूठ नहीं बोल सकती। अच्छा इसे अभी तो जाने दो, लौटती बार लूटेंगे।"

वह स्त्री आगे चली। वहाँ उसे एक राक्षस मिला। उसने स्त्री से कहा—"मैं तुझे खाऊँगा"। स्त्री ने कहा—"यदि तुम मुझे खाना चाहो, तो खा लेना, किन्तु पहले मुझे अपना वचन पालन कर आने दो। मैं, लौटती बार

अवश्य ही इधर आऊँगी ! " राक्षस ने कहा–" बहुत अच्छा, किन्तु लौटता बार इधर आना जरूर"। फिर वह स्त्री माली के पास पहुँची । माली ने कहा–" तुझे धन्य है ! ऐसी वचन की पालन करनेवाली तो मैंने एक तुझको ही देखा है । जा, तेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई । "

स्त्री, लौटकर राक्षस के पास आई । राक्षस ने सोचा– ' वाह ! यह तो बड़ी सत्यभाषिणी है । इस सत्यवादिनी को कौन खाय ? ' फिर वह स्त्री से बोला–" बहिन ! मैं तुझे प्राण–दान देता हूँ " । फिर मिले चोर । उन्होंने सोचा ' यह तो सचमुच अपने वादे की पक्की है । सत्य बोलनेवाली को कौन लूटे ? ' उन्होंने स्त्री से कहा–" जा बहिन ! तू जा, हम तुझे नहीं लूटना चाहते " । वह स्त्री अपने घर आई ।

यह कथा कहकर, अभयकुमार ने उन लोगों से पूछा, कि–" बतलाओ, उस स्त्री के पति, चोर, राक्षस और माली में अच्छा कौन है ? " । किसी ने उत्तर दिया–माली; जिसने रात्रि के समय जवान–स्त्री के अपने पास आने पर उसे अपनी बहन के समान माना । किसी ने कहा–उसका पति; जिसने प्रतिज्ञा पालन के लिये इस तरह की आज्ञा दी । किसी ने कहा–राक्षस; जिसने जवान स्त्री को जीवित छोड़ दिया । इतने में एक आदमी बोल उठा, कि–सब से अच्छे

वे चोर हैं, जिन्होंने इतने गहने लूटने को मिल रहे थे, वे न लेकर उस स्त्री को यों ही छोड़ दिया।

अभयकुमार ने सोचा—अवश्य ही यह मनुष्य आम का चोर है। उन्होंने, उस मनुष्य को तत्क्षण गिरफ्तार कर लिया। अन्त में, उस मनुष्य ने भी स्वीकार कर लिया, कि मैं ही आम चुरानेवाला हूँ।

: ६ :

एक बार उज्जैन के राजा चण्डप्रद्योत ने राजगृही पर बड़े जोर से चढ़ाई की। अभयकुमार ने विचारा, कि—'इसके साथ लड़ाई करने में कोई लाभ नहीं है। दोनों तरफ के लाखों—मनुष्य मरेंगे, फिर भी यह नहीं कहा जासकता, कि जीत किसकी होगी? इसलिये यही उचित है, कि किसी तरकीब से काम लिया जावे।' उन्होंने घड़ों में सोने की मुहरें भरवाईं और उन्हें चुपकेसे शत्रु की छावनी में गड़वा दिया। इसके बाद, दूसरे दिन उन्होंने चण्डप्रद्योत को एक पत्र लिखा—"पूज्य मौसाजी को मालूम हो, कि मुझे आपका प्रेम एक—क्षण भी नहीं भूलता। अभी, आप पर एक बहुत-बड़ी आफत आनेवाली है, यही कारण है, कि उससे होशियार करने के लिये, मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरे पिताजी ने बहुत-सा रुपया देकर, आपकी सेना को अपनी

फोड़ लिया है। यदि आप जाँच करेंगे, तो शेष सब भी आपको मालूम होजावेंगी।"

चण्डप्रद्योत ने अपनी छावनी में जाँच की, तो वहाँ न्हें सोने की मुहरों से भरे हुए घड़े मिले। यह देखकर न्हें विश्वास होगया, कि अभयकुमार का लिखना सत्य है। उन्होंने तत्क्षण अपनी सेना को वापस लौटने का हुक्म दिया।

: ७ :

चण्डप्रद्योत को थोड़े दिनों के बाद मालूम हुआ, कि अभयकुमार ने मुझे धोखा दिया। उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अपनी सभा में पूछा—"क्या तुम लोगों में कोई ऐसा बहादुर भी है, जो अभयकुमार को जीवित पकड़कर ला सके?"। यह सुनकर एक वेश्या बोली—"हाँ महाराज, मैं तयार हूँ। अभयकुमार को जीवित ही पकड़कर आपके सामने हाज़िर करूँगी।"

उस वेश्या ने अपने साथ दो दासियें लीं और राजगृही में आ एक श्राविका बनकर रहने लगी। अहा! कैसी धर्मिष्ठ बनकर रहने लगी, कि देखनेवाले को उसकी धार्मिकता पर पूरा विश्वास होता था। प्रतिदिन बड़े ठाट—बाट से

भगवान की पूजा करती, व्रत-उपवास करती और सारे दिन धर्म-चर्चा करती रहती।

एक बार, अभयकुमार मन्दिर में पूजा करने गये। वहाँ, उन्होंने इस श्राविका की भक्ति देखी, अतः वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पूछा-"बहिन! तुम कौन हो और कहाँ से आई हो?"। वह वेश्या बोली—"भाई! मैं उज्जैन की रहनेवाली हूँ, मेरा नाम है-भद्रा। मेरे पति का देहान्त होगया, लड़के थे वे भी मर गये, इसलिये दोनों बहुओं को लेकर, मैं यात्रा करने निकली हूँ। किये हुए कर्मों को भोगे बिना, कैसे छुट्टी मिल सकती है?"

अभयकुमार ने कहा—"बहिन! आप आज मेरे ही यहाँ भोजन कीजियेगा"।

भद्रा—"किन्तु आज तो मेरे उपवास है"।

अभयकुमार—"तो पारणा मेरे ही यहाँ करियेगा"।

भद्रा ने यह बात स्वीकार कर ली। दूसरे दिन उसने अभयकुमार को निमन्त्रण दिया। अभयकुमार ने भी उसे स्वीकार कर लिया और उसके यहाँ भोजन करने गये। उस श्राविका ने उन्हें बड़े प्रेम से भोजन करवाया। किन्तु, भोजन में उसने बेहोशी की दवा मिला दी थी, अतः अभयकुमार बेहोश हो गये। उस समय, उस धूर्तिनी ने रस्सी से कुमार को बाँध लिया और रथ में डालकर चल दी।

थोड़ी देर के बाद ,जब अभयकुमार की बेहोशी दूर होगई, तो उन्होंने अपने आपको क़ैदी की दशा में पाया। वे, उसी क्षण समझ गये, कि धर्म का ढोंग रचकर इस ठगिनी ने मुझे धोखा दिया है।

उस वेश्या ने उज्जैन पहुँचकर अभयकुमार को चण्डप्रद्योत के सामने हाज़िर किया। चण्डप्रद्योत ने उन्हें क़ैद कर दिया।

: ८ :

राजा चण्डप्रद्योत के यहाँ अनलगिरि नामक एक सुन्दर-हाथी था। वह हाथी, एक बार पागल होगया। चण्डप्रद्योत ने अनकों उपाय किये, किन्तु हाथी वश में न आया। अब क्या करें? विचार करते-करते, राजा को अभयकुमार याद आये, अतः उन्हें बुलाकर पूछा--"अभयकुमार! अनलगिरि को वश करने का कोई उपाय तो बतलाओ"।

अभयकुमार ने कहा--"आपके यहाँ, उदयन नामक एक राजा क़ैद है। उसकी गायन-विद्या बड़ी विचित्र है। यदि, आप उससे गायन करवावें, तो उस गायन को सुनकर हाथी वश में आजावेगा!"

राजा ने ऐसा ही किया, जिससे वह हाथी वश में होगया। इस कारण, राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने

कहा–" अभयकुमार ! जेल से छूटने के अतिरिक्त, तुम और जो चाहो, वह वरदान माँगो "। अभय ने कहा –" आपका यह वचन, अभी आपके पास अमानत रखता हूँ, जब माँगने का मौका आवेगा, तब माँगूँगा "।

अभयकुमार ने, और भी ऐसे ही तीन बुद्धिमानीपूर्ण काम किये। प्रति बार, राजा चण्डप्रद्योत ने उन्हें एक–एक वरदान देने का वचन दिया।

जब, सब मिलाकर चार वचन होगये, तब एक दिन अभयकुमार ने कहा–" महाराज ! अब मैं अपने वरदान माँगना चाहता हूँ "।

चण्डप्रद्योत ने कहा–" खुशी से माँगो, किन्तु जेल से छूटने के अतिरिक्त ही वरदान माँगना "।

अभयकुमार––" बहुत अच्छा, मैं ऐसे ही वरदान माँगूँगा "।

यों कहकर उन्होंने फिर कहा–" महाराज, आप और आपकी रानी शिवादेवी, अनलगिरि हाथी पर बैठें। आप दोनों के बीच में, मैं बैठूं। फिर, आपका रत्न गिना जानेवाला अग्निभीरु रथ मँगाओ और उसकी चिता बनवाओ। उस चिता में हम सब साथ–साथ जलकर मर जावें। बस, मैं इतना ही माँगता हूँ। "

अब, माँगने में और क्या बाकी रह गया था ? अभयकुमार की बात सुनकर, चण्डप्रद्योत बड़े विचार में पड़ गये। अन्त में उन्होंने कहा—" अभयकुमार ! तुम आज से स्वतन्त्र हो "। अभयकुमार आजाद होगये, किन्तु उज्जैन से जाते समय उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि—"दिन-दहाड़े जब राजा चण्डप्रद्योत को उज्जैन से पकड़ लेजाऊँ, तभी मैं सच्चा अभयकुमार हूँ "।

: ९ :

अभयकुमार, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये एक व्यौपारी बने और अपने साथ दो सुन्दर-स्त्रियें लेकर उज्जैन आये। वहाँ आकर, उन्होंने नगर की प्रधान-सड़क पर एक मकान लिया।

वे दोनों स्त्रियें, खूब शृङ्गार करके ठाट-बाट से घूमती रहतीं और लोगों के चित्त हरण करती थीं। एक बार, राजा चण्डप्रद्योत ने भी उन स्त्रियों को देखा, और मोहित होगये। उन्होंने अपनी दासी के द्वारा उन स्त्रियों से कहलवाया, कि—" राजा चण्डप्रद्योत तुमसे मिलना चाहते हैं, वे कब आवें ? "। उन स्त्रियों ने कहा—" अरे बहिन ! ऐसी बात क्यों कहती हो ? तुम्हारे मुँह से ऐसा कहना शोभा नहीं देता "। दासी उस दिन वापस चली गई।

दूसरे दिन भी वह दासी आकर लौट गई और तीसरे दिन फिर आई। तब उन स्त्रियों ने कहा—"बहिन! हमारे साथ हमारा एक भाई भी है। वह, आज से सातवें दिन बाहर चला जावेगा। उस समय, महाराजा बड़ी प्रसन्नता से यहाँ पधार सकते हैं।"

दासी ने लौटकर चण्डप्रद्योत से यह बात कही, अतः वे सातवें दिन की प्रतीक्षा करने लगे! इधर, अभयकुमार ने एक मनुष्य को पागल बनाया और प्रतिदिन उसे खाट में बाँधकर वैद्य के यहाँ लेजाने लगे। मार्ग में,वह नकली-पागल चिल्लाता जाता, कि—"मैं राजा चण्डप्रद्योत हूँ, मुझे ये लोग लिये जारहे हैं, कोई छुड़ाओ रे"! लोग उसकी यह बात सुनकर हँसते।

सातवें—दिन, चण्डप्रद्योत अभयकुमार के यहाँ आये। अभयकुमार ने, उन्हें पकड़कर खाट में बाँध दिया और खाट उठवाकर बाहर की तरफ चले। चण्डप्रद्योत चिल्लाने लगे—"मैं, राजा चण्डप्रद्योत हूँ, मुझे ये लोग लिये जारहे हैं, कोई छुडाओ रे"! लोग, यह चिल्लाहट सुनकर हँसने लगे। वे जानते थे, कि यह बेचारा पागल है, अतः रोज ही इस तरह चिल्लाया करता है!

अभयकुमार, चण्डप्रद्योत को राजगृही लाये। चण्ड-प्रद्योत को देखते ही राजा श्रेणिक बड़े क्रोधित हुए और

उन्हें मारने दौड़े । किन्तु, अभयकुमार ने उन्हें रोककर कहा—" पिताजी ! ये अपने मिहमान हैं, इन पर आप किंचित भी क्रोध न कीजिये । मैं अपनो प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये ही इन्हें यहाँ पकड़ लाया हूँ । अब, इन्हें सम्मानपूर्वक यहाँ से बिदा कर दीजिये । "

अभयकुमार की यह बात सुनकर, राजा श्रेणिक शान्त हुए और उन्होंने राजा चण्डप्रद्योत को इज्जत के साथ बिदा कर दिया ।

: १० :

एक लकड़हारा था । वह अत्यन्त गरीब था । एक बार उसने मुनिजी का उपदेश सुना, अतः उसे वैराग्य होगया । उसने दीक्षा ले ली और अपने गुरु के साथ राजगृही आया ।

वहाँ बहुत से लोग उनकी पहली दशा को जानते थे, अतः वे उनका मजाक करने लगे और कहने लगे, कि—" इस दोस्त का जब कहीं ठिकाना न लगा, तब साधु होगया "। लोग, उनका और भी कई तरह से तिरस्कार करने लगे, अतः उन्होंने सोचा, कि जहाँ अप-मान होता हो, वहाँ रहना उचित नहीं है ।

उन्होंने अपना यह विचार अपने गुरुजी से बत-

लाया। गुरुजी ने कहा-" महानुभाव ! तुम्हारा यह विचार ठीक है, हमलोग कल यहाँ से विहार कर देंगे "।

अभयकुमार, भगवान-महावीर के बड़े भक्त थे। वे, जिस प्रकार राज्य-कार्य में चतुर थे, उसी प्रकार धर्म-ध्यान में भी बड़े कुशल थे। सदा, श्री जिनेश्वरदेव की पूजा करते और साधु—मुनिराज को वन्दन करते थे। उन्हें, मुनि के इस कष्ट का पता लगा, अतः वे अपने गुरु के पास आये और उनसे प्रार्थना की, कि—" हे नाथ ! कृपा करके कम से कम एक दिन तो आप और यहीं रुक जाइये, फिर चाहे सुखपूर्वक विहार करें "। गुरुजी ने. यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

दूसरे दिन अभयकुमार ने राजभण्डार में से तीन मूल्यवान-रत्न निकाले और शहर के बीच-चौक में आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यह बात प्रकट करवाई, कि ये तीन मूल्यवान-रत्न हम देना चाहते हैं। यह सुनकर, लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड वहाँ एकत्रित होगये और अभयकुमार से पूछने लगे—" हे मंत्री—महोदय ! ये रत्न आप किसे देंगे ? "। अभयकुमार ने उत्तर दिया—" ये रत्न उस मनुष्य को दिये जावेंगे, जो तीन चाजें छोड़ दे। एक तो ठण्डा पानी, दूसरी अग्नि, तीसरी स्त्री।"

मनुष्यों ने कहा-" ये तो बड़ी मुश्किल बातें हैं।

हमेशा गरम–पानी पीना, किसी आवश्यक–कार्य के लिये भी अग्नि न जलाना, और स्त्री के साथ का सम्बन्ध छोड़ देना, ये कार्य तो हमसे नहीं होसकते।"

अभयकुमार ने कहा—"तो ये रत्न उन लकड़हारे मुनि के होगये, जिन्होंने ये तीनों चीजें छोड़ दी हैं"।

लोगों ने जान लिया, कि–'लकड़हारे–मुनि सच-मुच पूरे–त्यागी हैं, तभी अभयकुमार उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। हमलोगों ने नाहक ही उनकी हँसी की और उन्हें चिढ़ाया।' फिर, अभयकुमार ने लोगों को शिक्षा दी, कि अब भविष्य में कोई भी उन मुनि से मजाक न करे और न उनका अपमान ही करे।

: ११ :

एक बार, राजा–श्रेणिक ने अपनी सभा में पूछा, कि–"सब से अधिक मूल्यवान कौन–सी चीज है?"। किसी ने कहा–हीरा। कोई बोला–मोती। तब अभय-कुमार ने कहा–सब से अधिक कीमती मांस है। अभय-कुमार का उत्तर सुनकर सब बोल उठे, कि–"यह बात गलत है, मांस तो अधिक–से–अधिक सस्ती–चीज है"। अभयकुमार ने कहा—"अच्छा, मौका आने पर बतलाऊँगा"।

थोड़े दिनों के बाद, अभयकुमार एक सेठ के यहाँ

गये और उनसे कहा—" सेठजी राजा श्रेणिक ! बीमार पड़े हैं। वैद्यलोगों ने बतलाया है, कि-' ये और किसी भी तरह से नहीं बच सकते। इनकी एक ही दवा है और वह है—मनुष्य के कलेजे का सवा-तोला मांस। यदि यह दवा मिल जाय, तो राजा अच्छे होजायँ।' अतः, मैं आपके पास यही लेने को आया हूँ।"

अभयकुमार की बात सुनकर, सेठ घबरा उठे और बोले—" सरकार ! मुझसे पाँच-हजार रुपये ले लीजिये और मुझे जीवित रहने दीजिये। आप, किसी और से यह मांस ले लीजियेगा।"

इसी तरह, अभयकुमार सब सेठ-साहूकारों तथा अमीर-उमरावों के यहाँ घूमे, किन्तु किसी ने भी मांस न दिया और सब-के-सब रुपये-पैसे देकर छूट गये। अब, अभयकुमार को ढेर-की-ढेर सम्पत्ति प्राप्त होगई। दूसरे ही दिन, उस धन को लेकर अभयकुमार राज-सभा में आये और बोले—" महाराज ! इतने अधिक धन के बदले में, सवा-तोला मांस भी नहीं मिलता"। यह सुनकर सब दरबारीलोग लज्जित होगये। तब अभयकुमार ने फिर कहा—" मांस सस्ता अवश्य है, किन्तु वह केवल दूसरे का। अपने शरीर का मांस तो अधिक-से-अधिक मूल्यवान माना जाता है।"

अभयकुमार की बुद्धिमानी के, ऐसे-ऐसे अनेकों उदाहरण हैं। यही कारण है, कि लोग आज भी यह इच्छा करते हैं, कि हम में अभयकुमार की-सी बुद्धि हो।

: १२ :

महाराजा-श्रेणिक ने, अभयकुमार को राजगद्दी के लायक देखकर, उनसे आग्रह किया, कि—"हे पुत्र! तुम इस राज्य का उपभोग करो, मेरी इच्छा भगवान-महावीर से दीक्षा लेने की है"। किन्तु अभयकुमार ने कहा—"पिताजी! मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं है। मैं, अब अपने आत्मा का कल्याण करना चाहता हूँ। प्रभु-महावीर से दीक्षा लेने की, मेरी भी बड़ी इच्छा है। आप, इसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।"

राजा श्रेणिक ने, राज्य ले लेने के लिये बड़ा आग्रह किया, किन्तु अभयकुमार अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। अन्त में, प्रसन्न होकर श्रेणिक ने आज्ञा दे दी।

बुद्धि के भण्डार अभयकुमार ने, साधु होकर पवित्र-जीवन बिताना प्रारम्भ किया और संयम तथा तप से आत्मशुद्धि करने लगे। बहुत दिनों तक ऐसा जीवन व्यतीतकर, उन्होंने अपनी जीवनलीला समाप्त की।

ॐ शान्तिः

जैन-ज्योति

सम्पादकः

धीरजलाल टोकरशी शाह

गुजराती-हिन्दी भाषा में प्रकाशित होनेवाला यह सचित्र और कलामय मासिक जैन समाज में अनोखाही है। जैन समाज, जैन संस्कृति, जैन साहित्य, जैन शिल्प और विज्ञान के बहु मूल्य लेखों इस पत्र में प्रकाशित होते हैं। वार्षिक मूल्य सिर्फ रु० २-८-० आज ही ग्राहक बनिये।

ज्योति-कार्यालय,

हवेली की पोल, रायपुर-अहमदाबाद.

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथमश्रेणी : : पुष्प ८

रानी-चेलणा

लेखकः
श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

अनुवादकः
श्री भजामिशङ्कर दीक्षित

सर्वाधिकार—सुरक्षित

संवत १९८८ वि० } प्रथमावृत्ति { मूल्य डेढ़-आना

प्रकाशक :
ज्योति-कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अ ह म दा बा द.

मुद्रक :
चीमनलाल ईश्वरलाल महेता.
" व सं त मु द्र णा ल य "
घीकांटारोड :: अ ह म दा बा द.

रानी--चेलणा

: १ :

प्राचीनकाल में वैशाली नामक एक बड़ा नगर था। उसमें चेटक नामक एक न्यायी, प्रजापालक, प्रतापी एवं बड़े शक्तिशाली राजा राज्य करते थे। ये, सम्बन्ध में श्री भगवान–महावीर के मामा लगते थे।

राजा चेटक के सात लड़कियें थीं। इनमें से पाँच के तो विवाह हो चुके थे और शेष दो कुआँरी थीं। इन दोनों में से एक का नाम था सुज्येष्ठा और दूसरी का चेलणा। दोनों बहनें बड़ी गुणवान, सभी कलाओं में निपुण और बड़ी चतुर थीं। धर्म का ज्ञान तो उन्हें बहुत ही गहरा था।

उन्हें किसी बात की कमी न थी। रहने के लिये सुन्दर–महल, टहलने को सुन्दर–बगीचे, पहनने को सुन्दर–कपड़े–लत्ते, खाने को इच्छानुकूल मेवा–मिठाई आदि सब कुछ सदा तयार रहता था। किन्तु ये दोनों–बहनें इन सब चीजों पर कभी अधिक मोहित न होती

थीं। सदा अच्छे-अच्छे ग्रन्थ पढ़तीं, अच्छे-अच्छे गायन गातीं, देवदर्शन को जातीं और प्रतिक्षण धर्म की ही चर्चा करती रहतीं। इन दोनें बहनें की सुन्दरता की प्रशंसा देश-देश में होने लगी।

: २ :

रमणीय-मगधदेश के शासक महाराजा-श्रेणिक बड़े प्रतापी, अत्यन्त बलवान और बड़े सुन्दर थे। उन्होंने, इन कन्याओं में से एक कन्या के साथ अपना विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

राजा चेटक ने उत्तर में कहला भेजा-" हे राजा ! तुम्हारा कुल हमारे कुल की अपेक्षा हलका है, अतः हमारे परिवार की कन्या का विवाह तुम्हारे साथ नहीं हो सकता "।

राजा श्रेणिक को, यह उत्तर सुनकर बड़ा बुरा मालूम हुआ।

: ३ :

वसन्त ऋतु आई। प्रकृति आनन्द से परिपूर्ण हो गई। सुज्येष्ठा और चेलणा, दोनों बहनें हिंडोले पर बैठी हुई आपस में यों बातें करने लगीं।

सुज्येष्ठा—बहिन चेलणा ! कैसे सुन्दर वसन्त के दिन हैं।

चेलणा—बहिन ! इसमें तो कहना ही क्या है ? सारी प्रकृति एक अनुपम–संगीत के शब्द से गूँज-सी रही है। यह सब देखकर मेरा तो यही जी चाहता है, कि मैं भी सारे दिन गाया ही करूँ।

सुज्येष्ठा—अहा ! कैसा सुन्दर विचार है ! बहिन चेलणा ! तुम्हारे मीठे–गायन से, प्रकृति के इस आनन्द में वृद्धि होगी, इसलिये तुम अवश्य ही एक मीठा–गीत गाओ।

चेलणा ने गाना शुरू किया:—

रास

(देशी–हु तो ढोले रमूँ ने हरि सांभरे रे)

सखि आई वसन्त की बहारियाँ रे ॥
सब मिलकरके जाओ वारियाँ रे ॥

नीला–नीला आकाश मन मोहता रे ॥
दीखें सोने के साथिये की क्यारियाँ रे ॥ ॥सखि०॥

सखि अम्बा की डाल मोर पींग झूलते ॥
और कोयल करे टुहुकारियाँ रे ॥सखि०॥

खिले चंपा चमेली और मालती रे ॥
झूम, भौंरा करे गुंजारियाँ रे ॥ ॥सखि०॥
आली देखो तालाब की तरंगियाँ रे ॥
हंस बैठे हैं पंख पसारियाँ रे ॥सखि०॥
कैसी कैसी वसंत की तैयारियाँ रे ॥
सखी नाचो तो देदे तारियाँ रे ॥ ॥सखि०॥

गायन सुन लेने के बाद, सुज्येष्ठा के मुँह से सहसा निकल पड़ा—"वाह ! चेलणा, तुम धन्य हो। तुमने कैसा मधुर-गीत गाया !"

इस तरह, निर्दोष-आनन्द लूटकर, दोनों-बहनें अलग-अलग, अपना-अपना काम करने लगीं।

: ४ :

सुज्येष्ठा जब अपने कमरे में पहुँची, तो उससे एक सखी ने कहा—"बहिन ! आज मैंने एक बड़ा-अच्छा चित्र देखा है। उस चित्र में बैठे हुए मनुष्य की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता। मैंने तो अपने जीवन में कभी ऐसी सुन्दरता देखी ही नहीं।" सुज्येष्ठा ने पूछा—"वह चित्र कहाँ है ?"

सखी—बहिन, एक इत्र के व्योपारी के यहाँ।

सुज्येष्ठा—किन्तु वह चित्र है किसका ?

सखी—मगधदेश के महाराजा श्रेणिक का !

सुज्येष्ठा—तो बहिन ! तू उस चित्र को ले आ, मेरा भी दिल उसे देखने को चाहता है।

सखी व्यौपारी के यहाँ जाकर उस चित्र को ले आई। उसे देखते ही, सुज्येष्ठा चकित रह गई और बड़े गौर से फिर उस चित्र को देखने लगी । यह देखकर उसकी एक सखी ने कहा–" बहिन ! देखती क्या हो ? सारे भारतवर्ष में, आज ऐसा और कोई राजा नहीं है "। सुज्येष्ठा बोली–" सच्ची बात है, इस चित्र को अब यहीं रख दो "। सखीने फिर कहा–" बहिन ! वापस लौटाने की शर्त पर ही मैं इस चित्र को लाई हूँ, अतः इसे यहाँ तो कैसे रख सकते हैं ? "। यों कहकर, वह उस चित्र को वापस दे आई।

चित्र वापस चला गया । अब सुज्येष्ठा उसी की चिन्ता में पड़ गई। वह सोचने लगी–" मैंने श्रेणिक की तारीफ तो सुनी थी, किन्तु उनका स्वरूप न देखा था। अहा ! वे कैसे भारी रूपवान हैं! पिताजी ने कुलके अभिमान के कारण उनका अपमान कर दिया, किन्तु उनसे बढ़कर हमारे लिये और कौन-सा पति है? यदि मैं विवाह करूँगी, तो केवल श्रेणिक के ही साथ! "

किन्तु उसे जब यह ध्यान आया, कि पिताजी से छिपाकर चुपके से मैं अपना विवाह सरलतापूर्वक नहीं

कर सकती, तब वह चिन्ता में पड़ गई। यह देखकर उसकी सखी ने कहा—" बहिन! आप चिन्ता क्यों करती हो? हमलोग इस व्यौपारी को अपने हाथ में ले लेंगी, तो इसके द्वारा सारे कार्य सफल हो जावेंगे"। सुज्येष्ठा ने कहा—" अच्छी बात है सखि! तुम जाओ और कोई ऐसा उपाय करो, जिससे मेरा विवाह राजा श्रेणिक के साथ हो जाय"।

सखी ने व्यौपारी से मिलकर एक उपाय ढूँढ निकाला, कि—नगर के बाहर से राजमहल तक एक गुफा खुदवाई जाय, अमुक दिन राजा श्रेणिक उस जगह आवें, सुज्येष्ठा वहाँ तयार रहे और श्रणिक उसे लेजायँ।

सब तयारियें हुईं और दिन निश्चित किया गया। श्रेणिक थोड़े बहादुर–योद्धाओं के साथ वहाँ आ गये। इधर सुज्येष्ठा भी जाने को तयार हुई।

इसी समय, सुज्येष्ठा को चेलणा की याद आई। उसने सोचा, कि चेलणा से यह बात छिपानी न चाहिये। वह चेलणा से मिलने गई। सुज्येष्ठा को देखकर चेलणा बोली–" बहिन! आज उदास क्यों हो?"। सुज्येष्ठा ने कहा–" बहिन! तुम्हारे वियोग के विचार से"। चेलणा बोली–" बहिन! मेरा वियोग कैसे? मैं और तुम तो साथ ही साथ हैं और साथ ही

रहेंगी, फिर यह चिन्ता क्यों ? सुज्येष्ठा ने फिर कहा—" बहिन ! जब तक विवाह नहीं होता, तब तक तो चाहे हम—तुम साथ—साथ रहें, किन्तु विवाह हो जाने के बाद तो अलग होना ही पड़ेगा "। चेलणा ने कहा—" नहीं बहिन सुज्येष्ठा ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। हम दोनों एक ही पति से विवाह करेंगी, तो फिर अलग कैसे होना पड़ेगा ? जाओ जो तुम्हारा पति होगा, वही मेरा भी पति होगा। " सुज्येष्ठा बोली—" तो तयार हो जाओ, मेरे पति मेरा मार्ग देखते हुए खड़े हैं "। चेलणा ने पूछा—" कहाँ ? " सुज्येष्ठाने उत्तर दिया—" गुफामें "। इसके बाद सुज्येष्ठा ने सब हाल कह सुनाया।

: ५ :

महाराजा—श्रेणिक सुरंग के मुँह पर अपने वीर—योद्धाओं के साथ खड़े थे। योद्धाओं ने श्रेणिक से कहा—" महाराज ! शत्रु की राजधानी में अधिक देर तक ठहरना उचित नहीं है। अब तक कुछ भी मालूम नहीं होता, इसलिये हमें तो जान पड़ता है, कि इसमें जरूर ही कुछ दगा है "। श्रेणिक बोले—" इसमें दगा कुछ भी नहीं है, राजा चेटक की ये लड़कियें कभी दगा नहीं कर सकतीं "। योद्धाओं ने फिर कहा—" महाराज ! आप तो विश्वास करते हैं, किन्तु हमें तो इसमें दगा ही नज़र

आता है ”। श्रेणिक ने उत्तर दिया–“ थोड़ी देर और रास्ता देखने दो, इस बीच में यदि सुज्येष्ठा न आ गई, तो हमलोग रथ लेकर चल देंगे ”। श्रेणिक राजा को यह क्या मालूम, कि दोनों बहनें आ रही हैं।

चेलणा और सुज्येष्ठा तयार हो कर सुरंग में चलने लगीं। जब रथ थोड़ी ही दूर रह गया, तब सुज्येष्ठा बोली—“ बहिन चेलणा! जल्दी में मेरा गहनों का डिब्बा वहीं रह गया है ”। चेलणा ने कहा–“ बहिन! तुम रथ में बैठो, मैं उसे ले आऊँ ”। ज्येष्ठा ने कहा– “नहीं बहिन! तुम रथमें बैठो, मैं अभी ज़ेवर का डिब्बा लेकर वापस आती हूँ ”

चेलणा आकर रथ में बैठ गई। सब ने जाना, कि यह सुज्येष्ठा है, अतः रथ को हवा की तरह चलाने लगे।

इधर सुज्येष्ठा आकर देखती है, तो वहाँ रथ ही नहीं है। वह समझ गई, कि मेरे बदले चेलणा का हरण होगया और मैं यहीं रह गई। इसलिये उसने चिल्लाना शुरू किया, कि—“ दौड़ो, दौड़ो, चेलणा का हरण हो गया ”।

चेटक राजा के सिपाही दौड़े, किन्तु उनका दौड़ना फिजूल होगया। क्योंकि राजा श्रेणिक बड़ी दूर निकल

गये थे। सुज्येष्ठा के हृदय पर इस घटना का बड़ा भारी असर हुआ। विचार करने पर उसे मालूम हुआ, कि इसकी अपेक्षा अधिक ऊँचा-जोवन बिताने की आवश्यकता है। अतः उसने दीक्षा लेली।

: ६ :

यों तो श्रेणिक के अनेक रानियें थीं, किन्तु चेलणा उन्हें सब से अधिक प्रिय थी। राजा श्रेणिक, अपना अधिकांश समय उसी के साथ बिताते थे। चेलणा भी अपने पति को खूब चाहती थी। इस तरह, राजा-रानी दोनों आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

चेलणा को भगवान-महावीर का उपदेश बहुत अच्छा लगता था, अतः उसने श्रेणिक को भी वह उपदेश समझाना शुरू किया। चेलणा के समझाने से, राजा श्रेणिक को भी भगवान-महावीर पर बड़ी श्रद्धा होगई और अन्त में वे भी भगवान के पक्के भक्त होगये। पति को धर्ममार्ग पर लानेवाली, ऐसी स्त्रियें सचमुच धन्य हैं।

पति की सच्ची-सेवा करनेवाली चेलणा को गर्भ रहा। किन्तु उस समय उसे एक बुरी इच्छा हुई, कि-अपने पति के कलेजे का ही मांस खाऊँ। ऐसा बुरा-विचार आते ही, चेलणा को अपने गर्भ के प्रति घृणा हो-

गई। वह समझ गई, कि इस गर्भ का बालक अपने पिता का वैरी है, अन्यथा ऐसा बुरा विचार आ ही कैसे सकता था?

सवा-नौ महीने पूरे हुए। चेलणा के एक तेजस्वी-पुत्र उत्पन्न हुआ। चेलणा ने तत्क्षण अपनी दासी को आज्ञा दी, कि-" दासी! इस दुष्ट-बालक को किसी दूर जगह पर रख आ। यह अपने बाप का वैरी है। साँप का पालना अच्छा नहीं होता।" दासी ने, बालक को उठा लिया और शहर से दूर एक अशोक-वाटिका में ले गई। वहाँ एक घूरे (कचरे के ढेर) में उसे रख दिया।

दासी लौट रही थी, कि मार्ग में उसे राजा श्रेणिक मिल गये। उन्होंने दासी से पूछा—" इधर कहाँ गई थी?" दासी ने जो सच्ची-बात थी, वह बतला दी। दासी की बात सुनकर, श्रेणिक तत्क्षण अशोक-वन में आये। वहाँ आकर देखते हैं, कि एक बालक जमीन पर पड़ा-पड़ा रो रहा है। उस बालक की एक उँगली मुर्गी ने काट खाई थी। यह दशा देखकर, राजा श्रेणिक को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने तत्क्षण उस बालक को उठा लिया और उसकी कटी हुई ऊँगली अपने मुँह में रख कर उसमें से खून चूस लिया। अब बालक कुछ शान्त हुआ।

राजा श्रेणिक ने घर आकर चेलणा को उपालम्भ

(ठपका) दिया, कि–" हे उत्तम कुलवाली ! क्या तुम्हें ऐसा करना शोभा देता है ? "। चेलणा ने कहा–" स्वामीनाथ ! यह पुत्र आपका वैरी है। इसके सभी लक्षण खराब हैं। ऐसे पुत्र का पालन मैं कैसे कर सकती हूँ ? मेरी दृष्टि में, पति की अपेक्षा पुत्र अधिक प्रिय नहीं है।" राजा श्रेणिक फिर बोले–" चाहे जो हो, किन्तु तुम्हें इस का पालन--पोषण अवश्य ही करना पड़ेगा। हमलोगों से यह छोड़ा तो कदापि नहीं जासकता।" श्रेणिक की आज्ञा से, चेलणा उस बालक को पालने लगी।

इस बालक की एक उँगली मुर्गी ने काट खाई थी, अतः वह अधकटी ही रह गई। इस उँगली को देख-देखकर, लड़के उसे " कोणिक ! कोणिक !" कहकर चिढ़ाते थे। कोणिक शब्द के मानी हैं–कटी–उँगलीवाला।

चेलणा के और भी दो–पुत्र हुए। एक का नाम था हल्ल और दूसरे का विहल्ल। ये तीनों भाई, आनन्द-पूर्वक पाले--पोसे जाकर बड़े होने लगे।

: ७ :

एक बार, राजा--रानी सोये हुए थे। सर्दी की रात्रि, तिस पर कड़ाके का जाड़ा ! योगायोग से चेलणा का एक हाथ रजाई में से बाहर निकल गया। एक तो कोमल हाथ, दूसरे भयङ्कर सर्दी; फलतः रानी के

हाथ में बडे जोर से दर्द होने लगा। किन्तु इसी समय उसे एक विचार आया, कि-"एक मुनिराज इस समय भी नदी के किनारे पर खड़े हैं, उन्होने एक भी कपडा नहीं ओढ़ रखा है, फिर भला इस कड़ी-सर्दी में उनकी क्या दशा हुई होगी?"

यह अन्तिम--वाक्य, चेलणा के मुँह से अकस्मात निकल पड़ा। इस समय, राजा श्रेणिक जाग रहे थे। वे रानी की यह बात सुनकर अपने मन में विचारने लगे, कि--" यह चेलणा इस समय किसका विचार कर रही है? अवश्य ही इसका मन किसी और में लगा है! ओहो! जिसको मैं इतना प्रेम करता हूँ, वह भी दूसरे का विचार करती है! बस, मुझे ऐसी रानियों की अब आवश्यकता नहीं है"। यों विचार करते हुए, राजा ने सारी रात बिता दी।

प्रातःकाल होते ही, राजा ने अभयकुमार प्रधान को बुलाया और उन्हें आज्ञा दी, कि -"मेरा अन्तःपुर बिगड़ गया है, इसलिये तुम उसे अभी जलवा दो। ख़बरदार! अपनी माता का मोह न आने पावे।" ठीक इसी समय नगर से बाहर बाग में भगवान--महावीर पधारे, अतः श्रेणिक उनके दर्शन करने को चले गये।

अभयकुमार ने विचारा, कि—' पिताजी अवश्य

इस समय किसी प्रकार क्रोध में हैं, अन्यथा ऐसा हुक्म कदापि न देते। मेरी सब माताएँ स्वभाव से ही सती हैं, उनमें कोई ऐसा दोष कैसे हो सकता है? निश्चय ही, पिताजी को स्वयं कुछ भ्रम हो गया है। इसलिये मुझे तो ऐसा दुस्साहसपूर्ण कार्य कदापि न करना चाहिये।'

यह सोचकर, अभयकुमार ने हाथीखाने के पास-वाले कुछ कमरों में आग लगवा दी और शहर में हल्ला मचवा दिया, कि-"राजा के अन्तःपुर में आग लग गई है"!

उधर श्रेणिक ने प्रभु को वन्दन किया और फिर प्रश्न पूछा, कि-" हे भगवान! रानी चेलणा के एक पति है या अनेक?"। प्रभु ने उत्तर दिया-"केवल एक। हे श्रेणिक! उस सती पर कभी और किसी भी प्रकार का सन्देह न करना।" श्रेणिक को भगवान के वचनों पर पूर्ण-श्रद्धा थी, अतः वे जान गये, कि मैंने बड़ी भयङ्कर-भूल की है।

वे जल्दी-जल्दी गाँव में आये। वहाँ अभयकुमार सामने मिले। उनसे श्रेणिक ने पूछा-" अभय! क्या किया?" अभयकुमारने उत्तर दिया-" आपकी आज्ञा का ठीक-ठीक पालन किया गया है"। श्रेणिक ने कहा-" अरे मूर्ख! मेरी अविचारपूर्ण आज्ञा का पालन

क्यों किया? अपनी माताओं को जलाने का साहस तेरे चित्त में कैसे हुआ?"। अभयकुमार ने राजा की बात सुनकर जान लिया, कि पिताजी अपनी भूल समझ गये हैं। अतः उसने सब हाल ठीक-ठीक कह सुनाया।

अब चेलणा पर श्रेणिक को अधिक प्रेम हो-गया। उन्होंने चेलणा के लिये एक सुन्दर-महल बनवाया, सुन्दर-बगीचा लगवाया और दोनों जने आनन्दपूर्वक वहीं रहने लगे।

: ८ :

कोणिक बड़ा हुआ, तब उसे राजगद्दी पर बैठने की बड़ी इच्छा हुई। यद्यपि श्रेणिक उसी को अन्त में गाद्दी देने वाले थे, किन्तु कोणिक चाहता था, कि वह श्रेणिक के जीवित रहते ही राजा बन जाय। उसने षड्यन्त्र रचना शुरू किया, जिसमें वह खूब सफल हुआ। राज्य का लोभ क्या नहीं करवाता? बाप-बेटे और भाई-भाई को यह शत्रु बना देता है। उसी राज्य-लोभ के वश हो, पिता को कैदखाने में बन्द करके, कोणिक स्वयं राजा बन बैठा।

कोणिक इतना ही करके शान्त न हुआ। अपने पूर्व-जन्म के वैर के कारण, उसने श्रेणिक को सदैव दुखी करते रहने का निश्चय किया। उसने जेल के आस--पास

बड़ा कड़ा—पहरा लगा दिया और अपने सिपाहियों को आज्ञा दी, कि—" खबरदार! कोई भी मनुष्य श्रेणिक के पास न जाने पावे "। चेलणा ने कोणिक के जन्म के समय जो बात सोची थी, वह बिलकुल सत्य हो गई।

चेलणा अपने पति को प्राणों से भी अधिक प्रिय मानती थी। वह अपने पति का यह कष्ट न देख सकती थी, किन्तु राज्यकी सारी सत्ता कोणिक के हाथ में होने के कारण वह कर ही क्या सकती थी? फिर भी उसने निश्चय किया, कि—" कोणिक के अन्यायपूर्ण शासन में कदापि न रहूंगी "।

वह साहस करके श्रेणिक के कैदखाने की तरफ चली। चेलणा का प्रभाव इतना अधिक था, कि कोणिक की कड़ी-आज्ञा होने पर भी सिपाहीलोग उसे न रोक सके। वहाँ कठघरे में बन्द अपने पति को मिलने से, चेलणा को बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु, साथ ही उनकी दुर्दशा देखकर उसे बड़ा शोक हुआ। उसे यह भी मालूम हुआ, कि राजा को अन्न—पानी देना बन्द कर दिया गया है और प्रतिदिन सबेरे चाबुक से उन पर मार पड़ती है। यह हाल जानकर रानी को अपार दुःख हुआ।

उसने विचार किया, कि यदि मैं और कुछ न कर सकूँ, तो कम-से-कम पति का यह दुःख तो अवश्य कम करवा दूँ।

उसने कोणिक से, श्रेणिक को मिलने की आज्ञा माँगी। कोणिक इनकार न कर सका, अतः चेलणा प्रतिदिन पति से मिलने जाने लगी। जब वह पति से मिलने को जाती, तब अपने बालों को दवा के पानी से भिजो लेती और बालों के जूड़े में उर्द का एक लड्डू रख लेती थी। वह लड्डू अपने भूखे-पति को खिलाती और जूड़ा निचोकर पानी पिला देती। यह पानी पीने से राजा श्रेणिक को एक प्रकार का नशा-सा चढ़ जाता था, जिसके कारण चाबुकों की मार से कम तकलीफ मालूम होती थी।

: ९ :

कोणिक अपने पुत्र को बड़ा प्रेम करता था। एक बार उसने चेलणा से पूछा—"माता! मेरे समान पुत्र का प्रेम क्या और भी किसी में है?"। कोणिक की बात सुनकर चेलणा बोली—"अरे दुष्ट! तेरा पुत्र-प्रेम किस गिनती में है? तू गर्भ में आया, तभी मैंने जान लिया था, कि तू अपने बाप का शत्रु है। इसीलिये, तेरा जन्म होते ही मैंने तुझे घूरे में फिंकवा दिया था। किन्तु तेरे पिता का तुझ पर अपार-प्रेम होने के कारण, यह बात जानते ही वे दौड़े और तुझे उठा लिया। उस समय तेरी जो उँगली मुर्गी ने काट खाई थी, वह मुँह में लेकर उन्होंने तुझे रोते से चुप किया। इसके बाद

अब तक उन्होंने तुझ पर अपार प्रेम रखा और राज्य भी तुझे ही देने की उनकी इच्छा थी।"

यह सुनकर कोणिक के हृदय से वैर-भाव दूर होगया। उसे अपनी भारी-भूल मालूम होगई। तत्क्षण उसने अपने पिता को कैदखाने से मुक्त करने और उनसे क्षमा माँगने का निश्चय किया। लुहार को बुलाने में देर होगी, ऐसा सोचकर वह स्वयं हाथ में लोहे के औजार लेकर जेल की तरफ दौड़ा।

कोणिक को इस तरह दौड़ा आता देख, चौकीदारों ने श्रेणिक को खबर दी, कि-"कोणिक अपने हाथ में लोहे के औजार लेकर दौड़े आ रहे हैं, अतः आज अवश्य ही आप की मौत होगी"।

श्रेणिक ने विचारा, कि-"कोणिक अवश्य मुझे दुर्दशापूर्वक मारेगा, अतः यदि मैं स्वयं ही अपने आप मर जाऊं, तो अच्छा है"। यों सोच, उन्होंने अपने पास छिपाकर रखा हुआ हलाहल विष खालिया। तत्क्षण उनकी मृत्यु होगई।

कोणिक जब वहाँ आकर देखता है, तो पिता की लाश पड़ी नज़र आई। वह विचारने लगा, कि-"अरे रे! यह क्या? पिताजी से अन्त-समय में मुलाकात भी न हुई! जब मुझे अपनी भूल मालूम हुई, तब तक पिताजी चल दिये! ओफ़! मैं कैसा महादुष्ट हूँ, जिसके कारण

पिताजी को अकाल-मृत्यु से मरना पड़ा ! किन्तु अब क्या हो सकता है ? " । कोणिक अब बहुत दुःखी हुआ ।

चेलणा को जब मालूम हुआ, कि श्रेणिक ज़हर खाकर मर गये, तब उसे भी अपार-दुःख हुआ । वह खूब शोक करने लगी । इसी समय, भगवान-महावीर वहाँ पधारे । उनकी अमृतवाणी सुनकर चेलणा का मन शान्त हुआ । उसने समझ लिया, कि-" जहाँ मोह है, वहाँ निश्चय ही शोक भी है । अतः मोह को छोड़े बिना, शोक या दुःख कुछ भी कम नहीं हो सकता । " यह सोचकर उसने सब मोह छोड़ दिया और साधु-जीवन की पवित्र-दीक्षा ले ली ।

महाराजा चेटक की यह विद्वान-पुत्री और मगध-देश की महारानी-चेलणा, पवित्र-जीवन व्यतीत करने लगी । अबतक उसका जो प्रेम श्रेणिक पर था, वह अब पवित्रतापूर्वक बढ़कर सारे संसार के जीवों पर एक समान होगया । उसने तप और संयम से अपने जीवन को अत्यन्त-सुन्दर बना लिया । अन्त में अपनी आयु पूरी करके यह सती निर्वाण-पद को प्राप्त होगई ।

धन्य है महा-सती चेलणा को !

धन्य है भारतवर्ष की भूमि को आलोकित करनेवाली पवित्र-आर्याओं को ! !

ॐ शान्तिः

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथमश्रेणी : : पुष्प १

चन्दनबाला

लेखकः
श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

अनुवादकः
श्री भजामिशङ्कर दीक्षित

सर्वाधिकार—सुरक्षित

संवत १९८८ | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अ म दा वा द.

मुद्रक :
चीमनलाल ईश्वरलाल महेता.
" व सं त मु द्र णा ल य "
घीकांटारोड :: अ म दा वा द.

चन्दनबाला

: १ :

चम्पा नगरीके राजा और उनकी रानी दोनोंही बड़े सज्जन थे। राजाका नाम था दधिवाहन और रानी का धारिणी। ये दोनों विपत्ति में पडे हुए मनुष्यों के पूर्ण-सहायक और अपनी प्रजा के पालन करनेवाले थे। इनके राज्य में सब जगह आनन्द ही आनन्द दिखाई देता था। न तो लोगों को चोरोंसे भय था और न अधिकारियोंसे कष्ट। गंगाजी बारहो महीने बहती रहती थीं, जिसके कारण फल-फूल की उपज बहुत अधिक होती थी। इनकी प्रजा अकाल का तो नाम भी न जानती थी।

इनके यहाँ देवी के समान सुन्दर एक कन्या उत्पन्न हुई। इस कन्याका शरीर अत्यन्त कोमल और वाणी अमृत के समान मीठी थी। वह ऐसी सुन्दर तथा तेजस्विना थी, कि देखने वाले की दृष्टि उस पर नहीं ठहरती। इस कन्या का नाम 'वसुमती' रखा गया।

वसुमती सोनेके खिलौनोंसे खेलती हुई बड़ी होने लगी। माता-पिता को वह अत्यन्त प्रिय और सखीयों की तो मानों प्राण ही थी।

माता-पिताने जब देखा कि वसुमती अब काफी समझदार हो चुकी है तब उन्होने उसके लिये शिक्षक नियुक्त कर दिये। उन शिक्षकों से वसुमतीने लिखना, पढ़ना, गणित और गायन आदि की शिक्षा पाई। फल-फूल पैदा करने के काममें वह खूब चतुर हो गई और वीणा बजानेकी कला में तो उसकी बराबरीका उस समय और कोइ था ही नहीं।

फिर उसे शिक्षा देनेके लिये धर्म-पण्डितों की नियुक्ति की गई। उनसे वसुमतीने धर्म सम्बन्धी गहरा-ज्ञान प्राप्त किया। एक तो वह पूर्व-जन्म के शुभ-संस्कारोंसे युक्त थी ही, तिस पर सद्गुणी माता-पिता के यहाँ उसका जन्म हुआ। साथ ही विद्या पढ़नेकी रुचि और पढाने वालोंकी भी चतुरता। इन सब कारणोंसे वसुमतीका खूब विकास हुआ।

वह प्रतिदिन सबेरे जल्दी उठ कर श्री जिनेश्वर देवका स्मरण करती। फिर माताके साथ बैठ कर प्रतिक्रमण करती। ज्योंही प्रतिक्रमण पूरा होता त्यों ही जिन-मन्दिर के घड़ी-घण्टोंकी आवाज सुनाई देती। अतः

माँ-बेटी दोनों ही सुन्दर वस्त्र पहनकर मन्दिर को जातीं और वहां अत्यन्त श्रद्धा और भाव पूर्वक वन्दन करतीं। मन्दिर की शान्ति देखकर वसुमती अपनी माता से कहती "माताजी! कैसा सुन्दर स्थान है! अपने राजमहल में तो बडी गड़बड़ और दौड़-धूप लगी रहती है, उसके बदले में यहाँ कैसी परम शान्ति है? मेरा तो यही जी चाहता है कि यहीं बैठी रहूँ और शान्ति के समुद्र समान इस प्रतिमा के दर्शन एक--टक दृष्टि से सदा किया ही करूँ।"

वसुमती की यह बात सुनकर धारिणी कहतीं, कि--" बेटा वसुमती! तुझे धन्य है, जो तेरे हृदय में ऐसी भावना उत्पन्न हुई। सत्य है, ये राजमहल के सुखवैभव क्षणिक-प्रलोभन मात्र हैं। उनमें भला यह शान्ति कैसे मिल सकती है, जो श्री जिनेश्वरदेव के मुख पर दिखाई देरही है? अहा, इनके स्मरण करने मात्र से दुःख-सागर में डूबे हुए को भी शान्ति मिलती है। बेटा! इनका पवित्र-नाम कभी भी न भूलना।"

इस तरह माँ-बेटी की परस्पर बात-चीत होती और फिर घर आकर अच्छे अच्छे ग्रन्थों को पढ़तीं। दोनों इसी तरह आनन्द में दिन बितातीं।

: २ :

एक बार राजा-रानी जल्दी उठकर इष्टदेव का स्मरण कर रहे थे। इसी समय कुछ सिपाही दौड़ते हुए आये और प्रणाम करके हाँफते-हाँफते कहने लगे-"महाराज! महाराज! कौशाम्बीके राजा शतानिक की सेना चढ़ आई है। हमने नगर के सब दरवाजे बन्द कर दिये हैं। अब फरमाइये कि आपकी क्या आज्ञा है।"

राजा ने कहा—"लड़ाई के नगाड़े बजवाओ और लड़ने की तयारी करो"।

ज़ोर-ज़ोर से लड़ाई के नगाड़े बजाये गये। युद्ध के नगाड़ों की गड़गड़ाहट सुनकर, सब लोगों को थोड़ी ही देर में यह मालूम होगया, कि नगर के चारों तरफ शत्रुका घेरा पड़ गया है। अतः सब लोग लड़ने को तयार हो गये।

वे तयार किस तरह हुए?

शरीर पर जिरह-बख्तर पहने और कमर में चमकती हुई तलवारें बांधी। कन्धों पर ढालें लटकाईं और बाणों के तरकस बाँधे। एक हाथ में धनुष लिये और दूसरे में तेज़-भाले

इस तरह तयार होकर सब योद्धा नगर के कोट पर चढ़ गये और वहांसे तीर मारने लगे। सनसनाहट करते हुए बाणों की वर्षा-सी होने लगी।

बाण लगते ही, मनुष्य मर जाते। किन्तु सेना बहुत बड़ी थी, उसमें से यदि दो-चार मर ही गये तो क्या हो सकता था? वह तो टिडी-दल की भाँति बढ़ती हुई चली ही आरही थी।

थोड़ी ही देर में सेना कोट के समीप आगई। कोट के नीचे खाई थी, जिसमें पानी भरा था। किन्तु शत्रुसेना के पास तो लकडी के पुल और बड़ी-बड़ी सीढ़ियें थीं, जिनके द्वारा, उन्होंने बाणोंकी वर्षामें भी खाई पर पुल बना डाले। इन पुलों के सहारे उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी सीढ़ियें कोट के किनारे-किनारे खड़ी करदीं।

बाणों की झडी लग रही थी, जिससे खूब आदमी मरते थे। किन्तु लडने में वीर योद्धा लोग उन सीढ़ियों पर चढ़ते ही जाते थे, ज़रा भी न हिचकिचाते।

कोट के कँगूरों पर पहुँचते ही, भालों की मार शुरू हुई। मनुष्य टप-टप नीचे गिरने लगे। किन्तु फिर भी और मनुष्य चढ़ते ही जाते थे, डरते नहीं।

थोडी ही देर में शत्रु-सेना कोट पर चढ़ आई। वहां तलवार से युद्ध होने लगा। इस लड़ाई में कौशाम्बी के लश्कर की विजय हुई।

कुछ सिपाहियों ने जाकर नगर के दरवाजे खोल दिये, जिससे सारी सेना नगर के भीतर घुस आई।

राजा दधिवाहन अपने प्राण बचाकर भागे, उनका लश्कर भी जी लेकर भाग चला। वे जानते थे कि शतानिक के हाथ पड़जाने पर हम लोगों को मरकर ही छुट्टी मिलेगी।

शतानिक-राजा ने अपनी सेना में घोषणा करवा दी कि-"नगर को लूटो और जो कुछ लेसको, वह लेलो"।

पागल की तरह उद्विग्न-सिपाहियों ने लूट-पाट शुरू कर दी।

सारे नगर में हाहाकार मच गया और चारों तरफ दौड़-धूप तथा चिल्लाहट होने लगी।

रानी धारिणी राजपुत्री वसुमती को ले, राजमहल से निकल कर भाग चलीं।

सारे नगर में शतानिक-राजा ने अपनी दोहाई फिरवा दी।

किन्तु धारिणी और वसुमती का क्या हुआ ?

वे दोनों नगर से बाहर निकल गईं । किन्तु इतने ही में शतानिक राजा के एक ऊंट-सवार ने उन्हें देख लिया । उसने इन दोनों अत्यन्त-सुन्दरी माँ-बेटी को देखकर विचार किया कि चम्पानगरी में लेने के योग्य वस्तुएँ तो ये हैं । यह सोचकर उसने इन दोनों को पकड़ा और बांधकर अपनी ऊंटनी पर बिठा लिया ।

ऊंटनी तेज़ी से चलने लगी ।

: ३ :

ऊंटनी सपाटे से रास्ता काटने लगी । वह न तो नदी-नालों को गिनती, और न कांटे-भाटे की ही परवा करती थी । पवन-वेग से दौड़ती हुई, वह एक घोर-जंगल में आई । उस वन के वृक्ष और उसमें के रास्ते आदि सभी भयावने मालूम होते थे । मनुष्य की तो वहाँ सूरत भी न दिखाई देती थी । उस वन में पशु-पक्षी इधर-ऊधर घूमते और आनन्द करते ।

यहाँ पहुँचने पर धारिणी ने उस सवार से पूछा—"तुम हम लोगों को क्या करोगे ?"।

सवार ने उत्तर दिया—"अरे बाइ ! तू किसी प्रकार की चिन्ता मत कर । मैं तुझे अच्छा-अच्छा

भोजन दूँगा, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनाऊँगा और अपनी स्त्री बनाऊँगा।"

यह बात सुनते ही, धारिणी के सिर पर मानों वज्र गिर पड़ा! वह विचारने लगी कि—"अहो! कैसा उत्तम मेरा कुल? कैसा श्रेष्ठ मेरा धर्म? और आज मुझे यह सुनने का समय आया! ऐ प्राण! तुम्हें धिक्कार है! ऐसे अपवित्र शब्दों को सुनने के बदले तुम इस शरीरको क्यों नहीं छोड़ देते?"

"शील (सदाचार) भङ्ग करके जीवित रहने की अपेक्षा इसी क्षण मर जाना अत्यन्त श्रेष्ठ है!"

इन विचारों का धारिणी के हृदय पर बड़ा प्रभाव हुआ और वह लाश बनकर ऊंटनी परसे नीचे गिर पड़ी।

यह देखते ही वसुमती चिल्ला उठी कि—"ओ माता! ओ प्यारी--माता! इस भयावने-जंगल में मुझे यम के हाथ सौंपकर तु कहां चली गई? राज्य तो नष्ट हो ही चुका था, इस कैद की दशा में मुझे केवल एक तेरा हीं सहारा था, सो तु भी आज मुझे छोड़कर चल दी!" यों विलाप करते--करते वह वेहोश होगइ।

उस सवार ने यह देखकर विचारा कि—"मुझे इस बहिन के ऐसे शब्द कहना उचित न था। किन्तु

खैर, अब इस कुमारी को तो हर्गिज़ कुछ न कहना चाहिये। नहीं तो यह भी अपनी माँ की तरह प्राण छोड़ देगी।" यों सोच कर वह वसुमती का बड़ा सत्कार करने लगा।

जब वसुमती होश में आई, तब उस सवारने बडे मीठे-शब्दों में उससे कहा कि—"अरे बाला! धीरज रख। जो कुछ होना था वह हो चुका, अब शोक करने से क्या लाभ? तू शान्त हो, तुझे किसी भी तरह का कष्ट न होने पावेगा"

इस तरह, मीठे—शब्दों में आश्वासन देता हुआ वह वसुमती को लेकर कौशाम्बी आया?

: ४ :

कौशाम्बी शहर तो मानों मनुष्यों का समुद्र सा था। उसके रास्तेपर मनुष्यों की अपार—भीड़ रहती थी। देश-विदेश के व्योपारी अपने-अपने काफिले लेकर वहाँ जाते और माल की अदला-बदली करते। वहाँ सभी प्रकार की वस्तुएँ बिकती थीं। अनाज और किराना बिकता, पशु-पक्षी बिकते और यहां तक कि उस नगर में मनुष्य भी बेंचे जाते था।

उस उँट-सवार ने विचार किया कि—"यह कन्या

बडी सुन्दरी है, यदि मैं इसे बेंच लूं तो खूब रुपया मिल जावे। अतः चलो, मैं इस बजार में इसे बेंच ही लूँ।"

वसुमती को वह बजार में लाया और बेंचने को खडी कर दी। इसका रूप अपार था इस लिये जो भी इसे देखता वह चकित रह जाता। इसी तरह लोगों के झुण्ड के झुण्ड उसके आसपास इकट्ठे हो गये और उसकी कीमत पूछने लगे।

वसुमती को इस समय कैसा दुःख हुआ होगा! राजमहल में रहकर, सैंकड़ो दास-दासियों से सेवा करवानेवाली को आज सरे-बाजार बिकने का मौका आया! काल की गति कैसी विचित्र है?

वसुमती नीचा मुँह करके खडी हो गई और मन-ही-मन जिनेश्वर से प्रार्थना करने लगी-"हे जगद्‌बन्धु! हे जगन्नाथ? जिस बल से आपने मुक्ति प्राप्त की है, उसी बलसे अब मेरे शरीर में प्रकट होकर, मेरे शील की रक्षा करो"।

इसी समय वहाँ एक सेठ आये, जिनका नाम था धनावह। वे प्रेम की मूर्ति ओर दया के भण्डार थे।

वसुमती को देखते ही वे विचारने लगे कि—"अहो! यह कोई भले-घर की कन्या है। किसी दुःख

की मारी यह बेचारी इस पिशाच के हाथ पड़ गई है। निश्चित ही, यह बेचारी और किसी नीच के हाथ पड़ जावेगी और कष्ट सहेगी। अतः मैं ही क्यों न इसे मुँह माँगे दाम देकर खरीद लू ? यह मेरे यहाँ रहेगी, तो मौका आने पर अपने माँ-बाप से मिल सकेगी और अपने ठिकाने पर पहुँच जावेगी।"

यों सोच, उन्होंने मुँह माँगे दाम देकर वसुमती को खरीद लिया।

धनावह सेठ ने वसुमती से पूछा—"बहिन ! तू किसकी लडकी है ?"

वसुमती यह सुनकर बहुत दुःखी हुई। उसके नेत्रों के सामने, उसके माता-पिता मानों दिखाई-से देने लगे ! कहाँ तो एक दिन वह चम्पानगरी की राजकुमारी थी और कहाँ आज कौशाम्बी की सडक पर बिकी हुई दासी ! वह कुछ भी उत्तर न दे सकी।

धनावह सेठ ने जान लिया कि इस कन्या का कुल बड़ा श्रेष्ठ है, अतः यह बतलाना नहीं चाहती। बेचारी को इस प्रश्न से बड़ा दुःख हुआ है, ऐसा मालूम होता है। यों सोचकर, उन्होंने फिर कभी इस विषय में कोई प्रश्न न किया।

घर आकर सेठ ने अपनी स्त्री मूला से कहा—"प्रिये ! यह हम लोगों की कन्या है, इसे अच्छी तरह रखना"। मूला उसे अच्छी तरह रखने लगी।

वसुमती यहाँ घर जानकर ही रहने लगी और अपने मीठे-वचनों से धनावह सेठ तथा अन्य लोगों को आनन्द देने लगी। इसके वचन चन्दन के समान शान्ति देने वाले होते थे, अतः सेठ ने उसका नाम 'चन्दनबाला' रख दिया।

चन्दनबाला कुछ दिनों के बाद युवती हो गई। एक तो वह यों ही सुन्दरी थी, तिस पर युवा-अवस्था ने उसके सौन्दर्य को और भी दूना कर दिया था।

यह देखकर मूला सेठानी विचारने लगीं, कि—"सेठजी ने इसे अभी तो लड़की मानकर रखा है, किन्तु इसके रूप पर मोहित होकर, वे अवश्य इससे विवाह कर लेंगे। यदि ऐसा हो जाय, तो मानों मेरी जिन्दगी ही मिट्टी में मिल गई।" ऐसे-ऐसे विचारों के कारण मूला सेठानी चिन्ता में पड़ गई।

: ५ :

ग्रीष्म-ऋतु आई। सिर फाड़नेवाली गर्मी पड़ रही है। मिट्टी के गोले के गोले हवा में उड़ रहे हैं। आग के

समान गर्म-हवा चल रही है। बेचारे पशु--पक्षी भी गर्मी से कष्ट पारहे हैं।

ऐसे समय में गर्मी से अकुलाकर सेठजी घर आये। घर आकर, उन्होंने इधर--उधर देखा, किन्तु पैर धोने के लिये कोई नौकर वहाँ हाज़िर न दिखाइ दिया। चन्दनबाला इस समय वहीं खडी थी, वह सेठजी की इच्छा समझ गई। अत्यन्त--नम्र होने के कारण, वह स्वयं पानी लाकर पिता के पैर धोने लगी। पैर धोते समय उसकी काली-भँवर चोंटी छूट गइ और बाल नीचे कीचड़ में जा पडे। सेठ ने देखा कि चन्दनबाला के बाल कीचड़ में खराब हो रहे हैं, अतः उन्होंने लकडी से उठा लिया और प्रेम से बाँध दिया।

मूला सेठानी खिड़की में खडी-खडी यह दृश्य देख रही थीं। यह देखकर उनके हृदय की शङ्का और अधिक पुष्ट होगइ। वे विचारने लगीं कि-"सेठने इसका जूडा बाँधा, यही प्रेम की निशानी है। अतः मुझे समय रहते चेत जाना चाहिये। यदि म इस मामले को बढ़ने दूँगी, तो अन्त में यह मुझे ही दुःखदायी होगा।" ऐसा विचार कर वे नीचे आईं और सेठजी को भोजन कराया।

शेठजी ने भोजन करने के पश्चात् थोडी देर आराम किया और फिर बाहर चले गये।

इस समय में मूलाने अपना काम शुरू किया। एक नाइ को बुलवाकर, चन्दनबाला के सिर के सारे बाल कटवा डाले। सिर मुँडाने के बाद उसके पैर में बेडियाँ डालीं और उसे दूर के एक कमरे में ले गई। वहाँ उसे खूब मारा-पीटा और अन्त में दरवाजा बन्द कर दिया।

फिर क्या हुआ ?

फिर, सेठानी ने सब नौकरों को बुलाकर धमकाया कि-" खबरदार ! यदि किसी ने सेठजी से यह बात कही, तो वह कहनेवाला अपनी जान की खैरियत न समझे "। इस तरह नौकरों को भय दिखलाकर, सेठानीजी अपने पीहर को चली गई।

शाम होने पर सेठजी घर आये। इधर-उधर देखा किन्तु कहीं भी चन्दनबाला न दिखाई दी। अतः इन्होंने नौकरों से पूछा—" चन्दनबाला कहाँ है ? "। किन्तु सेठानी के भय के मारे किसी ने भी उत्तर न दिया। सेठ ने सोचा कि कहीं इधर-उधर खेल रही होगी।

दूसरे दिन चन्दनबाला को न देख, सेठने नौकरों को इकट्ठा कर उनसे फिर पूछा-" चन्दनबाला कहाँ है ?"। उस समय भी किसी ने उत्तर न दिया।

सेठ ने फिर सोचा कि कहीं इधर-उधर खेल रही होगी। किन्तु जब तीसरे दिन भी उन्होंने चन्दनबाला को न देखा, तब बडे क्रोधित हुए और नौकरों को धमकाते हुए उनसे पूछा–"अरे, सच बतलाओ कि चन्दनबाला कहाँ है? जल्दी बतलाओ, नहीं तो मैं तुम सब को बड़ा कड़ा-दण्ड दूँगा"। तब एक वृद्ध स्त्री ने हिम्मत करके सारी बात सच-सच कह दी।

यह सुनकर सेठ को अपार-दुःख हुआ। वे बोल उठे-"मुझे जल्दी वह जगह बतलाओ, जहाँ मेरी प्यारी बेटी चन्दनबाला क़ैद है"। फिर कहने लगे-"आह, ओ दुष्टा-स्त्री! ऐसा नीच काम करने की तुझे क्या सूझी?"।

उस बुढ़िया ने वह कमरा बतलाया, अतः सेठजी ने तुरन्त उसका दरवाजा खोल डाला। भीतर घुसकर देखते हैं कि चन्दनबाला के पैर में बेड़ी पड़ी है और उसका सिर मुँडा हुआ है। उसके मुँह से नवकार मंत्र की ध्वनि निकल रही है और नेत्रों से आँसुओं की धार बह रही है। कमल को कुम्हलाने में कितनी देर लगती है? चन्दनबाला का सारा शरीर अब तक के कष्टों से कुम्हला गया था।

यह दशा देखकर सेठ के नेत्रों से टप-टप आंसू गिरने लगे। वे रोते-रोते बोले—"प्यारी चन्दनबाला!

शान्त हो जा। बेटा? तू बाहर चल, मुझसे तेरी यह दशा नहीं देखी जाती। तुझे तीन दिन के तो उपवास ही हो गये? हाय, मुझे ऐसी दुष्टा-स्त्री कहां से मिल गई?"। यों कह कर सेठजी रसोईघरमें भोजन ढूंढने लगे। किन्तु भाग्यवश वहाँ खानेका सामान कुछ भी न मिला। केवल एक सूप के कोने में थोड़ी-सी उर्द की घूघरी पड़ी थी। सेठ ने वह रूप चन्दनबाला को दिया और कहा-"बेटा? मैं तेरी बेड़ी काटने के लिये लुहार को बुलालाऊँ, तब तक तू इस घूघरी का भोजन कर ले"। यों कहकर सेठ बाहर चले गये।

चन्दनबाला देहरी पर बैठ गई। उसका एक पैर भीतर की तरफ़ था ओर दूसरा बाहर। यों बैठकर वह विचारने लगी—"अहो! मनुष्य-जीवन के कितने रङ्ग होते है! जो मैं एक दिन राजकन्या थी, उसकी आज यह दशा है! तीन-दिन के अन्त में, आज ये उर्द के उबले हुए दाने खाने को मिले हैं! किन्तु बिना अतिथि को दिये इनका भी खाना ठीक नहीं है। यदि इस समय कोई अतिथि आजायँ तो बहुत अच्छा हो। इस भोजन में से थोडा-सा उन्हें देकर फिर मैं खाऊं।"

: ६ :

आज पांच-महीने और पच्चीस-दिन होगये,

कौशाम्बा में एक महायोगी भिक्षा के लिये घूम रहे है। लोग उन्हे भिक्षा देना चाहते हैं, किन्तु वे योगिराज भिक्षा देनेवाले कीं तरफ देखकर वापस लौट जाते हैं।

यह क्यों ? वे किस कारण से भिक्षा नहीं लेते ?

ऐसा मालूम होता है, कि उन्होंने कुछ निश्चय कर लिया है, कि अमुक प्रकार भिक्षा मिलेगी, तभी लेंगे।

किन्तु आख़िर ऐसा कौन-सा निश्चय है ?

अरे ! वह निश्चय तो बड़ा ही कड़ा है।

" कोई सती और सुन्दर-राजकुमारी दासी बनी हुई हो, पैरों में लोहेकी बेडियां पडी हों, सिर मुँडा हुआ हो, भूखी हो, रोती हो, एक पैर देहरी के भीतर और दूसरा बाहर रखकर बैठी हो। ऐसी स्त्री सूप के एक कोने में रखी हुई उर्द की घुघरी यदि बहरावे, तो ही भिक्षा लेंगे। "

अहा ! कैसा कड़ा निश्चय है।

नगर में राजा-रानी और दूसरे सब लोग यह चाहते है कि अब यदि योगिराज पारणा कर लें, तो बड़ा ही अच्छा हो।

वे आज भी शहर में भिक्षा के लिये आये। जहां बैठी-बैठी चन्दनबाला विचार कर रही थी, वहीं वे योगि-

राज पधारे। उन्होंने देखा कि मेरी सारी-शर्ते यहां ठीक है, किन्तु केवल एक बात की कमी हैं। चन्दनबाला के नेत्रों में आंसू नहीं हैं। यह देखकर वे पीछे लौट चले।

चन्दनबाला ने देखा कि अतिथि आकर बिना भिक्षा लिये ही वापस जा रहे हैं, अतः उसे बड़ा-दुःख हुआ। नेत्रों में आँसू भरकर वह कहने लगी—"कृपा-नाथ! आप पीछे क्यों जा रहे हैं? मुझ पर कृपा कीजिये और ये उर्दके उबले हुए दाने ग्रहण कीजिये। क्या मुझे इतना भी लाभ न मिलेगा?"। योगिराजने देखा कि चन्दनबाला के नेत्रों में आँसू भर आये हैं, अतः उन्होंने अपने हाथ लम्बे कर दिये। चन्दनबालाने, वह उर्द की घूघरी उन्हें बहरा दी।

ये योगिराज थे कौन?

ये थे—महायोगी प्रभु-महावीर।

इसी समय चन्दनबाला की बेडियें टूट गईं। सिर पर सुन्दर बाल हो आये। सारी-प्रकृति में एक सुन्दर-आनन्द-सा छ गया!

सेठ जब लुहार के यहाँ से वापस लौटे, तो चन्दनबाला को पहले ही की तरह देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

मूला शेठानी जो उस समय लौट आई थीं, यह देखकर बडे विचार में पड़ गईं।

चन्दनबालाने माता-पिता दोनों ही को प्रणाम किया और फिर मूला माता से कहने लगीं-" माताजी! आपका मुझ पर बड़ा उपकार है। तीनों लोकों के स्वामी प्रभु-महावीर का मेरे हाथ से पारणा हुआ, यह आपही की कृपा का फल है। "

नगर के लोगों को जब बात मालूम हुई, तब वे झुण्ड के झुण्ड वहां आने लगे। राजा-रानी भी वहां आये और चंदनबाला को धन्यवाद देने लगे।

जिस समय सब लोग धन्यवाद की बर्षा कर रहे थे, उसी समय एक सिपाही आकर चन्दनबाला के पैरों पर गिर पड़ा और रोने लगा।

लोगों ने उससे पूछा—"अरे! आनन्द के समय तू रोता क्यों है?"। उसने कहा—"भाइयो!, यह तो राजकुमारी वसुमती है। चम्पानगरी के राजा दधिवाहन की धारिणी नामक रानी की यह कन्या है! कहाँ इसका वह वैभव और कहाँ आज यह गुलामी की हालत! मैं इनका सेवक था। जब चम्पानगरी नाश की गई तब शतानिक राजा मुझे पकड़ लाये, जिससे मुझे बडा दुःख पहुँच

किन्तु इस राजकुमारी के दुःख के सामने मेरा वह दुःख किस गिनती में है ?"

राजा-रानी भी यह सुनकर आश्चर्य चकित रह गये। रानी बोली—"अरे! धारिणी तो मेरी बहिन लगती है ! तू उनकी पुत्री होने के कारण मेरी भी पुत्री है ! चल बेटा ! मेरे साथ चल और आनन्दपूर्वक रह।

चन्दनबाला मृगावती के साथ राजमहल को गई।

वहां पहुंचकर चन्दबाला को अपनी प्यारी माता की याद हो आई और उनका यह मधुर उपदेश याद हो आया, जो उन्होंने मन्दिर में दिया था:—

"ये राजमहल के सुखवैभव क्षणिक प्रलोभनमात्र है। उनमें भला यह शान्ति कैसे मिल सकती है, जो श्री जिनेश्वर देव के मुख पर दिखाई दे रही है ? अहा, इनके स्मरण करने मात्र से दुःख-सागर में डूबे हुए को भी शान्ति मिलती है। बेटा ! इनका पवित्र-नाम कभी भी न भूलना।"

चन्दनबाला राजमहल में रहती, किन्तु उसका चित्त सदैव भगवान—महावीर के ही ध्यान में रहता था। वह न तो वहां के वस्त्राभूषणों में लुभाती थी और न वहां के मेवा-मिठाइयों में ही। वह न तो बाग बगीचों को

ही देखकर मुग्ध होती थी और न नौकर-चाकरों की सेवा देखकर ही। उसके मुंह से सदैव वीर! वीर! वीर! की ध्वनि निकलती रहती थी।

उसे वीर के आदर्श-जीवन का रंग लगा था। किन्तु अभीतक श्री वीर को केवलज्ञान नहीं हुआ था, अतः वे न तो किसी को उपदेश ही देते थे और न किसी को अपना शिष्य ही बनाते। चन्दनबाला उनके केवल ज्ञान का मार्ग देखती हुइ पवित्र-जीवन व्यतीत करने लगी।

थोड़े दिनों के बाद, प्रभु-महावीर को केवलज्ञान हो गया, अतः चन्दनबाला को इच्छा पूरी हुइ। उसने प्रभु-महावीर से दीक्षा ले ली।

यही भगवान-महावीर की सर्व-प्रथम और मुख्य साध्वी थीं।

उन्होंने बड़े कड़े-कड़े तप किये और समय का सुचारु रूप से पालन किया। इस तरह उन्होंने अपने मन, वचन और काया को पूर्ण-पवित्र बना लिया।

अनेक राज-रानियें तथा अन्यान्य स्त्रियें उनकी शिष्या बनीं। छत्तीस--हजार साध्वियों में वे प्रधान-आर्या बनाई गई।

आयुष्य पूरा होने पर, महासती–चन्दनबाला निर्वाणपद को प्राप्त होगइ। उनके शील, तप और त्याग को धन्य है !

उनके गुणों का, जितना भी वर्णन किया जाय, कम है। प्रत्येक बहिन का कर्त्तव्य है कि वह चन्दनबाला के जीवन को समझे तथा उनका अनुकरण करते हुए, उन्हीं की तरह अपनी आत्मा का कल्याण करे।

॥ शिवमस्तु सर्वजगतः ॥

जैन ज्योति

जैन जनताका प्रथम सचित्र कलात्मक मासिक

तंत्री :

धीरजलाल टोकरशी शाह

वार्षिक मूल्य रू. २–८–०] [एक अंक ०–४–०

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथमश्रेणी : : पुष्प १०

इलाची-कुमार

लेखकः
श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

अनुवादकः
श्री भजामिशङ्कर दीक्षित

सर्वाधिकार—सुरक्षित

संवत १९८८ } प्रथमावृत्ति } मूल्य डेढ़-आना

प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अ म दा वा द.

मुद्रक :
चीमनलाल ईश्वरलाल महेता.
" व सं त मु द्र णा ल य "
घीकांटारोड :: अ म दा वा द.

इलाची-कुमार

: १ :

ढम, ढम, ढम, ढम, ढोलक की आवाज़ सुनाई देने लगी।

पीं........ई, पीं....ई, पीं........ई करके शहनाई भी बजने लगी।

थोड़ी ही देर में, बाँस गाड़े गये और उन पर नट-लोगों की रस्सियें बाँधी जाने लगीं।

"अय भला! अय भला!" का शब्द करते हुए नटलोग उनपर अपना खेल करने लगे।

इलावर्धन नगर के लोग इस खेल को देखने के लिये, नगर के चौक में झुण्ड के झुण्ड एकत्रित होने लगे। इस चौक के नुक्कड़ पर एक सुन्दर-महल बना हुआ था, जिसमें सुन्दर-सुन्दर झरोखे लगे थे, अच्छी-अच्छी खिड़कियें लगी थीं और उस मकान की दीवारें और छतें तो मानों कारीगरी का भण्डार ही हों। धन-धान्य सम्पन्न धनदत्त-सेठ इस महल में रहते थे। इनके एक

जवान लड़का था, जिसका नाम था-इलाची। अपने मकान के नीचे नटों का खेल होते देख, इलाची ने खिड़की में से अपना सिर निकाला।

वहाँ क्या देखा ?

एक नट ने अपने पैर में घुघरू बाँध रखे हैं और दोनों हाथों में एक बाँस लेकर उस रस्सी पर चल रहा है। नीचे नटों का झुण्ड "अय भला! अय भला!" की ध्वनि कर रहा है। इस झुण्ड में अत्यन्त-सुन्दरी एक नवयुवती--कन्या भी है।

इस कन्या को देखते ही इलाची सिहर उठा और बड़े गौर से उसे फिर देखने लगा। उसने अपने चित्त में यह निश्चित किया, कि यदि मैं अपना विवाह करूँगा तो इसी कन्या के साथ, अन्यथा विवाह ही न करूँगा।

: २ :

भोजन करने का समय होगया, किन्तु इलाची नहीं आया। अतः धनदत्त सेठ ढूँढने निकले कि इलाची कहाँ है ?

उन्होंने जाकर देखा, कि इलाची एक कोने में जैसे-तैसे सोया है और उसका चेहरा बिलकुल उतरा हुआ है।

धनदत्त सेठ ने पूछा—" इलाची ! क्या बात है ? आज तू इतना अधिक उदास क्यों है ?"

इलाची ने सच्चे-दिल से कहा—"पिताजी ! गाँव में नटलोग अपना खेल करने आये हैं। उनके साथ एक जवान कन्या ऐसी है, जिसके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। आप उसी के साथ मेरा विवाह करवा दीजिये।"

धनदत्त सेठ ने कहा—" पागल ! तुझे यह बुरा-चस्का कहाँ से लग गया ? क्या नटिनी को कभी अपने घर में रखा जा सकता है ? कहाँ अपनी जाति और कहाँ नट की जाति ! अपनी जाति में बहुत-सी कन्याएँ हैं, उनमें से तू जिसे चाहे, उसी के साथ तेरा विवाह कर दूँ।"

पिता के ऐसे विचार सुनकर, इलाची कुछ भी न बोला।

शाम को कुछ खाया, कुछ न खाया और उठ गया। रात्रि के समय नटों को चुपके-से बुलवाया और उनसे कहा कि—" तुम जितना चाहो, उतना धन ले लो, किन्तु तुम्हारी कन्या मुझे विवाह दो"।

नटों ने कहा—" अन्नदाताजी ! हमलोग अपनी कन्या बेंचने को नहीं लाये हैं। धन तो आज है और कल

नहीं। क्या रत्न के समान कन्या यों दी जासकती है? फिर, यदि हम आपको अपनी कन्या दें तो हमारे कुल में दाग लग जाय।

इलाचीने पूछा—"यह किस तरह? मैं तो बनिया हूँ और तुम नट हो, फिर दाग कैसे लग जावेगा?"

नट ने कहा--"सेठजी! आप चाहे जैसे हों, किन्तु आखिरकार हैं तो कायर की ही जाति के और हम चाहे जैसे हों, किन्तु फिर भी साहसी हैं। साहसी-जाति की कन्या कायर को नहीं दी जा सकती।"

इलाची बोला--"किन्तु किसी भी तरह तुम अपनी कन्या का विवाह मुझसे कर सकते हो?"

नट ने कहा--"हाँ, इसका एक उपाय है। तुम भी हमारी ही तरह नट बनो और हमारी विद्या में निपुणता प्राप्त करो। फिर, खेल करके किसी राजा को खुश करो और उससे इनाम प्राप्त करो। उस इनाम की रकम से हमारी जाति की मिहमानी करो, तो हम अपनी कन्या आपको दे सकते हैं।"

इलाची ने कहा—"मुझे तुम्हारी बात स्वीकार है, अवश्य स्वीकार है। मैं, ऐसा ही करूँगा और तुम्हारी कन्या प्राप्त करूँगा।"

: ३ :

रात हुई, सब लोग सो गये। चारों तरफ सन्नाटा-सा छा गया।

इलाची, ऐसे समय में उठा और कपड़े पहनकर तयार होगया। घर या बाहर न तो कोई जाग ही रहा था और न किसी ने करवँट ही बदली।

ज्यों ही उसने बाहर जाने को पैर उठाया, त्यों ही माता–पिता की याद हो आई। उसने सोचा–" अहा, मेरी प्यारी–माता! प्रेम की मूर्ति पिता! इन सब को जब यह मालूम होगा, कि इलाची भाग गया, तब कितना दुःख होगा? अतः मुझे इस तरह से चले तो कदापि न जाना चाहिये!" यह विचारकर वह ज्यों ही लौटने लगा, त्यों ही उसे दिन को देखी हुई उस नट–कुमारी की याद हो आई। उसने सोचा—" अहा! कैसा सुन्दर–स्वरूप था! चाहे जो हो, किन्तु उस कन्या से मुझे विवाह अवश्य करना चाहिये। मा–बाप को थोड़े–दिनों तक दुःख तो होगा, किन्तु फिर सब भूल जायँगे। तो ठीक है, मैं जाकर नट लोगों में मिल जाता हूँ।"

यों सोचकर इलाची चला और नटलोगों के झुण्ड में जा मिला। सबेरे जल्दी उठकर, नटलोग उस नगर से दूसरी जगह चले गये।

: ४ :

इलाची नटलोगों के साथ देश-परदेश भ्रमण करने लगा। उसका सारा वेश इस समय कुछ विचित्र-सा हो गया। बाँस में एक ढोलक बांधकर, उसे अपने हाथ में लेता और अपने कन्धे पर एक कावड़ रखता। इस कावड़ के एक पिटारे में मुर्गे रहते और दूसरे में साज-सामान।

कहाँ बड़े-बड़े महलों और भारी-सम्पत्ति का स्वामी और कहाँ पिटारे में सामान रखनेवाला! कहाँ नौकरों से सब काम करवानेवाला और कहाँ कन्धे पर कावड़ उठानेवाला! किन्तु उसके सिर जो धुन सवार थी, उसके सामने उसे और कुछ भी न दिखाई देता था।

इसी दशा में, बारह-वर्ष व्यतीत हो गये। दोनों प्रेमी-प्रेमिका साथ ही साथ रहते, किन्तु एक दूसरे की तरफ आँख उठाकर भी न देखते। इलाची अब सारी नट-विद्या सीख गया। उसके खेल देखकर, लोग दाँतों तले उँगली दबाते थे। अब उसने विचार किया कि वेणातट नगर जाकर, वहां के राजा को अपने खेल से प्रसन्न करूँ।

: ५ :

अपने साथियों को लेकर, वह वेणातट गया और वहां के राजा से मिला।

राजा ने कहा—" आइये नायक ! तुम्हें देखकर बड़ा आनन्द हुआ। तुम यहाँ अपनी सारी विद्या बतलाओ। यदि तुम अपने खेल से मुझे प्रसन्न कर सके, तो मैं बहुत – बड़ा–इनाम दूंगा।"

इलाची ने खेल की तयारी करना शुरू किया। बाँस गाड़े और उन पर रस्सियां बाँधीं।

इधर, राजा की कचहरी खचाखच भर गई। सब सेठ–साहूकार, नौकर–चाकर तथा छोटे–बड़े और लोग, अर्थात् सारा शहर का शहर खेल देखने को इकट्ठा हो-गया। राजा की सब रानियें भी झरोखें में बैठकर खेल देखने लगीं।

इलाची ने अब अपना खेल शुरू किया। खेल किस तरह करता है ?

वह पहले रस्सी पर चढ़ गया और फिर पैरों में खड़ाऊँ पहनी। एक हाथ में ढाल ली और दूसरे में तलवार। अब रस्सी पर चलने लगा। थोड़ी दूर चलकर, वह पीछे की तरफ को लौट पड़ा। लोग आपस में कहने लगे— " वाह–वाह ! वाह–वाह ! कैसा अच्छा–खेल हो रहा है ?"

इलाची ने, दूसरा खेल शुरू किया। उसने अपने सिर पर सात–बर्तन एक पर एक करके रखे और बाँस की

घोड़ी पर एक लम्बा बाँस बाँधकर उस पर चढ़ गया। नोक पर पहुँचकर वह उस बाँस को जोर से हिलाने लगा। बाँस खूब हिल रहा था, किन्तु इलाची के सिर पर वे सातों-घड़े ज्यों के त्यों रखे थे।

लोग, यह देखकर आश्चर्य चकित रह गये। वे मार्ग देखने लगे, कि राजा इस पर प्रसन्न होकर अब इनाम दें, अब दें, अब दें। किन्तु राजा कुछ भी न बोले।

इलाची ने तीसरा-खेल शुरू किया।

उसने अपने पैरों में कटारें बाँधीं और उन कटारों की नोकके बल रस्सी पर चलने लगा। लोग यह खेल देखकर बड़े प्रसन्न हुए। किन्तु राजा ने अपने मुँह से उसके विषय में एक भी शब्द न कहा।

तो क्या राजाको ऐसे अच्छे-खेल पसन्द नहीं आते थे?

नहीं-नहीं! राजा तो इस समय कुछ और ही विचार कर रहा था। उसने, नीचे खड़ी हुई उस नट-कन्या को देखा और उसपर मोहित होकर यों सोच रहा था कि—"यह नट यदि रस्सी पर से गिरकर मर जाय, तो मैं इस कन्या से विवाह कर सकूँ। अतः क्यों

बोलूँ ? खेल करने ही दो, अभी खेल करते करते गिरकर अपने आप मर जावेगा !"

इधर, नट-कन्या नीचे खड़ी-खड़ी विचार करती है, कि—"अहो ! इलाची ने मेरे लिये अपने माता-पिता छोड़ दिये, अपना सुख-वैभव छोड़ा और एक दिन अपने हाथों से वह दूसरों को दान देता था, उसके बदले आज दूसरों से दान लेने को हाथ लम्बा कर रहा है ! अब तो यदि राजा प्रसन्न होकर इसे इनाम दे दें, तभी अच्छा है। मेरे माता-पिता शीघ्र ही इसके साथ मेरा लग्न कर दें और मैं इसके साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करूं।

इलाची ने रस्सी पर से उतरकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने कहा—"नटराज ! तुम बड़े चतुर हो, किन्तु मैं तुम्हारा खेल न देख सका। क्योंकि मेरा ध्यान इस समय राज्य के कार्यों की चिन्ता में लगा था।

इलाची फिर खेल करने लगा। नट लोग, जोर-जोर से अपने ढोल बजाने लगे और "अय-भला ! अय—भला !" की ध्वनि करके उसमें जोश भरने लगे। इलाची ने बड़ा विचित्र खेल किया और फिर नीचे उतरकर राजा को सलाम किया। राजा ने कहा—"नायक? ज्यों ही तुमने खेल शुरू किया, त्यों ही मैं एक जरूरी बात करने

लगा। इसी कारण मैं तुम्हारा खेल नहीं देख सका। तुम फिर एक मर्तबा खेल करो, इस बार मैं ध्यान से देखूँगा।

इलाची तीसरी बार खेल करने लगा। किन्तु राजा फिर भी प्रसन्न नहीं हुआ। राजा के दिल में तो यह पाप घुसा बैठा था कि—"अभी यह किसी तरह गिरकर मर जायगा" फिर भला वह उसकी तारीफ क्यों करने लगा?

इलाची निराश होगया। यह देखकर नट-कन्या ने कहा कि—"इलाची! निराश न हो। थोड़ी-सी बात के लिये सब किया-कराया बिगाड़ना मत। एक बार फिर खेल करके राजा को प्रसन्न करो, नहीं तो हम लोगों का विवाह न हो सकेगा।"

इलाची चौथी-बार रस्सी पर चढ़ा और विस्मय पैदा करनेवाले खेल करके दिखलाये। किन्तु फिर भी राजा प्रसन्न न हुआ।

सब लोगों को यह शक हो गया कि अवश्य ही राजा के पेट में कुछ पाप है। पटरानी को भी यह सन्देह हो गया कि निश्चय ही राजा के मन में कुछ दगा है।

अब इलाची की निराशा का पार न रहा। नट-

कन्या यह देखकर बोली—"इलाची ! एक बार और खेल करो। किनारे पर पहुँचे हुए जहाज को डुबाओ मत, मेरे कहने से और मेरे ही लिये एक बार फिर खेल कर डालो।"

इलाची ने पाँचवीं-बार खेल शुरू किया। वह बाँस की चोटी पर जाकर खड़ा हुआ। इस समय उसे एक दृश्य दिखाई दिया। एक घर के दरवाजे पर सुन्दरता की खान एक स्त्री हाथ में चांदी का थाल लेकर खड़ी है। उस थाल में मिठाई तथा अन्यान्य अच्छी-अच्छी चीजें भरी है। वह, आग्रह कर-करके एक मुनिराज को बहराना चाहती है, ।कन्तु मुनिराज न तो वह मेवा-मिठाई लेते हैं और न आँख उठाकर उसकी तरफ देखते ही हैं।

यह देखकर, इलाची के हृदय में विचार आया, कि-"अहा ! धन्य है इन मुनिराज को। इनकी जवान-अवस्था है, सामने ही इतनी रूपवती स्त्री खड़ी है, किन्तु उनका एक रोयाँ भी नहीं फरकता। और मैं ! मैं तो एक नटिनी के लिये घर-बार, धर्मध्यान आदि सारी बातें छोड़कर देश-विदेश घूम रहा हूँ ! इन मुनिराज को वह स्त्री आग्रह पूर्वक बहराना चाहती है, किन्तु वे नहीं लेते और मैं दान लेने ही के लिये ज़िन्दगी को खतरे में डालकर, इस बाँस पर चढ़ा हुआ खेल कर रहा हूँ? और

तारीफ यह है, कि यह सब कुछ करने पर भी मुझे दान नहीं मिल रहा है !

सच है, इस मोह में फँसकर, मैंने अपना अमूल्य-समय फिजूल नष्ट किया। अब तो मैं भी इन मुनिराज की तरह साधु होकर इनके जीवन का आनन्द अनुभव करूँ।"

ऐसे विचार करते-करते, इलाची के मन की पवित्रता एक दम बढ़ गई और उन्हें वहीं जगत का सच्चा-ज्ञान अर्थात 'केवल ज्ञान' होगया।

इधर नटिनी भी विचारने लगी कि-"ऐसा स्वरूप आग में पड़े, जिस पर मोहित होकर इलाची ने घर-बार छोड़ा, और इतने दुःख सहन किये। फिर इस राजा को भी उल्टी-बुद्धि सूझी है कि कुछ बोलता ही नहीं, न पुरस्कार ही देता है। अहो! मेरे इस जीव ने संसार में उत्पन्न होकर कौन-सा अच्छा काम किया? अब कब तक ऐसा जीवन बिताना चाहिये? चलो, अब तो मन, वचन और काया को जीतकर मैं अपने आत्मा का कल्याण करूँ।"

ऐसे विचार करते ही करते, उस नटिनी को भी केवलज्ञान हो गया।

राजा-रानी ने, इन दोनों के जीवन में एकाएक भारी-परिवर्तन देखा, अतः उन्हें भी अपने-अपने जीवन

सम्बन्धी विचार उत्पन्न हुए। उन विचारों से, हृदय बिलकुल पवित्र होते ही, उन्हें भी केवलज्ञान होगया।

ये चारों–केवलज्ञानी, एक लम्बे–समय तक इस संसार में भ्रमण करते रहे। इस काल में, उनके पवित्र–जीवन का, बहुत लोगों पर प्रभाव पड़ा। उनके अमृत के समान उपदेशों से, बहुतों के जीवन पलट गये।

अपना–अपना आयुष्य पूरा होने पर, ये सब निर्वाण–पद को प्राप्त हो गये।

धन्य है इलाची के समान साहसी नर वीरों को!

शिवमस्तु सर्वजगतः

जैन ज्योति

जैन जनताका प्रथम सचित्र कलात्मक मासिक

तंत्री :

धीरजलाल टोकरशी शाह

वार्षिक मूल्य रू. २–८–०] [एक अंक ०–४–०

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी :: :: पुष्प ११

जम्बूस्वामी

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय

अहमदाबाद

संवत १९८८ वि०

प्रथमावृत्ति

मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्रो. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पीरमशाहरोड,
अमदावाद

जम्बूस्वामी

: १ :

सोलह-वर्ष का सुन्दर कुमार है। सोने के हिंडोलेदार पलँग पर बैठा है। हाथ में हीरे जड़ी हुई रेशमी रस्सी है जिसके द्वारा वह कड़ाक-कड़ाक झूले ले रहा है। इस कुमार का नाम है-जम्बू।

क्रोड़ाधिपति ऋषभदत्त का वह पुत्र है। उसकी माता का नाम है-धारिणी।

सेठ के यही एक पुत्र है, बड़ी उमर में हुआ है, अतः लाड़-प्यार में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रखी गई।

शहर की अच्छी-से-अच्छी आठ-कन्याओं के साथ थोड़े ही दिन पहले इस कुमार की सगाई हो चुकी है।

एक दिन वन के रक्षक ने आकर बधाई देते हुए कहा, कि–" सेठजी ! वैभारगिरि पर श्री सुधर्मास्वामी पधारे हैं "।

समता के सरोवर तथा ज्ञान के समुद्र गुरुराज के पधारने से किसे प्रसन्नता नहीं होती ? जम्बूकुमार का हृदय हर्ष से उछलने लगा। उसने हिंडोला बन्द किया और गुरु के पधारने की खुशखबरी लाने के इनाम में अपने गले से मोती की माला निकालकर वनपाल को दे दी। वनपाल प्रसन्न होकर चला गया।

जम्बूकुमार ने सारथि से कहा–" सारथि ! सारथि ! रथ जल्दी तयार करो, वैभारगिरि पर गुरुराज पधारे हैं, मैं उनके दर्शन करने को जाऊँगा "।

सुन्दर सामग्रियों से सुशोभित रथ तयार किया गया, उसमें बैठकर जम्बूकुमार वैभारगिरि को चले । वैभारगिरि राजगृही के बिलकुल नज़दीक था, अतः वे थोड़े ही समय में वहाँ पहुँच गये।

सुधर्मास्वामी भगवान–महावीर के गणधर थे। वे, उस समय के सारे जैन–संघ के नेता थे। फिर भला उनके उपदेशों में अमृत की वर्षा के अतिरिक्त और क्या हो सकता था ?

जम्बूकुमार उन्हें वन्दन करके उपदेश सुनने लगे। वे ज्यों–ज्यों उपदेश सुनते गये, त्यों–त्यों उनका मन संसार से

विरक्त होता गया। उपदेश पूरा होते-होते, जम्बूकुमार का हृदय वैराग्य से भर गया।

वे हाथ जोड़कर बोले, कि-" प्रभो! मुझे दीक्षा लेनी है, अतः जब तक मैं माता-पिता से आज्ञा लेकर आऊँ, तब तक आप यहीं विराजने की कृपा करें। सुधर्मास्वामी ने यह स्वीकार कर लिया।

रथ में बैठकर जम्बूकुमार पीछे लौटे। नगर के दरवाजे पर पहुँचकर देखते हैं, कि सेना की भीड़ दरवाजे से निकल रही है। हाथी, घोड़े और पैदल की कोई सीमा ही न थी। ऐसी भीड़ को चीरकर भीतर कैसे जाया जासकता? और जब तक सेना पार न होजाय, तब तक वहाँ रुक भी कैसे सकते थे? अतः वे दूसरे दरवाजे की तरफ चले।

जब वे दूसरे दरवाजे के नज़दीक पहुंचे, तब एक ज़बर-दस्त लोहे का गोला धम-से उनके पास आ गिरा। यह गोला उन सिपाहियों का चलाया हुआ था, जो लड़ाई की शिक्षा ले रहे थे। यह देखकर जम्बूकुमार विचारने लगे, कि-" अहो! यह लोहे का गोला यदि मेरे सिर पर गिरता, तो मेरी क्या दशा होती? मैं निश्चय ही ऐसे अपवित्र-जीवन की दशा में मर जाता। अतः चलूँ और अभी गुरुजी के समीप जाकर प्रतिज्ञा ले आऊँ।"

जम्बूकुमार सुधर्मास्वामी के पास आये और हाथ जोड़कर

बोले–" स्वामी ! मुझे जीवनभर के लिये ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की प्रतिज्ञा करवा दीजिये "। सुधर्मास्वामी ने व्रत करवा दिया।

यह व्रत लेकर मन में हर्षित होते हुए जम्बूकुमार अपने घर आये और माता–पिता से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी।

माँ–बाप बोले–" बेटा ! दीक्षा लेना अत्यन्त कठिन कार्य है। पंच–महाव्रत का पालन तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है। तू तो अब भी बालराजा कहा जाता है, तुझसे साधु के कठिन–व्रत कैसे पल सकते हैं ? फिर तू अकेला ही तो हमारे प्यारा–लड़का है, तेरे बिना हमें एक क्षण भी अच्छा नहीं मालूम होगा। "

जम्बूकुमार बोले–" पूज्य माता–पिता ! संयम अत्यन्त कठिन है, यह आपका कहना ठीक है। किन्तु उसकी कठिनता से तो केवल कायरलोग ही डरते हैं। मैं आपकी कोख से पैदा हुआ हूँ, व्रत लेकर प्राण जाने पर भी उन्हें न तोड़ूँगा। मुझ पर आप लोगों का अपार–प्रेम है, अतः मेरे बिना आपको निश्चय ही अच्छा न मालूम होगा। किन्तु ऐसे वियोग का दुःख सहन किये बिना मुक्ति भी तो नहीं मिल सकती ! इसलिये आपलोग प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिये।"

माँ–बाप ने कहा–" पुत्र ! यदि तुम्हें संयम लेने की बहुत ही इच्छा हो, तो भी हमारी बात तुम्हें माननी चाहिये। हम तुम्हारे माता–पिता हैं, अतः हमारे दिये हुए

वचन को पालन करने के लिये, हमने जो कन्याएँ तुम्हारे लिये स्वीकार करली हैं, उनके साथ अपना विवाह कर लो। फिर तुम्हारी इच्छा हो तो सुखपूर्वक दीक्षा ले लेना !"

जम्बूकुमार बोले—" आपकी आज्ञा मैं सिर-माथे पर चढ़ाता हूँ। किन्तु फिर मुझे दीक्षा लेने से आप रोकियेगा नहीं।"

माँ-बाप ने कहा-" बहुत अच्छा "।

: २ :

ऋषभदत्त ने आठों कन्याओं के पिताओं को बुलवाया और उनसे कहा, कि-" हमारा जम्बूकुमार विवाह के बाद तत्क्षण दीक्षा लेगा। वह केवल हमारे आग्रह से अपना विवाह कर रहा है। अतः आपको जो कुछ भी सोचना हो, वह सोच लीजिये। पीछे से हमें कुछ मत कहना।"

यह सुनकर वे विचार में पड़ गये। अपने पिताओं को विचार में पड़े देख, उन कन्याओं ने कहा-" पिताजी ! आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हम तो हृदय से जम्बूकुमार को वर चुकी हैं, अब जैसा वे करेंगे, वैसा ही हम भी करेंगी।"

कन्याओं ने अपना यह निश्चय बतला दिया, अतः सात-दिन आगे की मिति विवाह के लिये तय होगई।

जम्बूकुमार के विवाह में किस बात की कमी हो सकती थी ? बड़ा-भारी मण्डप बाँधा गया, और उसे भाँति-भाँति

के चित्रों तथा तोरण आदि से सजाया गया । सातवें-दिन, जम्बूकुमार का वहाँ बड़ी धूमधाम से उन आठों कन्याओं के साथ विवाह होगया । राजगृही-नगरी में ऐसी धूमधाम और ठाट-बाट से और विवाह बहुत ही कम हुए होंगे।

विवाह की पहली ही रात्रि में जम्बूकुमार अपनी स्त्रियों सहित रंगशाला (सोने के कमरे) में गये ।

रंगशाला की सुन्दरता वर्णन नहीं की जा सकती। अच्छे-अच्छे मनुष्यों का चित्त उसे देखकर चलायमान हो जाय। वहाँ की मौज-शौक की सामग्री तथा वहाँ के चित्र आदि ऐसे थे, कि जिन्हें देखकर मनुष्य की विषयेच्छा जागृत हो उठे।

युवा अवस्था, रात्रि के समय एकान्त-स्थान और अपनी विवाहिता जवान-स्त्रियें पास होने पर भी जम्बूकुमार का चित्त नहीं डिगा।

: ३ :

राजगृही-नगरी से थोड़ी दूरी पर एक बरगद का झाड़ था, जिसकी छाया अत्यन्त-सघन थी। इस बरगद के झाड़ के नीचे हद दर्जे की बदमाशी का संगठन होता था। शाम होते ही, उसके नीचे एक के बाद एक मनुष्य आने लगे। इन सब ने, अपने मुँह पर नकाब पहन रखे थे और अपने शरीर पर खाकी-रंग के कपड़े ओढ़ रखे थे।

इन सब में एक विशालकाय जवान था, जिसके नेत्र बड़े-बड़े तथा लाल, एवं मुँह डरावना था। सब मनुष्यों के इकट्ठे होजाने पर वह बोला-"दोस्तो! आज तक हम लोगों ने बहुत सी चोरियें की हैं, किन्तु जितनी चाहिये उतनी सफलता कभी नहीं मिली। आज मैं एक जबरदस्त-मौका देख आया हूँ।

राजगृही नगरी के ऋषभदत्त सेठ के यहाँ विवाह है। बहुत से सेठ-साहूकार वहाँ इकट्ठे हुए हैं। यदि हमलोग अच्छी तरह हाथ मारेंगे, तो जब तक जियेंगे, तब तक चोरी करनी ही न पड़ेगी। इसलिये आज अच्छी तरह तयार रहना।"

सब बोल उठे—"हम तयार हैं! हम तयार हैं! आपकी जैसी आज्ञा हो, वैसा करने को हम सदैव तयार हैं!"

इस बड़े-भारी डील-डौलवाले मनुष्य का नाम था-प्रभव। असल में वह एक राजा का पुत्र था, किन्तु बाप ने छोटे-भाई को गादी दे दी, अतः वह नाराज होकर घर से निकल गया और चोरी-डाका आदि का पेशा करने लगा। वह इतना जबरदस्त होगया, कि उसका नाम सुनते ही मनुष्यों के होश उड़ जाते थे। वह अपने पाँच-सौ साथियों को लेकर तयार हुआ और अँधेरा होते ही शहर में दाखिल होगया। चलते-चलते वह जम्बूकुमार के मकान के

सामने आया। प्रभव के पास दो-विद्याएँ थीं। एक तो नींद डाल देने की और दूसरी चाहे जैसे ताले खोल डालने की।

वहाँ पहुँचते ही, उसने अपनी विद्याएँ आजमाईं। तत्क्षण ही सब नींद में पड़ गये और तिजोरियों के ताले टपाटप खुल गये। चोरलोगों ने, उनमें से इच्छानुसार धन लेकर गठड़ियें बाँधी।

ज्यों ही वे धन की गठड़ियें लेकर बाहर निकलने लगे, त्यों ही एकाएक रुक गये। प्रभव चारों तरफ देखने लगा। यह क्या? वहाँ उसने जम्बूकुमार को जागते देखा। यह देखकर, वह बड़े विचार में पड़ गया और सोचने लगा, कि -"इसे नींद क्यों नहीं आई?"।

जम्बूकुमार का मन बड़ा मजबूत था। इसी कारण उन पर प्रभव की विद्या का कोई प्रभाव न हुआ। जिस समय चोरलोग चोरी कर रहे थे, तब वे विचार रहे थे, कि-"मुझे धन पर कुछ भी मोह नहीं है। किन्तु यदि आज बड़ी-चोरी होगई और कल ही मैं दीक्षा लूँगा, तो लोग मुझे क्या कहेंगे? यही न, कि 'सब धन चोरी चला गया, अतः दीक्षा ले ली'। इसलिये चोरलोगों को ज्यों के त्यों तो कदापि न जाने देना चाहिये।" यह सोचकर उन्होंने पवित्र-मंत्र का जप किया, जिसके प्रभाव से सब चोर जहाँ के तहाँ खड़े रह गये।

अब तो प्रभव घबराया और हाथ जोड़कर बोला—"सेठ-जी ! मुझे प्राण-दान दीजिये। यदि आप मुझे यहाँ से पकड़-कर राजा के दरबार में पेश करेंगे, तो कोणिक राजा मुझे जान से मरवा डालेंगे। लीजिये, मैं आपको अपनी दो विद्याएँ देता हूँ। इनके बदले में आप मुझे प्राण-दान दीजिये और अपनी स्तम्भिनी-विद्या (जहाँ का तहाँ रोक देनेवाली विद्या) दीजिये।

जम्बूकुमार ने कहा—" अरे भाई ! घबराओ मत, तुम्हें मैं प्राण-दान देता हूँ। मेरे पास विद्या कुछ भी नहीं है, केवल एक धर्म-विद्या है, वह मैं तुम्हें देता हूँ। " यों कह-कर, प्रभव को उन्होंने धर्म का उपदेश दिया। उसे ऐसी बातें सुनने का अपने जीवन में यह पहला ही मौका था।

प्रभव ने धन की गठड़ियें उतरवा डालीं, नींद वापस खींच ली और हाथ जोड़कर बोला—" जम्बूकुमार! आपको धन्य है, कि धन के ढेर और अप्सराओं के समान सुन्दर-स्त्रियें छोड़कर दीक्षा ले रहे हैं। मैं तो महा-पापी हूँ और धन प्राप्त करने के लिये नीच-से-नीच रोजगार करता हूँ। किन्तु, आज मुझे अपने सारे जीवन का बिचार हो आया है। सबेरे, मैं भी सब चोरों सहित आपके साथ दीक्षा लूँगा। "

इस समय सब स्त्रियें जाग उठी थीं, वे जम्बूकुमार को दीक्षा न लेने के लिये समझाने लगीं।

एक स्त्री ने कहा–" स्वामीनाथ ! आप दीक्षा लेने को तयार तो हुए हैं, किन्तु फिर पीछे से 'बक' नामक किसान की तरह पछताओगे "।

प्रभव ने पूछा–"बक किसान की कथा क्या है, वह जरा मुझे बतलाइये तो सही "।

वह स्त्री कहने लगी, कि–"मारवाड़ में एक किसान ने अनाज की खेती की, जिसमें अनाज खूब पैदा हुआ। फिर, एक बार वह अपनी लड़की के यहाँ गया। वहाँ, उसे मालपूए खाने को मिले। मालपूए उसे बड़े स्वादिष्ट मालूम हुए, अतः उसने पूछा, कि–' यह चीज किस तरह बनती है ? ' उत्तर मिला, कि–' गेहूँ का आटा और गुड़ हो, तो यह चीज बन सकती है '।

उसने, घर आकर, खेत में पैदा हुआ सब अनाज उखाड़ डाला और उसमें गेहूँ तथा गन्ना बो दिया। किन्तु पानी के बिना ये दोनों सूख गये। भला मारवाड़ में इतना पानी कहाँ मिल सकता, कि गेहूँ और गन्ना पैदा किया जा सके ? अब तो वह बेचारा खूब पछताया। इसी तरह मिली हुई चीज खोकर, न मिलने योग्य चीज के लिये जो मिहनत करता है, उसे अन्त में पछताने का समय आता है।"

यह सुनकर, जम्बूकुमार ने जवाब दिया, कि–" मैं उस

पर्वत के बन्दर की तरह नहीं हूँ, कि भूल करके बन्धन में पड़ जाऊँ ”।

प्रभव ने पूछा, कि—“ पर्वत के बन्दर की क्या कथा है ? ”

जम्बूकुमार कहने लगे, कि—“ एक पर्वत पर एक बूढ़ा-बन्दर रहता था। वह बहुत सी बन्दरियों के साथ रहता और आनन्द करता। किन्तु एक दिन वहाँ एक जवान-बन्दर आया और उस बूढ़े-बन्दर से उसकी लड़ाई होगई। इस लड़ाई में, बूढ़ा-बन्दर हार गया और भागा।

जंगल में घूमते-घूमते, उसे बड़े ज़ोर से प्यास लगी। इसी समय, उसने शीलारस (एक प्रकार का चिकटा--पदार्थ) झरते देखा। वह समझा, कि यह पानी है। अतः उसने, उसमें मुँह डाला। किन्तु, वह तो उस रस में बिलकुल ही चिपक गया। अब क्या करे? अपना मुँह छुड़ाने के लिये उसने अपने दोनों हाथ उस रस पर दबाये और मुँह को खींचने लगा। इस प्रयत्न से, उस का मुँह उखड़ना तो दूर रहा, उलटे उसके हाथ भी उसी पर चिपक गये। इसी तरह उसने अपने पैर उस पर रखे और वे भी चिपक गये। इस कारण, वह बेचारा दुःख भोगता हुआ, मृत्यु को प्राप्त हो-गया। इसी तरह, सारे सुख-वैभव यानी ऐशआराम शीला-रस की तरह हैं। अतः उनमें चिपकनेवाला अवश्य ही नष्ट हो जाता है। ”

यह बात सुनकर एक स्त्री ने कहा, कि-" स्वामीनाथ! आप अपना ग्रहण किया हुआ विचार छोड़ते तो नहीं हैं, किन्तु, अन्त में गधे की पूँछ पकड़नेवाले की तरह आपको भी दुःखी होना पड़ेगा"।

प्रभव ने कहा, कि-" फिर वह गधे की पूँछ पकड़नेवाले की क्या कथा है?"

वह स्त्री बोली, कि-" एक गाँव में ब्राह्मण का एक लड़का रहता था। वह बड़ा ही मूर्ख था। उससे, उसकी माँ ने एक बार कहा, कि-' ग्रहण की हुई बात को फिर न छोड़ना, यह पण्डित का लक्षण है।' उस मूर्ख ने, अपनी माता का यह कथन अपने मन में धारण कर लिया। एक दिन, किसी कुम्हार का गधा घर से भागा। कुम्हार भी उसके पीछे-पीछे दौड़ा। आगे चलकर, कुम्हार ने उस ब्राह्मण के लड़के को आवाज़ दी, कि-'अरे भाई! ज़रा इस गधे को पकड़ना'। उस मूर्ख ने, गधे की पूँछ पकड़ ली। गधा अपने पिछले-पैरों से ज़ोर-ज़ोर से लातें मारने लगा, किन्तु फिर भी उस लड़के ने दुम न छोड़ी। यह देखकर, लोग कहने लगे, कि-'अरे मूर्ख! गधे की पूँछ क्यों पकड़े है? उसे छोड़ता क्यों नहीं?' यह सुनकर लड़के ने उत्तर दिया, कि-' मेरी माँ ने मुझे ऐसी शिक्षा दी है, कि पकड़ी हुई चीज़ को फिर न छोड़ना चाहिये'। इस तरह, उस मूर्ख ने खूब दुःख उठाया।"

जम्बूकुमार यह सुनकर बोले, कि–" ठीक है, तुम सब उस गधे की तरह हो। तुम्हें पकड़ रखना, यह गधे की पूँछ पकड़ रखने के समान ही भूल है। किन्तु, तुम कुलवती हो-कर ऐसी बातें करती हो, यह ठीक नहीं है। "

इस तरह स्त्रियों के साथ जम्बूकुमार का बड़ा वाद-विवाद हुआ, जिसमें जम्बूकुमार की ही विजय हुई। अन्त में सब स्त्रियें भी, उनके साथ ही साथ दीक्षा लेने को तयार होगईं।

सबेरा होते ही, जम्बूकुमार ने अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी। माँ-बाप ने, वचन दे रखा था, अतः उन्होंने बिना और कुछ कहे आज्ञा दे दी और स्वयं भी दीक्षा लेने को तयार होगये।

जम्बूकुमार की स्त्रियें, अपने-अपने माता-पिता के यहा गईं और दीक्षा लेने के लिये उनसे आज्ञा माँगी। उनके माता-पिताओं ने उन्हें आज्ञा दे दी और वे स्वयं भी दीक्षा लेने को तयार हुए।

राजा कोणिक को जब यह बात मालूम हुई, कि जम्बू-कुमार दीक्षा लेते हैं, तो उन्होंने भी जम्बूकुमार को बहुत समझाया। किन्तु जम्बूकुमार अपने निश्चय पर से ज़रा भी न डिगे।

प्रभव भी, अपने पाँच-सौ साथियों सहित दीक्षा लेने को तयार हुआ।

दीक्षा का बड़ा-भारी उत्सव मनाया गया। उस उत्सव में, जम्बूकुमार ने पाँच-सौ सत्ताइस मनुष्यों के साथ दीक्षा ली। ऐसे-ऐसे महोत्सव, पृथ्वी-तल पर बहुत ही थोड़े हुए होंगे।

जम्बूकुमार, सोलह-वर्ष की अवस्था में सुधर्मास्वामी के शिष्य हुए और संयम तथा तप से अपने मन, वचन तथा काया को पवित्र करने लगे। गुरु के पास, उन्होंने शास्त्रों का अभ्यास किया और थोड़े ही समय में तो वे सारे शास्त्रों में पारंगत होगये।

सुधर्मास्वामी के निर्वाण पधारने पर, वे उनकी गादी पर विराजे। इस तरह, जम्बूस्वामी सारे जैन-संघ के अगुआ होगये। उन्होंने, प्रभु-महावीर के उपदेशों का खूब प्रचार किया, तप और त्याग का वातावरण उत्पन्न किया, तथा अनेकों का कल्याण कर दिया।

जम्बूस्वामी को, अपना जीवन पूर्ण-पवित्र बना लेने पर, केवलज्ञान हो गया और कितने ही वर्षों के पश्चात् वे निर्वाण को प्राप्त होगये।

कहा जाता है, कि जम्बूस्वामी इस काल में अन्तिम केवलज्ञानी हुए हैं। इनके बाद, फिर कोई केवलज्ञानी नहीं हुआ।

धन्य है, अपार ऋद्धि-सिद्धि तथा भोग-विलासों को लात मारकर, सच्चे-सन्त होनेवाले जम्बूस्वामी को!

॥ ॐ शान्तिः ॥

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी :: :: पुष्प १२

अमरकुमार

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजमिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पीरमशाहरोड,
अमदावाद

अमरकुमार

: १ :

कथा प्रारम्भ करने से पहले, पञ्च–परमेष्ठि को नमस्कार। अरिहन्तों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार और लोक में रहनेवाले सब साधुजनों को नमस्कार। सच्चे–भाव से, इन पाँचों को नमस्कार करें, तो प्राणियों के सारे पाप दूर हो जायँ।

निराधारों का आधार और दुःखियों का रक्षक यह नवकार–मंत्र है। जो इसे सुनते तथा सुनाते हैं, उन दोनों का इससे कल्याण ही होता है।

हे नाथ! यह नवकार–मंत्र जिस प्रकार अमरकुमार को फला, उसी तरह सब को फले।

राजगृही–नगरी में श्रेणिक–राजा राज्य करते थे। उन्हें एक बार विचार आया, कि लाओ मैं एक सुन्दर–चित्रशाला ही बनवा डालूँ।

राजा ने देश–विदेश से सिलावट बुलवाये और बड़े चतुर–चतुर कारीगर इकट्ठे किये। थोड़े ही समय में, मकान बनकर तयार हो गया और उसमें सुन्दर चित्र बनाये गये। किन्तु इतने ही में उस चित्रशाला का मुख्य–दरवाजा टूटकर गिर पड़ा।

कारीगरलोग, फिर से काम पर लगे और बड़ी मिहनत करके दरवाजा खड़ा किया। किन्तु, वह पूरा होते ही फिर टूटकर गिर पड़ा।

कारीगरलोग, जब भी दरवाजा बनाकर तयार करते, तभी वह टूटकर गिर पड़ता। राजा परेशान होगया और सोचने लगा, कि अब क्या करना चाहिये ? अन्त में उसने हुक्म दिया, कि–" ज्योतिषी को बुलवाओ और ज्योतिष दिखलाओ, कि चित्रशाला का दरवाजा बार–बार क्यों टूट पड़ता है ? "

ज्योतिषी बुलाये गये। दरबार खचाखच भरा था। राजा और प्रजा दोनों बड़ी उत्सुकता से मार्ग देखने लगे, कि देखें ज्योतिषीजी क्या कहते हैं। ज्योतिषी ने अपना पञ्चांग निकाला और ग्रह–दशा देखी। फिर, सिर हिलाते हुए उन्होंने अपना पञ्चांग बन्द कर लिया। राजा ने कहा– " ज्योतिषीजी ! सिर क्यों हिला रहे हो ? जो कुछ हो, वह ठीक–ठीक कह क्यों नहीं देते ? "। ज्योतिषी ने फिर पत्रा खोला और ग्रह–दशा देखी। पत्रा देख चुकने पर उन्होंने

पहले ही की तरह सिर हिलाते हुए उसे फिर बन्द कर लिया। राजा फिर बोले–" ज्योतिषीजी ! सिर क्यों हिला रहे हो ? आपके ज्योतिष के हिसाब में क्या आता है ? क्या किसी देव का कोप है अथवा पृथ्वी–माता बलिदान चाहती है ? जो कुछ हो, सच–सच कह दीजिये।"

जोशी ने सोचा, कि सच्ची–बात कहनी ही पड़ेगी, बिना सत्य कहे अब निर्वाह नहीं है। अतः वे राजा से बोले –" महाराज ! चित्रशाला का दरवाजा बत्तीस–लक्षणवाला बालक माँगता है। यदि आप ऐसे बालक का बलिदान दें, तब तो चित्रशाला का दरवाजा टिक सकता है, नहीं तो कदापि नहीं।"

यह सुनकर सब डर गये। न कोई हिलता था, न डुलता। चारों तरफ सन्नाटा–सा छा गया।

राजा ने हुक्म दिया, कि–" नगर में ढिंढोरा पिटवा दो, कि जो कोई बत्तीस–लक्षणों से युक्त बालक देगा, उसे बालक के बराबर तौलकर सोने की मुहरें दी जावेंगी।"

नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया गया।

: २ :

इसी नगर में, ऋषभदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उस बेचारे को, न तो एक समय खाने भर को पूरा अनाज ही मिलता था और न पहनने–ओढ़ने की ही कुछ व्यवस्था थी। यदि सबेरे भोजन मिल जाता, तो शाम को न मिलता

और यदि शाम को मिल जाता, तो सबेरे नहीं। जब, मनुष्य के बुरे-दिन आते हैं, तो उस पर कौन-सी तकलीफ नहीं पड़ती ? बेचारा यह गरीब-ब्राह्मण, सारे दिन भिक्षा माँगकर किसी तरह अपना पेट पालता।

इस ब्राह्मण को स्त्री भी बड़ी कर्कशा मिली थी। जब ब्राह्मण सारे दिन दौड़-धूपकर घर आता, तब वह स्त्री गालियों की वर्षा-सी करने लगती। वह कहती-" हे दरिद्री! बैठा क्यों रहता है ? इन बच्चों को जिलाना तो पड़ेगा, कि नहीं ? ये चार लड़के और एक लड़की, इन पाँचों को मैं क्या खिला दूँ ? न तो घर में नमक है और न तेल। फिर घी-गुड़ की तो बात ही क्या है ? ये बेचारे बच्चे सर्दी में भी नंगे की तरह दौड़ते फिरते हैं। कभी वार-त्यौहार पर भी इन बेचारों को अच्छा भोजन नहीं मिलता ! "

बेचारा ब्राह्मण, नीचा सिर कर के यह सब सुन लेता। ब्राह्मणी फिर कहना शुरू करती-" इस परिवार के विस्तार से भी मैं हैरान हो गई। इन बच्चों की नित्य नई इच्छाएँ होती हैं। इनमें भी इस छोटे अमर ने तो मुझ को बहुत ही परेशान कर डाला है। मुझसे इसकी माँगें कभी भी पूरी नहीं पड़तीं।

अनेकों वर्ष इसी तरह व्यतीत हो गये, किन्तु इस ब्राह्मण का कुटुम्ब, जैसा का तैसा ग़रीब ही बना रहा।

एक दिन, ब्राह्मणी ने राजा श्रेणिक का वह ढिंढोरा सुना। उसने विचार किया, कि-" लाओ इस अमर को दे

ही दूँ। मेरे चार लड़कों के बजाय तीन ही लड़के थे, ऐसा समझ लूँगी। कम से कम यह हमेशा का भिखारीपन तो दूर हो।"

उसने ऋषभदत्त से कहा—" आपने, वह ढिंढोरा सुना है, जो राजा की तरफ से पिटवाया गया है? हमलोग, अपने अमर को दे क्यों न दें? उसके बराबर सोना मिल जावेगा,

स्त्री फिर बोली—" इस में विचार क्या करते हो? यह लड़का तो मुझे आँख के कंकर की तरह खटकता है। इसे राजा श्रेणिक को देकर आप तो उनसे इसके बराबर सोना तौला ही लो।"

ऋषभदत्त ने सिपाहियों से कहा, कि—" बत्तीस-लक्षणवाला सुन्दर-कुमार मैं दूँगा"।

अमरकुमार, ऋषभदत्त के समान भिखारी के यहाँ पैदा हुआ था, किन्तु फिर भी वह बत्तीस-लक्षणों से युक्त था—उसकी बोली तथा उसका रहन-सहन आदि सब को प्रिय लगते थे। किन्तु माता से पूर्व-जन्म का वैर होने के कारण, वह अमरकुमार को ज़रा भी प्रेम न करती थी।

अमरकुमार को बचपन से ही सन्त-समागम बड़ा प्रिय था। जब उसे मालूम होता, कि कोई साधु-सन्त आये हैं, तो वह सब से पहले उनके पास पहुँच जाता, और उनकी सेवा-भक्ति करते हुए, वह उनका उपदेश सुनता।

एक बार, इस नगर में एक ज्ञानी-साधु पधारे। अमर-

कुमार को जब यह बात मालुम हुई, तब वह दर्शन करने को गया। इस समय, साधु–महाराज उपदेश दे रहे थे, कि–"नवकार–मन्त्र, सब शास्त्रों का सार है। जो कोई सच्चे–भाव से इसका स्मरण करता है, उसके सारे दुःख दूर हो जाते हैं।"

उपदेश पूरा हुआ और सब श्रोतालोग जाने लगे। इसी समय, अमरकुमार उन मुनिराज के पास आया और चरणों में गिरकर वन्दन करने के पश्चात् हाथ जोड़कर पूछा, कि—"पूज्य मुनिराज ! मुझ पर दया करके, मुझे महा--मंगलकारी नवकार-मन्त्र सिखलाइये"। साधुजी ने, उसे नवकार-मन्त्र सिखा दिया।

अब, श्रेणिक राजा के सेवकलोग ऋषभदत्त के घर आये और उससे कहा, कि—"तुम अपना पुत्र लाओ और यह धन लो"।

ब्राह्मण ने कहा—"अमर ! तैयार होकर इन सिपाहियों के साथ जा"।

अमरकुमार की एक आँख से श्रावण और दूसरी से भाद्रपद की–सी झड़ी लगी थी। वह बोला–"पिताजी ! मुझे बचाओ, इन सिपाहियों को मत सौंपो"।

ऋषभदत्तने कहा, कि–"मैं क्या करूँ ? तेरी माता तुझे दे रही है, इसमें मेरा कुछ भी जोर नहीं चल सकता"।

अमरकुमार ने माता से कहा–मैया ! मुझे मत बेंचो, धन तो आज है और कल नहीं। मुझे बचाओ।"

माता ने कहा, कि–"तू अपने लक्षणों से ही मर रहा है। काम–काज तो कुछ करता नहीं और खाने को अच्छा –अच्छा चाहिये। मैं, तुझे रखकर क्या करूँ?"

अमरकुमार ने बड़ी दीन–प्रार्थना की, किन्तु माता का वज्र–हृदय जरा भी न पिघला।

वहाँ पर अमरकुमार के काका–काकी खड़े थे। उनसे अमरकुमार ने कहा–"काका ! मेरे माँ–बाप मुझे बेंचते है, अतः आप मेरी रक्षा कीजिये और मुझे अपने यहाँ रखिये"।

काका–काकी ने कहा, कि–"तेरे माँ–बाप तुझे बेंचते है, इसमें हमारा क्या ज़ोर चल सकता है? हम तुझे अपने यहाँ रखने में असमर्थ हैं"।

अमरकुमार की बड़ी बहिन वहीं पर बैठी थी। वह, बैठी–बैठी अपने नेत्रों से आँसू टपका रही थी, किन्तु वह भी क्या कर सकती थी?

अमरकुमार का हाथ पकड़कर, सिपाहीलोग उसे ले चले।

सारे ग्राम में हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे, कि–"चाण्डाल माँ–बाप ने पैसे के लोभ में आकर अपना पुत्र बेंच लिया"।

अमरकुमार, हृदय-विदारक रुदन करता हुआ जा रहा था। उसे, रास्ते में जो मिलता, उसीसे वह छुड़ा लेने की प्रार्थना करता। किन्तु, उसे कौन छुड़ा सकता था? सब यही जवाब देते थे, कि-" भाई! तेरे माँ-बाप ने तुझे धन लेकर बेंच दिया है, इसमें हम क्या कर सकते हैं?"

: ३ :

अमरकुमार को चित्रशाला में लाये और गंगाजल से स्नान करवाया। गले में फूलों की मालाएँ पहनाईं और सिर पर केसर-चन्दन का लेप किया गया। ब्राह्मणलोग, मन्त्रोच्चारण करने लगे और हवन में घृत की आहुतियें दे-देकर उसे अधिक तेज़ करने लगे।

अमरकुमार खड़ा-खड़ा विचार करता है, कि-" अरे! इस संसारमें तो सब अपने स्वार्थ के ही सगे हैं! क्या माता, क्या पिता, क्या कुटुम्ब-कबीला और क्या जाति-पाँति, किसी ने भी मुझे नहीं बचाया! अब मैं क्या करूँ?"। इतने ही में उसे याद आया, कि—" संकट से छुड़ानेवाला नवकार-मन्त्र है, तो लाओ नवकार-मन्त्र का ही जप करूँ"। यों सोचकर, उसने नवकार-मन्त्र जपना शुरू किया।

ॐ स्वाहा! ॐ स्वाहा! की ध्वनि करते हुए ब्राह्मणों ने, अमरकुमार को हवन की प्रज्वलित-अग्नि में डाल दिया। किन्तु अमरकुमार का हृदय, इस समय ईश्वर के स्मरण में

लगा हुआ था । सत्य का बल, उसके हृदय में भरा था। भला सत्य के सामने, असत्य की क्या चल सकती है? सत्य के बल के सामने साँप भी फूलमाला बन जाते हैं और अग्नि हिमालय की तरह ठण्डी हो जाती है।

सचमुच ऐसा ही हुआ । धाँय-धाँय करके जलती हुई अग्नि, बिल्कुल ठण्डी होगई और ध्यान में बैठा हुआ अमरकुमार एक योगी-सा दिखाई देने लगा। उसकी कंचन के समान काया में, कहीं ज़रा-सा भी दाग न लगा था। इसी समय राजा पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके मुँह से रक्त की धार बहने लगी। प्रकृति भी अन्याय को कब तक सहन कर सकती है?

सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे, दौड़-दौड़कर बालक के चरणों में गिर पड़े और उससे प्रार्थना करने लगे, कि-"कृपा करके राजा को फिर खड़ा कर दीजिये, जो कुछ होना था, सो तो हो ही चुका, पर आपको क्रोध करना उचित नहीं है"।

अमरकुमार बोले, कि-"सब में अच्छी बुद्धि पैदा हो और सब का कल्याण हो। मुझे, किसी पर न तो क्रोध ही है और न वैर।" यों कहकर, उन्होंने पानी की अञ्जलि भरकर राजा पर छींट दी, जिससे राजा होश में आकर उठ खड़े हुए।

राजा खड़े होते ही अमरकुमार से कहने लगे, कि–"माँगो ! माँगो ! तुम्हें जितना धन चाहिये, उतना मैं दूँगा " ।

अमरकुमार ने उत्तर दिया, कि–" मुझे धन की आवश्यकता नहीं है, यह सारा अनर्थ धन का ही परिणाम है। मैं तो अब साधु होकर अपने आत्मा का कल्याण करूँगा ।"

यों कहकर, वे नगर से बाहर थोड़ी दूरी पर जंगल में चले गये और ध्यान लगाकर वहीं खड़े हो गये ।

इधर, ऋषभदत्त और उसकी स्त्री भद्रा, दोनों गड्ढे खोद-खोदकर उनमें धन गाड़ रहे हैं और आपस में विचार करते हैं, कि अब ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे—आदि ।

इतने ही में किसीने आकर कहा, कि—" अमरकुमार तो साधु होकर वन में चला गया " । यह सुनते ही, माता पिता के होश उड़ गये । वे, चिन्ता करने लगे, कि—" अब क्या होगा ? क्या राजा यह धन पीछा ले लेंगे ?"

शाम हुई, रात हुई, सोने का समय भी हो गया, किन्तु ब्राह्मणी को नींद न आई । उसके हृदय में, अमरकुमारके प्रति क्रोध की ज्वाला जल रही थी। वह अपने मन ही मन में बड़बड़ाने लगी, कि—" इस शैतान-लड़के का क्या करना चाहिये ? हम लोग, सारी दुनिया में फजीहत हुए और अब धन भी न रहेगा ! यह कौन जानता है, कि अब क्या होगा ? अतः इस लड़के को तो खतम ही कर देना चाहिये। "

ब्राह्मणी, राक्षसी के समान विकराल–रूप धारण कर, हाथ में एक छुरी ले, आधी–रात के समय बाहर निकली।

मानों, उसके क्रोध ही के कारण, क्षण भर के लिये हवा का बहना बन्द होगया और सब जगह सन्नाटा–सा छा गया.

अमरकुमार, भयङ्कर–भूमि में ध्यान लगाकर खड़े थे। ब्राह्मणी, उन्हें ढूँढती–ढूँढती वहीं आ पहुँची। उस समय उसके क्रोध का पार न था, उसकी आँखों से अग्नि बरस रही थी। वहाँ पहुँचकर, उसने अपनी छुरी उठाई और अमरकुमार के कलेजे में घुसेड़ दी। अमरकुमार समझ गये, कि वैरिनि माता ने यह कड़ा घाव किया है। किन्तु उन्होंने अपने चित्त को स्थिर रखा।

वे, धर्म पर मरनेवाले महात्माओं का स्मरण और अन्तिम–भावना का विचार करने लगे।

"मैं सब प्राणियों से क्षमा माँगता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। संसार के सब जीव मेरे मित्र हैं, और मेरी किसी से भी शत्रुता नहीं है।"

ऐसी शुभ--भावना का ध्यान करते हुए, वे पृथ्वी पर गिर पड़े।

मानों, प्रकृति को इस छुरी के घाव की वेदना हुई हो, इस तरह उसी क्षण भयङ्कर–गर्जना सुनाई दी। यह, सिंहनी का शब्द था।

ब्राह्मणी, उस जगह से दस--कदम चली ही थी, कि सिंहनी दिखाई दी। भयङ्कर-जङ्गल में भागकर जाती कहाँ ? और सिंहनी भी सामने से क्यों हटने लगी ? फिर भी मौत आने पर उससे बचने का प्रयत्न कौन नहीं करता ? ब्राह्मणी ने भागना शुरू किया।

किन्तु सिंहनी ने एक छलांग मारी और ठीक ब्राह्मणी के ऊपर गिरी। नीचे ब्राह्मणी थी, ऊपर सिंहनी! घड़ी दो-घड़ी में ही, वहाँ उस ब्राह्मणी की केवल हड्डियें ही हड्डियें दिखाई दीं। सिंहनी, मुँह हिलाती हुई जंगल की तरफ चली गई।

अमरकुमार, शुभ--ध्यान में मरे, अतः कहा जाता है, कि वे देवलोक को गये।

पापिनी--माता, पाप--ध्यान में मरी, अतः कहते हैं, कि उसे नर्क की गति प्राप्त हुई।

आज भी, अमरकुमार की सज्झाय पढ़ी जाती है, जिसे सुनकर मनुष्यों के नेत्रों से आँसू गिरने लगते हैं।

हे नाथ ! हमलोगों को भी अमरकुमार की--सी श्रद्धा मिले और उन्ही का--सा मनोबल प्राप्त हो।

॥ ॐ शान्तिः ॥

जैन ज्योति

तंत्री :

धीरजलाल टोकरशी शाह

गूजराती भाषामें प्रकट होनेवाला यह सचित्र और कलात्मक मासिक जैन समाजमें अनोखा ही है। जैन समाज, जैन संस्कृति, साहित्य आर जैन शिल्प का बहुमूल्य लेखों इस पत्रमें प्रगट होते हैं। वार्षिक मूल्य सिर्फ रु. २–८–०। नव मास रु. २–०–०, छह मास रु. १–६–०, एक अंक चार आना। आज ही ग्राहक बनीये।

—: त्रिरंगी चित्रें :—

प्रभु महावीरकी निर्वाण भूमि जलमंदिर पावापुरीका मनोहारी त्रिरंगी चित्र.

चित्रकार : धीरजलाल टो. शाह, मूल्य ०–२–० ।

प्रभु पार्श्वनाथ को मेघमालीका उपसर्गः अत्यंत भावपूर्ण जयंतिलाल झवेरी का चित्र मूल्य ०–४–०.

ज्योति कार्यालय,

हवेली की पोल, रायपुर–अहमदाबाद.

ज्योति कार्यालयसें मिलनेवाली पुस्तकें

:: जैन ::

दर्शन और अनेकांतवाद (पं. हंसराजजी)		०-१०
हिंदी कर्मग्रंथ भा. १ से ४ (पं. सुखलालजी)		४—८
योगदर्शन और योगविंशिका	,,	१—८
नवतत्त्व-सार्थ	,,	०—६
जीवविचार ,,	,,	०—५
दंडक ,,	,,	०—४
न्यायप्रदीप (पं. दरबारीलालजी)		१—०
गृहस्थजीवन (ले० तिलकविजयजी)		१—०
परिशिष्ट पर्व दो भाग अनु०	,,	१—८
जैन दर्शन (पं. बेचरदास) अनु०	,,	१—८

:: जैनेतर ::

प्रपंच परिचय — प्रो. विश्वेश्वरजी (दर्शन संबंधी उत्तम पुस्तक)		१—०
नीति विज्ञान (धर्मकी मीमांसा)		२—४
उदयपुर राज्यका इतिहास — सं. गौरीशंकर ओझा		९—०
भारत के प्राचीन राजवंश — तीन भाग		१०—८
महाभारतकी समालोचना-तीन भाग, सं. दामोदरशास्त्री		१—८
वेदका स्वयं शिक्षक — दो भाग	,,	३—०
ब्रह्मचर्य (विस्तारपूर्वक)	,,	१—४
छूत अछूत — दो भाग	,,	१-१२
वैदिक यज्ञ संस्था — दो भाग	,,	२—०
गोमेध — तृतीय भाग	,,	१—०
संस्कृत पाठमाला २४ भागमें विस्तारपूर्वक	,,	८—०

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथमश्रेणी : : पुष्प १३

श्रीपाल

लेखकः

श्री धीरजलाल टोकरशी स्राह

अनुवादकः

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित

सर्वाधिकार—सुरक्षित

संवत १९८८ वि० } प्रथमावृत्ति { मूल्य डेढ़—आना

प्रकाशक :
ज्योति-कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अ ह म दा बा द.

मुद्रक :
चीमनलाल ईश्वरलाल महेता.
" व सं त मु द्र णा ल य "
घीकांटारोड :: अ ह म दा बा द.

श्रीपाल

: १ :

नवपदजी, सब का कल्याण करें। उनकी आराधना का जैसा फल श्रीपाल तथा मैनासुन्दरी को मिला, वैसा ही सब को प्राप्त हो।

अंगदेश में, चम्पा नामक एक नगरी थी। उसमें सिंहरथ नामक एक राजा राज्य करते थे, जिनकी रानी का नाम था-कमलप्रभा। इनके बड़ी अवस्था में एक कुमार पैदा हुआ, जिसका नाम रक्खा गया—श्रीपाल।

श्रीपाल जब छोटा-सा था, तभी राजा की मृत्यु होगई। रानी बहुत शोक करने लगीं, किन्तु प्रधान ने उन्हें धीरज दिया और बाल-राजा की दुहाई चारों तरफ फिरवा दी। किन्तु श्रीपाल का काका अजीतसेन बड़ा चालाक था, अतः उसने षड़यन्त्र रचकर सेना को अपनी तरफ फोड़ लिया। अधिकारियों को भी अपनी तरफ मिला लिया और रानी तथा कुमार का वध कर डालना निश्चित किया।

रानी को जब इस चालाकी का पता लगा, तो आधी-रात के समय वह राजकुमार को लेकर भागी। चारों तरफ अजीतसेन के सिपाही फैले हुए थे, अतः रानी ने सीधा जंगल का मार्ग ग्रहण किया।

कैसा भयावना है वह जंगल ? उसमें मानों झाड़ पर झाड़ लगे हों, ऐसी घनी झाड़ी, काँटाँ और झंखाड़ का पार ही नहीं; भीतर कहीं चीते की आवाज सुनाई देती है, तो कहीं सिंह दहाड़ रहा है। किन्तु आखिर करे क्या ? अपना प्राण बचाने को रानी ऐसे जंगल में होकर भी भागती जा रही थी। बेचारी ने घर से बाहर कभी पैर भी न रखा था, किन्तु आज भयङ्कर-वन में अकेली ही घूमना पड़ रहा है। उसके पैरों म से खून बहने लगा। और सारे कपड़े फट गये ?

दूसरे दिन का सबेरा हुआ। इस समय जंगल भी पूरा होने आया था। यहाँ पहुँचकर श्रीपाल ने कहा, कि—" माँ ! भूख लगी है, अतः दूध, शकर और चाँवल मुझे दो"। कमलप्रभा बिलख-बिलखकर रोता हुई बोली, कि-" बेटा ! दूध, शकर, तथा चाँवल के और हमारे बीच में हजारों-कोस की दूरी पड़ गई। अब तो जुआर बाजरी की राबड़ी ही मिल जाय, तो उसे भी परमात्मा की दया समझनी चाहिये।"

कुमार भूखा है, रानी के पास खाने को कुछ भी नहीं है, ऐसी ही दशा में वे एक कोढ़ियों के झुण्ड के पास पहुँचे।

सात-सौ कोढ़ियों का एक झुण्ड, जिनके शरीरों पर भयङ्कर कोढ़ थी और हाथों-पैरों की उँगलियें नहीं थी। उनके पास पहुँचकर रानी ने उनसे कहा, कि—"भाइयो! विपत्ति के मारे हम तुम्हारे पास आये हैं, अतः तुम हमें सहारा दो"। यों कहकर, रानी ने सब सच्ची बात कह सुनाई। कोढ़ियों ने उत्तर दिया, कि—"माताजी! हमें सहायता देने में कुछ भी आपत्ति नहीं है, किन्तु जो भी कोई हमारे साथ रहेगा, उसे भयङ्कर-कोढ़ हो जावेगी"। रानी ने फिर कहा, कि—"जो कुछ होना होगा वह होगा, किन्तु अभी तो हमें अपने प्राण बचाने दो"।

कोढियों ने अपने झुण्ड में उन्हें मिला लिया और रानी को एक सफेद चादर ओढ़ा दी। इसी समय राजा अजीतसेन के सिपाही ढूँढते-ढाँढते वहाँ पहुँचे और उन्होंने कोढियों से पूछा, कि-"तुम लोगों ने किसी स्त्री और एक कुमार को इधर से भागते हुए देखा है क्या?"। कोढियों ने उत्तर दिया, कि-"हमें इस विषय में कुछ भी मालूम नहीं है और न हमने किसी को इधर से जाते ही देखा है"। सिपाहीलोग चले गये और रानी तथा कुमार बच गये।

कोढ़ियों ने, भूखे कुँवर को खाने को दिया। कुँवर की भूख तो दूर होगई, किन्तु कोढ़ियों का अन्न खाने से उसे उम्बर जाति का कोढ़ हो गया। जिस तरह, उम्बरा [वृक्ष विशेष] के तने की छाल फटी हुई होती है, उसी तरह श्रीपाल कुँवर का शरीर फट गया। सब ने, उसका नाम रख दिया–उम्बर राणा !

माता से यह सब कैसे देखा जा सकता था ? रास्ते में किसी ने बात की, कि–" कौशाम्बी में एक वैद्य रहते हैं, वे चाहे जैसी कोढ़ हो, दूर कर देते हैं "। यह सुनकर, रानी कौशाम्बी के लिये चल दी और सब कोढ़ियों से कह दिया, कि–" तुम लोग उज्जैन जाकर ठहरना, मैं तुम्हें वहीं आकर मिलूँगी "।

कोढ़ियों का दल, उज्जैन की तरफ चल दिया।

: २ :

उस समय, उज्जैन में प्रतिपाल नामक एक राजा राज्य करते थे। उनके दो कन्याएँ थीं। एक का नाम था सुरसुन्दरी और दूसरी का मैना। इन दोनों को राजा ने खूब पढ़ाया–लिखाया। फिर, एक दिन परीक्षा करने के लिये उन्हें राज–सभा में बुलवाया।

राजा ने दोनों कन्याओं से पूछा, कि–" बोलो, तुम आपकर्मी हो या बापकर्मी ? " सुरसुन्दरी ने कहा–

"बापकर्मी" और मैना ने उत्तर दिया, कि–"आपकर्मी"। राजा सुरसुन्दरी पर बड़े प्रसन्न हुए और मैना पर नाराज। उन्होंने सुरसुन्दरी का विवाह एक राजा के कुँवर से कर दिया और मैना के लिये बुरे–से–बुरा वर ढूँढने का विचार किया।

राजा नगर से बाहर घूमने निकले। वहाँ कोढ़ियों का वह दल उन्हें दिखाई दिया। जिन्हें देखते ही देखनेवालों को घृणा हो, ऐसे कोढ़ियों के झुण्ड में से राजा ने उम्बर–राणा को पसन्द किया और मैना का विवाह उसी के साथ कर दिया। फिर राजा ने कहा, कि–"लड़की! अब अपना आपकर्मीपन बतलाना"। मैना ने उत्तर दिया कि—"बड़ी खुशी से पिताजी! जो मुझमें कुछ अपनापन होगा, तो दुःख टलकर निश्चय ही मैं सुखी हो जाऊँगी। नहीं तो आपका दिया हुआ कितने क्षण ठहरेगा?"

मैना और उम्बर–राणा दोनों चले। मैना ने कहा —"स्वामीनाथ! गाँव में गुरुराज पधारे हैं। वे निराधारों के आधार और दुःखीजनों के रक्षक हैं।" यह सुनकर उम्बर राणा मैना के साथ उनके दर्शन करने गये। भक्तिभाव से दर्शन कर चुकने के बाद, मैना ने पूछा, कि–"हे गुरु महाराज! कृपा करके कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मेरे स्वामी का रोग दूर हो और उनका शरीर अच्छा हो जाय"।

गुरु ने कहा, कि–" नव अम्बिल करो और नवपदजी की आराधना करो। यदि सच्चे भाव से यह आराधना करोगे, तो नख में भी रोग न रहेगा।"

दोनों ने, अम्बिल–व्रत करना शुरू किया। ज्यों ही एक, दो और तीन अम्बिल–व्रत पूरे हुए, त्यों ही शरीर में फिर से अच्छापन आने लगा और पूरे नौ अम्बिल होते ही तो, सारा रोग दूर होगया। अब, श्रीपाल का शरीर सोने की तरह स्वच्छ होगया। उन सात–सौ कोढ़ियों ने भी ऐसा ही किया और उनके रोग भी दूर होगये।

अब मैनासुन्दरी के हर्ष की कोई सीमा ही न रही। जब कमलप्रभा को यह बात मालूम हुई, तो वह रास्ते से वापस लौट आई और उज्जैन में आकर उन सब से मिली।

गाँव ही में, मैनासुन्दरी का मामा रहता था। उसे जब यह बात मालूम हुई, तो वह गाजे–बाजे से इन तीनों को अपने घर लिवा लाया और बड़ा आदर–सत्कार करके, उन्हें रहने के लिये अलग राजमहल दिये।

: ३ :

एक बार श्रीपाल कुँवर घोड़े पर बैठकर, गाँव में घूमने निकले। वहाँ, एक मनुष्य ने उँगली का इशारा करके कहा, कि–" ये घोड़े पर बैठकर राजा के जमाई

जा रहे हैं"। श्रीपाल ने ये शब्द सुने, तो उनके हृदयमें यह विचार आयाः—

उत्तम निज गुण से सुने, मध्यम बाप गुणेन।
अधम ख्यात मामा गुणे, अधमाधम ससुरेण॥

अर्थात्--जो अपने गुणों के कारण पहचाने जाते हैं, वे उत्तम-मनुष्य हैं। जो पिता के गुणों के कारण पहचाने जाते हैं, वे मध्यम हैं। जो मामा के गुणों के कारण मशहूर होते हैं, वे अधम हैं और जो ससुराल के नाम से पहचाने जाते हैं, वे अधम से भी अधम यानी सब से गिरे हुए माने जाते हैं।

"मुझे धिक्कार है, कि मैं ससुराल के नाम से पहचाना जाता हूँ! अच्छा, अब मुझे ससुर के गाँव में न रहना चाहिये"। यों सोचकर वे घर आये और माता तथा स्त्री से इज़ाज़त माँगी, कि-"परदेश जाकर मैं धन कमाऊँगा और उसके बल से अपना राज्य वापस लौटाऊँगा, अतः आपलोग स्वीकृति दीजिये"। माता और स्त्री को भला यह बात अच्छी तो क्यों लगती? किन्तु सब बातें अपनी इच्छा के अनुसार ही कब होती हैं? एक वर्ष में वापस लौट आने का वादा करके, श्रीपाल कुमार चल दिये।

ग्राम नगर और नदी नालों को पार करते हुए वे एक पहाड़ के पास पहुँचे। वहाँ, जंगल में एक मनुष्य

विद्या की साधना कर रहा था । उसे एक ऐसे अच्छे मनुष्य की आवश्यकता थी, जो उसकी साधना में सहायता पहुँचा सके । वह मनुष्य, यदि चतुर न हो, तो विद्या की साधना ठीक हो नहीं सकती, अतः उसने श्रीपाल से अपने पास रहने की प्रार्थना की । श्रीपाल, वहाँ कुछ दिन ठहर गये, जिससे उस मनुष्य की वह विद्या सिद्ध होगई । इससे प्रसन्न होकर, उस मनुष्य ने श्रीपाल को दो विद्याएँ सिखलाईं । एक के होने पर मनुष्य पानी में नहीं डूबता और दूसरी के प्रभाव से शरीर पर किसी हथियार की चोट नहीं लगती ।

श्रीपाल कुमार यहाँ से भी चलदिये। चलते चलते, वे भडौंच के बन्दरगाह पर पहुँचे । वहाँ धवलसेठ नामक एक जबरदस्त व्यौपारी पाँच-सौ जहाजों में माल भरकर विदेश-यात्रा को तयार था। श्रीपाल को, दूसरे देशों में भ्रमण करने की बड़ी इच्छा थी, अतः सौ स्वर्ण-मुहर प्रति-मास किराया देने की शर्त करके वे जहाज में बैठ गये ।

वायु के अनुकूल होने पर जहाज चल दिये ।

: ४ :

जहाज में, विशेषज्ञ लोग बैठे नक्शे और किताबें देखते हैं, नाविकलोग अपनी पतवारें चलाते हैं, ध्रुवतारा देखनेवाले ध्रुवतारा देखते हैं, निशान पहचाननेवाले

पानी की गहराई नापते हैं, कुलीलोग माल जमा-जमा-कर रखते हैं, हवा के जानने वाले हवा की गति देखते हैं, पहरा देनेवाले पहरा देते हैं, पालवाले पाल और उसकी डोरियें सम्हालते हैं, हलकारेलोग दौड़-दौड़कर सब काम-काज करते हैं और जहाज बीच समुद्र में चले जा रहे हैं।

इतने ही में, एक हवा का जाननेवाला बोला, कि-"सेठजी! पवन धीरे-धीरे बहती है और सामने ही बब्बरकोट नामक बन्दरगाह दिखाई दे रहा है। वहाँ, थोड़ी देर के लिये जहाजों के लंगर डलवा दीजिये, तो जिन्हें मीठा-पानी और ईंधन लेना हो, वे ले लें।" धवलसेठ ने हुक्म दिया, कि—"बब्बरकोट बन्दरगाह पर जहाजों के लंगर डाल दिये जावें"।

जहाज, बब्बरकोट बन्दर पर ठहरे। वहाँ राजा के सिपाहियों ने महसूल माँगा। धवलसेठ ने कहा, कि—"महसूल काहे का? हमें यहाँ कौन-सा व्यापार करना है, जो तुम्हें महसूल दें?"। इस बात पर बड़ी तकरार हुई, किन्तु धवलसेठ न माने। अब तो राजा ने अपनी सेना भेजी, जिसने आकर धवलसेठ को पकड़ लिया और उन्हें एक वृक्ष में उलटे लटका दिया। श्रीपाल ने सोचा, कि-"सेठ ने यह बुरा काम किया, जो महसूल नहीं दिया। अब ये तो जान से मारे ही जावेंगे, साथ ही सब जहाज

भी जब्त हो जायँगे।" यों सोचकर, लश्कर के सामने आ, उसे ललकारते हुए वे बोले, कि–"खबरदार! धवलसेठ का बाल भी अगर छू लिया, तो खैरियत मत समझना! अभी तुम लोगों ने श्रीपाल की तलवार का मज़ा नहीं चखा है!" यों कहकर, वे सेना की तरफ झपटे।

भारी युद्ध मच गया, किन्तु श्रीपाल के शरीर में, उस विद्या के प्रभाव से चोट ही न पहुँचती थी। सेना के मनुष्य धड़ाधड़ जमीन पर गिरने लगे। थोड़ी ही देर में तो सारा लश्कर छिन्न–भिन्न होगया। श्रीपाल ने धवलसेठ को छुड़ा लिया। धवलसेठ ने अपना जीवन बचाने के बदले में, आधे जहाज श्रीपाल को दे दिये।

बब्बरकोट के राजा को जब इस पराक्रमी–पुरुष का पता चला, तो उसने इनका बड़ा स्वागत–सत्कार किया और अपनी कन्या श्रीपाल को विवाह दी।

अब धवलसेठ ने श्रीपाल से कहा, कि–"श्रीपालजी! रत्नद्वीप अभी बहुत दूर है और यहाँ रुकने से नुकसान होगा, अतः शीघ्र ही बिदाई लीजिये"। श्रीपाल ने, अपनी स्त्री के साथ बिदाई ली। अब तो जहाज चल दिये और थोड़े ही समय में वे रत्नद्वीप बन्दर पर जा पहुँचे।

यहाँ पहुँचकर, धवलसेठ अपना तथा श्रीपाल का

किराना बेंचने लगे और श्रीपाल आस-पास का देश देखने लगे। वहाँ पास ही एक पहाड़ था। उस पहाड़ पर एक मन्दिर था, जिसके किंवाड़ इस तरह बन्द होगये थे, कि वे किसी के खोले खुलते ही न थे। वहाँ के राजा ने यह निश्चय कर रखा था, कि जिससे ये किंवाड़ खुलेंगे, उसको मैं अपनी कन्या विवाह दूँगा। श्रीपाल से वे किंवाड़ खुल गये, अतः राजा ने अपनी कन्या उन्हें विवाह दी।

धवलसेठ ने अपने तथा श्रीपाल के किराने को बेंचा और वहाँ से नया माल खरीदकर जहाजों में भर लिया। अब तो जहाज पीछे लौट पड़े।

श्रीपाल अपनी दोनों स्त्रियों के साथ, जहाज के सब से ऊँचे भाग की खिड़की में बैठकर समुद्र की सैर देखते और आनन्द करते हुए जा रहे थे।

इधर, धवलसेठ विचारने लगे, कि-"यह श्रीपाल खाली-हाथ आया था, उसके आज इतनी बड़ी सम्पत्ति होगई है। यही नहीं, दो-दो सुन्दर-स्त्रियों से उसने अपना विवाह भी कर लिया। अहा! वे स्त्रियें कैसी सुन्दरी हैं! यदि मैं श्रीपाल को समुद्र में फेंक दूँ, तो ये दोनों स्त्रियें और यह सारा धन मुझे ही प्राप्त हो जाय!"

यों सोचकर, धवलसेठ ने श्रीपाल के साथ, बड़े

प्रेम से बातें करना शुरू कर दिया। फिर, एक बार जहाज के किनारे पर मचान बँधवाया और धवलसेठ ने उस पर चढ़कर आवाज़ दी, कि–"श्रीपालजी! यहाँ आइये, जल्दी आइये! यदि देखना हो, तो यहाँ एक बड़ा अच्छा कौतुक है!" श्रीपाल कुमार के मन में, दगे की बू भी न थी, अतः वे उस मचान पर चढ़ आये। धवलसेठ ने एक धक्का मारा, जिससे श्रीपाल समुद्र में गिर पड़े।

समुद्र में, काला–भँवर पानी, जिसमें मकान इतनी ऊँची–ऊँची तरङ्गें उठती थीं। उसमें मगर तथा अन्यान्य भयङ्कर–प्राणी बाहर की तरफ मुँह निकालते थे। श्रीपालजी ने, श्री नवपदजी का ध्यान किया और समुद्र में तैरने लगे।

जलतरणी विद्या के प्रताप से, वे तैरते–तैरते कोंकण-देश के किनारे जा पहुँचे। यहाँ तक पहुँचने में, वे थककर चूर होगये थे, अतः पास ही के जंगल में एक चम्पे के झाड़ के नीचे जाकर सोगये।

: ६ :

कोंकण देश के राजा की एक कन्या जवान होगई, जिसके लिये वर की बड़ी ढूँढ–खोज हो रही थी। किन्तु कहीं भी अच्छा–वर न मिलता था, अतः ज्योतिषी को बुलाकर उनसे ज्योतिष दिखवाया। ज्योतिषी भी पूरे–

ज्योतिषी थे, अतः उन्होंने कहा, कि–"अमुक वार तथा अमुक तिथि को अमुक समय समुद्र के किनारे पर जाना, वहाँ एक प्रतापी–पुरुष मिलेगा, उसी को अपनी कन्या विवाह देना"।

आज, ठीक वही तिथि और वही दिन था, अतः राजा के सिपाही समुद्र के किनारे आ पहुँचे। वहाँ आकर देखते हैं, कि चम्पे के झाड़ के नीचे एक महा–प्रतापी पुरुष सो रहा है।

श्रीपाल कुमार जब जागे, तो उन्हें अपने आसपास सिपाहियों का झुण्ड दिखाई दिया। सिपाहियों ने श्रीपाल को प्रणाम करके कहा, कि–"आप राजमहल को पधारिये, आपको राजा की तरफ से निमन्त्रण है"।

श्रीपाल राजमहल को गये। राजा उन्हें देखकर बड़े प्रसन्न हुए और अपनी कन्या का विवाह उनसे कर दिया। फिर राजा ने उन्हें एक ओहदा दिया, कि सभा में जो कोई नया–मनुष्य आवे, उसे पान का बीड़ा दें।

: ७ :

श्रीपाल के समुद्र में गिरते ही, धवलसेठ ने नीच-प्रयत्न करना शुरू किया। उसने उन दोनों सतियों का सत् लूटने की बड़ी कोशिसें कीं, किन्तु सफल न हो सका।

श्रीपाल की दोनों स्त्रियें, जिनेश्वर–देव का स्मरण करती हुई अपना समय व्यतीत करती थीं।

यों करते-करते धवलसेठ के जहाज, कोंकणदेश के किनारे पर पहुँचे। वह एक बड़ी-भेंट लेकर राजा के यहाँ गया। वहाँ दरबार में जाकर बैठते ही, श्रीपाल ने उसे पान का बीड़ा दिया।

यह देखकर, धवलसेठ बड़े आश्चर्य में पड़ गया। वह विचारने लगा, कि—"यह मेरा दोस्त यहाँ कैसे आगया? मैंने इसे समुद्र में फेंक दिया था, फिर भी जीवित ही निकल आया? अच्छा, मुझे इसके लिये कोई दूसरी ही तरकीब करनी पड़ेगी।"

"श्रीपाल तो हलके-कुल का मनुष्य है" यह प्रमाणित करने को उसने बड़े-बड़े प्रपंच रचे। किन्तु अन्त में पाप का घड़ा फूट गया और राजा को यह बात किसी तरह मालूम होगई, कि धवलसेठ महा-पापी है। अतः राजा ने धवलसेठ को प्राणदण्ड देने का विचार किया। किन्तु श्रीपाल के चित्त में यह बात आई, कि—"चाहे जो हो, किन्तु धवलसेठ आखिर तो मेरे आश्रय-दाता ही हैं। उन्हें ऐसा दण्ड न मिलने देना चाहिये।" उन्होंने, धवलसेठ को छुड़ाया और अपना मिहमान बनाया।

श्रीपाल ने धवलसेठ पर बड़ी कृपा की, किन्तु धवलसेठ के मन में से ज़हर दूर नहीं हुआ था। उन्होंने, कहीं से एक पालतू चन्दन-गोह प्राप्त की और रात्रि के

समय उसकी पूँछ में रस्सो बाँधकर, उसे श्रीपाल के महल की दीवार पर फेंकी। वह गोह, लोहे के कीले की तरह दृढ़ होकर वहीं चिपट गई। अब धवलसेठ ने उस रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ना प्रारम्भ किया। जब वे आधो–दूर पहुँचे, तो हाथ में से वह डोरी खिसक गई, जिसके कारण वे धम से पत्थर पर आ गिरे और तत्क्षण उनके प्राण–पखेरू उड़ गये।

धवलसेठ की सारी सम्पत्ति, उनके मित्रों को सौंप दी गई।

: ८ :

राजा की एक कुमारी ने, यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं अपना विवाह उसी मनुष्य से करूँगी, जो मुझे वीणा बजाने में हरा दे। श्रीपाल ने, उसे वीणा बजाने में जीत-कर, उसके साथ भी विवाह कर लिया।

एक अद्भुत–रूपवाली राजकुमारी ने, अपना स्वयं-वर रचवाया था। श्रीपाल वहाँ पहुँचे और वरमाला उन्हीं के गले में डाली गई।

एक राजा की लड़की ने, यह निश्चय किया था, कि अमुक दोहे की पूर्ति करनेवाले मनुष्य के साथ ही मैं अपना विवाह करूँगी। उस दोहे की पूर्ति श्रीपाल ने करके, उस कन्या से अपना विवाह कर लिया।

एक राजा की कन्या को, ज़हरी–साँप का विष चढ़ा था। श्रीपाल ने ज़हर दूर कर दिया, अतः राजा ने प्रसन्न होकर यह कन्या उन्हें ही विवाह दी।

एक जगह उस व्यक्ति के साथ कन्या का विवाह करना तय हुआ था, जो राधावेध साधे। श्रीपाल ने राधा-वेध साधा और उस कन्या से भी अपना विवाह कर लिया।

इस तरह परदेश में आठ–स्त्रियों से विवाह कर, तथा बहुत–सा धन एकत्रित करके, श्रीपाल अपनी बड़ी–भारी सेना लेकर उज्जैन के पास आ पहुँचे।

उज्जैन के राजा ने समझा, कि कोई बड़ा–भारी राजा चढ़ आया है, अतः वह सामने चलकर शरण में आया। श्रीपाल, अपनी माता तथा मैना से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। आनन्दोत्सव का प्रारम्भ हुआ।

वहाँ, एक नाटक–मण्डली नाटक करने लगी। सभी पात्र अपना–अपना पार्ट आनन्दपूर्वक कर रहे थे, किन्तु एक नटी खड़ी न हुई।

उस नटी के नेत्रों में से, आँसुओं की धारा बह रही थी। जाँच करने पर, सब हालात ठीक–ठीक मालूम होगये। वह नटी और कोई नहीं, स्वयं उज्जैन के राजा

की पुत्री सुरसुन्दरी ही थी। उसका पति, अपने शहर को जाते हुए मार्ग में ही लूट लिया गया। डाकुओं ने सुरसुन्दरी को पकड़कर बेंच लिया और अन्त में उसे यह रोज़गार करने की नौबत आ पहुँची।

राजा को, आपकर्मीपन तथा बापकर्मीपन की परीक्षा होगई।

: ९ :

अब, श्रीपाल अपना राज्य लेने के लिये सेना लेकर शुभ मुहूर्त में चल पड़े। जब चम्पा नगरी थोडी ही दूर रह गई, तो उन्होंने यह सन्देश कहला भेजाः—

"राजा अजीतसेन को मालूम हो, कि आपका पुत्र श्रीपाल—जिसे आपने होशियार होने के लिये परदेश भेज दिया था—अब आगया है। आप, अब बूढ़े हो चुके हैं, अतः राज्य उसे सौंपकर धर्मध्यान कीजिये।"

अजीतसेन ने यह बात नहीं मानी, जिसके फल-स्वरूप बडा भयङ्कर-युद्ध हुआ। इस लडाई में अजीतसेन हार गये और श्रीपाल राजगद्दी पर बैठे। काका ने उन पर जो-जो अत्याचार किये थे, उन्हें भूलकर, श्रीपाल ने उनको एक सम्मानपूर्ण-पद दिया।

श्रीपाल ने अपने राज्य में, रिआया को बड़ा सुख पहुँचाया और श्री नवपदजी का बड़े ठाट-बाट से उत्सव किया।

समय आने पर, अजीतसेन को वैराग्य हुआ, अतः उन्होंने दीक्षा लेकर पवित्र-जीवन व्यतीत किया।

राजा श्रीपाल तथा मैनासुन्दरी आदि रानियें भी, उच्च-जीवन व्यतीत करके अन्त में सद्गति को प्राप्त होगईं।

आज भी, श्री नवपदजी का जप होता है और सब के मुँह से श्रीपाल-महाराज का नाम बोला जाता है। धन्य है पराक्रमी-पुरुषों को और धन्य है सच्चे-भाव से श्री नवपदजी की आराधना करनेवालों को !

शिवमस्तु सर्वजगतः।

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी • • पुष्प १४

कुमारपाल

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

संवत १९८८ वि. } प्रथमावृत्ति { मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
श्रीरजलाल टोकरशी शाह,
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पोरमशाहरोड,
अ म दा वा द

कुमारपाल

: १ :

सुन्दर हरा-भरा गुजरात देश, जिस पर महा-प्रतापी सिद्धराज-जयसिंह राज्य करते थे। उन्हें और तो सब प्रकार से सुख, किन्तु एक बात का बड़ा दुःख था। वह यह, कि उनके कोई सन्तान न थी। वे चिन्ता करने लगे, कि ऐसा फला-फूला गुजरात का राज्य किसके हाथ में जावेगा? उन्होंने ज्योतिषी को बुलवाया और ज्योतिष दिखलाया। ज्योतिषी ने कहा, कि "महाराज! आपकी गादी का उपभोग कुमारपाल करेंगे।

यह सुनकर, सिद्धराज बड़े दुःखी हुए। वे मन में विचारने लगे, कि-" कुमारपाल हलके-कुल में

पैदा हुआ है, अतः किसी भी तरह उसे गादी पर न बैठने देना चाहिये। वह तभी तो गादी पर बैठेगा, जब कि जीवित रहेगा? तो मैं अभी से उसे क्यों न मरवा डालूँ?" यों सोचकर, वे कुमारपाल को मार डालने का मौक़ा ढूँढने लगे।

: २ :

कुमारपाल देथली के स्वामी त्रिभुवनपाल के पुत्र थे। उनकी स्त्री का नाम था–भोपालदे। उनके दो भाई थे, जिनमें से एक का नाम महिपाल और दूसरे का कीर्तिपाल था। दो बहनें थीं, जिनमें से हक प्रेमलदेवी और दूसरी देवलदेवी कही जाती थीं। प्रेमलदेवी का विवाह, सिद्धराज के एक सामन्त कृष्णदेव के साथ और देवलदेवी का साँभर के राजा अर्णोराज के साथ हुआ था।

कुमारपाल को जब यह बात मालूम हुई, कि महाराजा–सिद्धराज की मुझ पर क्रूर–दृष्टि है और वे मुझे मार डालने का मौक़ा ढूँढ रहे हैं, तब उन्होंने परदेश जाने का विचार किया। इतने ही में, सिद्धराज ने उनके पिता का वध करवा डाला।

इस हत्या का समाचार पाते ही कुमारपाल समझ गये, कि अब मेरी बारी है। अतः वे अपने परिवार को वहीं छोड़कर, रातोरात भाग चले।

कुमारपाल, बाबाजी का वेश करके, एक स्थान से दूसरे स्थान में भ्रमण करने लगे। किसी दिन खाने को मिल जाता और किसी दिन भूखे ही रहना पड़ता। यों करते-करते, इसी वेश में वे एक बार पाटण आये और वहाँ एक महादेव के मन्दिर में पुजारी नियुक्त होगये।

राजा को जब इस बात की कुछ खबर लगी, तो उसने अपने पिता के श्राद्ध का बहाना करके, सब पुजारियों को भोजन करने बुलाया। उधर, कुमारपाल को यह बात मालूम होगई, कि मुझे मार डालने के लिये ही यह जाल रचा गया है। अतः उल्टी (कै़) का बहाना बनाकर, वे बाहर आगये। वहाँ से केवल पहनी हुई धोती लिये हुए, उनसे जितना भागा गया, उतना भागने लगे। सिर नंगा, पैर भी नंगे, शरीर खुला हुआ और ऊपर से दोपहर की गर्मी। किन्तु कर ही क्या सकते थे? यदि भागने में ज़रा भी देर होजाय, तो सिद्धराज के सिपाही वहाँ आ पहुँचें और उन्हें अकाल-मृत्यु से मरना पड़े।

सिद्धराज को जब यह बात मालूम हुई, कि कुमारपाल निकल गये, तो उन्हें पकड़ लाने के लिये कुछ घुड़सवार भेजे।

कुमारपाल, जब भागते-भागते दो-एक कोस दूर निकल गये, तब पीछे-से घोड़ों की टापों की आवाज़ सुनाई दी। उन्होंने विचारा, कि-"अब दौड़ने से काम नहीं चलेगा, कहीं थोडी देर के लिये छिप रहना चाहिये"। यों सोचकर, उन्होंने इधर-उधर देखा, तो भीमसिंह नामक एक किसान काँटों की बाड़ लगाता हुआ दिखाई दिया। कुमारपाल उसी के पास गये और उससे अपना प्राण बचाने की प्रार्थना की। उस किसान को कुमारपाल पर दया आगई, अतः उसने इन्हें काँटों के ढेर के नीचे छिपा दिया।

थोड़ी ही देर में, पैरों के निशान ढूँढते हुए राजा के सिपाही वहीं आ पहुँचे। उन्होंने, भाले मार-मारकर काँटों का ढेर ढूँढ लिया, किन्तु कुछ भी पता न लगा। अतः ढूँढना छोड़कर, वे वापस घर को लौट गये।

रात के समय, भीमसिंह ने कुमारपाल को बाहर निकाला। उनका शरीर काँटों के लगने से लहू-लुहान होगया था, जिसके कारण अपार पीड़ा होती थी। किन्तु यहाँ ठहरने का समय न था, अतः उन्होंने बड़े सबेरे उठकर फिर भागना शुरू कर दिया। भूखे-पेट और दुःखपूर्ण शरीर से भागते-भागते, वे

खूब थक गये। दोपहर के समय, वे एक झाड़ के नीचे आराम करने बैठे। वहाँ, उन्होंने एक बड़ा-विचित्र खेल देखा। एक चूहा, एक के बाद एक करके इक्कीस-रुपये अपने बिल में से बाहर लाया और फिर वापस उसी तरह लेजाने लगा। ज्यों ही वह एक रुपया लेकर बिल में गया, त्यों ही शेष बीस-रुपये कुमारपाल ने उठा लिये। चूहे ने बाहर आकर देखा, कि रुपये नहीं हैं, तो वह सिर पटक-पटककर वहीं मर गया। यह दृश्य देखकर, कुमार-पाल बड़े दुःखी हुए और विचारने लगे, कि—"अहो! इस प्राणी को भी धन पर कितना मोह है?"। यह धन लेकर, वे आगे चले। यह तीसरा दिन था, किन्तु अब तक उन्हें खाने को कुछ भी न मिला था। वे इस समय थककर चूर-चूर हो रहे थे। ऐसे ही समय में, श्रीदेवी नामक एक महिला बैलगाड़ी में बैठकर, अपनी ससुराल से पीहर को जारही थी। कुमारपाल को दुःखी देखकर उसे दया आई, अतः उसने इन्हें खाने को दिया। इस भोजन से कुमारपाल को कुछ शान्ति मिली। उन्होंने उस बहिन से कहा, कि—"बहिनजी! मैं कभी भी आप का उपकार न भूलूँगा"।

यहाँ से चलकर, कुमारपाल अपने ग्राम देथली को गये। सिद्धराज को यह हाल मालूम होते ही, उन्होंने अपनी सेना भेजी। इधर कुमारपाल को भी सेना के आने की बात मालूम होगई, अतः वे अपने लिये छिपने को जगह ढूँढने लगे। उस समय, सज्जन नामक कुम्हार ने, उन्हें अपने आँवे में छिपा दिया। राजा की फौज को कुमारपाल का पता न लगा, अतः वह निराश होकर वापस लौट गई।

: ४ :

कुमारपाल, यहाँ से अपने कुटुम्ब को मालवे की तरफ भेजकर, खुद परदेश में घूमने निकल गये। वहाँ, वोसिरी नामक एक ब्राह्मण से मित्रता होगई। वह ब्राह्मण, गाँव में से भिक्षा माँगकर लाता और कुमारपाल को खिलाता था। किन्तु यह दशा भी अधिक दिनों तक न रही। कुछ दिनों के बाद वोसिरी का भी साथ छूट गया, जिससे कुमारपाल को बड़ा कष्ट होने लगा। वे, घूमते–घूमते फटेहाल होकर, भूख की पीड़ा सहते और कष्टों से परेशान होते हुए खम्भात पहुँचे।

यहाँ श्री हेमचन्द्राचार्य नामक एक जैन–आचार्य थे। उनका ज्ञान अगाध और चारित्र्य बड़ा निर्मल

था। उन्होंने, कुमारपाल के लक्षणों को देखकर जान लिया, कि भविष्य में यह गुजरात का राजा होगा। अतः उन्होंने खम्भात के मंत्री उदायन के यहाँ कुमारपाल को आश्रय दिलवाया।

यह हाल मालूम होते ही, सिद्धराज का लश्कर कुमारपाल को ढूँढने वहाँ भी आ पहुँचा।

सेना ने वहाँ पहुँचकर उदायन के मकान की तलाशी लेना शुरू की, अतः कुमारपाल वहाँ से निकल कर उपाश्रय में आये और एक पुस्तकों के भण्डार में छिप गये। सेना के सिपाही उपाश्रय में भी आ धमके, किन्तु कुमारपाल का पता न लगा, अतः वापस लौट गये।

यहाँ, श्री हेमचन्द्राचार्य ने कुमारपाल से कहा, कि–"अब तुम्हारे दुःख के दिन अधिक नहीं हैं, थोड़े ही दिनों के बाद तुम्हें गुजरात का राज्य मिल जावेगा"। कुमारपाल अपनी दशा का ध्यान करके बोले, कि–"गुरु महाराज! यह बात कैसे मानी जा सकती है?"। तब आचार्य महाराज ने उन्हें ऐसा ही होने का विश्वास दिलाया, जिसे सुनकर कुमारपालने कहा, कि–"यदि आपका वचन सत्य होजायगा, तो मैं जैनधर्म का पालन करूँगा"। इसके बाद, उदायन

मंत्री से कुछ राह खर्च लेकर, कुमारपाल दक्षिण की तरफ को चल दिये।

इस तरह, बड़ी दूर–दूर भ्रमण करके, कुमारपाल अपने कुटुम्ब से मिलने मालवा को चले गये। वहाँ पहुँचने पर उन्हें मालूम हुआ, कि सिद्धराज मृत्यु–शय्या पर पड़े हैं। अतः वे अपने कुटुम्ब को लेकर गुजरात में आये।

: ६ :

सिद्धराज, मृत्यु–शय्या पर पड़े थे। वहीं पड़े–पड़े उन्होंने उदायन मंत्री के पुत्र चाहड को गोद लिया। वे यह व्यवस्था कर रहे थे, कि राज्य कुमारपाल को न मिलकर चाहड को मिले। किन्तु इसी बीच में उन की मृत्यु होगई। यह समाचार सुनते ही, कुमारपाल पाटण आये। राज–सभा कुमारपाल की योग्यता जानती ही थी, अतः उसने इन्हें ही गादी दे दी। कुमारपाल जिस समय गादी पर बैठे, उस समय उनकी अवस्था पचास–वर्ष की थी।

कुमारपाल को गादी मिलते ही, उन्होंने अपने सब उपकारी मनुष्यों को याद किया। भोपालदे को अपनी पटरानी बनाई, भीमसिंह को अपना शरीर–रक्षक बनाया। श्रीदेवी के हाथ से अपना राज्यतिलक

करवाया और धोलका गाँव उन्हें इनाम में दे दिया। सज्जन को सात–सौ गाँवों का सूबा बनाया और वोसिरी को लाट देश का हाकिम बना दिया। उदायन–मंत्री को अपना प्रधान बनाया और उनके लड़के वाग्भट्ट को नायब दीवान नियुक्त किया। श्री हेमचन्द्राचार्य को अपने गुरु के स्थान पर स्थापित किये।

: ६ :

कुमारपाल के गादी पर बैठने के बाद, उनके अधीन राजाओं ने यह मान लिया, कि वे निर्बल हैं। अतः किसी ने कर देने से इनकार कर दिया और किसी–किसी ने उपद्रव करना शुरू किया। किन्तु कुमारपाल बड़े बहादुर थे। उन्होंने अपनी मज़बूत–सेना के द्वारा अजमेर के अर्णोराजा को अपने वश में किया। मालवे के बल्लालों को अपना मातहत बनाया और कोंकण के मल्लिकार्जुन को भी हराकर अपने वश में कर लिया। इसी तरह सोरठके समरसिंह को भी अपने अधीन कर लिया और दूसरे अनेक छोटे–मोटे राजाओं को जीतकर अपने वश में किया। अब, कुमारपाल ने अठारह–देशों में अपनी दुहाई फिरवाई।

कुमारपाल के राज्य की सीमा, उत्तर में पंजाब तक, दक्षिण में विन्ध्याचल तक, पूर्व में गंगा नदी तक और पश्चिम में सिन्धु तक थी। इनके बराबर

राज्य-विस्तार, गुजरात में किसी भी राजा ने नहीं किया।

कुमारपाल, अपने गुरु श्री हेमचन्द्राचार्य की बड़ी भक्ति करते और प्रत्येक कार्य में उनकी सलाह लेतें थे। गुरुराज भी ऐसे थे, कि राजा को ठीक-ठीक सलाह देते और वही करते, जिससे राजा का कल्याण हो।

कुमारपाल ने, इन्हीं गुरुराज के कहने से, बाँझ-मनुष्यों का धन लेना बन्द कर दिया। उनकी, केवल लगान की ही आमदनी प्रति-वर्ष ७२ लाख रुपये थी। अपने शासन के अन्तर्गत, अठारहो देशों में जीवहिंसा न करने का हुक्म दिया। सोमनाथ-महादेव के मन्दिर को ठीक करवाया और दूसरे अनेक छोटे-बड़े मन्दिर तथा प्रजा के लिये उपयोगी स्थान बनवाये।

तारंगा, इडर, धंधुका वगैरह के मन्दिर इन्हीं के बनवाये हुए हैं।

कुमारपाल के राज्य में, दुष्काल का कहीं नाम भी न था और न चोर-डाकुओं का भय ही था। सब लोग आनन्दपूर्वक सुख करते थे। अठारहो-राज्य, आपस में मेल करके रहते और शिकार की बन्दी होने के कारण, पशु-पक्षी भी निर्भय होकर विचरते थे।

कुमारपाल, दिन-दिन अपना जीवन पवित्र करने लगे और अन्त में उन्होंने अपने मन, वचन तथा काया को अत्यन्त-पवित्र बना लिया, जिससे वे राजर्षि कहे जाने लगे।

उनके किये हुए शुभ-कार्यों की संक्षिप्त-गणना यों है:—

१४०० जिन-मन्दिर बनवाये, १६०० पुराने टूटे-फूटे मन्दिरों का उद्धार करवाया। सात-बार तीर्थ-यात्रा की, जिसमें पहली-यात्रा में नौलखी पूजा करी। निर्वंश मरनेवालों का धन लेना बन्द किया और प्रति-वर्ष एक करोड़ रुपया शुभ-मार्ग में खर्च किया। २१ ज्ञानभण्डार बनवाये और लाखों-ग्रन्थ लिखवाये। ७२ सामन्तों पर अपनी आज्ञा चलाई और अठारह-देशों में पूर्णरूपेण अहिंसा पलवाई।

तीस-वर्ष तक इस राजर्षि ने राज्य किया और इतने समय में सब जगह सुख-शान्ति फैलाई तथा प्रजा की बड़ी तरक्की की। कुछ दिनों के बाद, उनके गुरुराज की देह छूट गई, अतः वे बड़े दुःखी हुए। इस शोक का उनके शरीर पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अब, उनकी अवस्था भी ८१ वर्ष की हो चुकी थी, अतः वे भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

कुमारपाल के समान राजा और श्री हेमचन्द्राचार्य के समान गुरु इस जमाने में और कोई नहीं हुए। इन दोनों की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है।

कुमारपाल के समान बहुत से राजा हों और जैन-धर्म की विजय-पताका फहरावें।

शिवमस्तु सर्वजगतः ॥

—: तिरंगे-चित्र :—

प्रभु महावीर की निर्वाणभूमि जलमंदिर पावापुरी का मनमोहक तिरंगा चित्र.

चित्रकार धीरजलाल टो. शाह, मूल्य ०-२-० ।

प्रभु पार्श्वनाथ को मेघमाली का उपसर्गः अत्यंत भावपूर्ण जयंतीलाल झवेरी का चित्र. मूल्य ०-४-०.

ज्योति-कार्यालय,

हवेली की पोल, रायपुर-अहमदाबाद.

जैन ज्योति

सम्पादक—

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

गुजराती भाषा में प्रकाशित होनेवाला यह सचित्र और कलामय मासिक जैन समाज में अनोखा ही है। जैन समाज, जैन संस्कृति, साहित्य और जैन शिल्प के बहुमूल्य—लेख इस पत्र में प्रकाशित होते हैं। वार्षिक मूल्य सिर्फ रु. २—८—०। नव मास रु.२—०—०, छह मास रु. १—६—०, एक अंक के चार आने। आज ही ग्राहक बनिये।

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम-श्रेणी :: :: पुष्प १९

पेथड़कुमार

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय अहमदाबाद

संवत १९८८ वि० | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
धीरजलाल टोकरशी शाह,
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पोरमशाहरोड,
अ म दा वा द

पेथड़कुमार

: १ :

नीमाड़ प्रदेश के नांदूरी नामक ग्राम में पेथड़कुमार नामक एक श्रावक रहते थे। इनके पिता देदाशाह बड़े मालदार थे। किन्तु ज्यों ही उनकी मृत्यु हुई, त्यों ही सब धन धीरे-धीरे नष्ट हो गया, जिससे पेथड़कुमार बड़ी बुरी दशा में आ पड़े। इस समय उन्हें न तो पेट भरकर भोजन ही मिलता था और न पहनने को ठीक कपड़े ही। ज्यों-त्यों करके वे अपना गुजर करते थे। इनके पद्मिनी नामक एक स्त्री थी, और झाँझण नामक एक पुत्र। तीनों मनुष्य बड़े भले और धर्म के बड़े प्रेमी थे।

एक बार ग्राम में कोई विद्वान-मुनिराज पधारे, अतः

सब उनका उपदेश सुनने को गये; साथ ही पेथड़कुमार भी गये। वहाँ मुनि–महाराज ने अमृत के समान मीठी–वाणी से पवित्र–जीवन समझाया। "ब्रह्मचर्य का पालन करो, सन्तोष धारण करो, तप से शरीर तथा मन पर संयम प्राप्त करो, भगवान की भक्ति से हृदय को पवित्र बनाओ- आदि"। इस उपदेश का बहुत लोगों पर प्रभाव हुआ। किसी ने ब्रह्म-चर्य का व्रत लिया, किसी ने एक सीमा तक सम्पत्ति रखकर शेष अच्छे–कामों में खर्च कर डालने का व्रत लिया, किसी ने तप करने का व्रत लिया और किसी ने और–और व्रत लिये। उस समय बेचारे पेथड़कुमार अपने दुःखी–जीवन का विचार करते हुए बैठे रहे।

फटे कपड़ों से बैठे हुए पेथड़कुमार को देखकर कुछ मसखरों ने कहा, कि—"गुरु महाराज! सब को तो आपने कुछ न कुछ व्रत करवा दिया, किन्तु यह पेथड़ तो रह ही गया। इसे परिग्रह (धन–माल) की सीमा करवा दीजिये। यह भी, लाख–वर्षों में लखपती होजाने के क़ाबिल है।"

यह सुनकर मुनिराज बोले, कि—"महानुभावो! ऐसा बोलना ठीक नहीं है। धन का अभिमान तो कभी किसी को करना ही न चाहिये। धन तो आज है और कल नहीं। कौन कह सकता है, कि कल सबेरे ही पेथड़कुमार तुम सब से अ-धिक धनवान न होजायगा?"

फिर साधुजी ने पेथड़कुमार से कहा, कि—"महानुभाव! तुम परिग्रह की सीमा करलो"। पेथड़कुमार ने उत्तर दिया, कि—"गुरुदेव! मेरे पास कुछ भी धन-माल है ही कहाँ, जो मुझे सीमा करने की आवश्यकता पड़े?"। मुनिराज ने कहा, कि—"आज तुम्हारी यह दशा है, किन्तु कल ही तुम अच्छी-हालत में हा सकते हो। अतः तुम्हें परिग्रह की सीमा तो कर ही लेनी चाहिये।" पेथड़कुमार ने मुनिराज की यह बात मान ली, अतः साधुजी ने उन्हें यह व्रत करा दिया, कि—"पाँच-लाख रुपये तक की सम्पत्ति रखकर, शेष सब धर्म के कार्यों में खर्च कर डालूँगा"।

पेथड़कुमार को उस समय ऐसा जान पड़ा, कि—"परिग्रह की यह सीमा तो बहुत भारी है। मुझे तो पाँच-हजार रुपये के भी दर्शन होना कठिन मालूम होता है, तो पाँच-लाख की स्वतन्त्रता कैसे ठीक होसकती है? किन्तु गुरुजी ने जो यह सीमा बनवाई है, तो बहुत सोच-विचारकर ही बनवाई होगी।" यों सोचते हुए वे अपने घर चले गये।

पेथड़कुमार की दशा, दिन-दिन ख़राब होने लगी। यहाँ तक, कि दोनों समय खाने को भी बड़ी मुश्किल से मिलने लगा। अतः परेशान होकर, वे अपना ग्राम छो. अपने कुटुम्ब को साथ लिये हुए परदेश को चल दिये।

इस समय मालवे का माँडवगढ़ एक ज़बरदस्त शहर था। वहाँ हजारों धनी-मानी लोग रहते थे, जो करोड़ों का व्यापार करते थे। पेथड़कुमार ने विचारा, कि मुझे माँडवगढ़ जाना चाहिये, वहाँ मैं आसानी से अपना निर्वाह कर सकूँगा। यों सोचकर, वे माँडवगढ़ आये।

यहाँ आकर, बाप-बेटे ने घी की दूकान कर ली। आस-पास के ग्रामों की गवलिनें घी बेंचने आती थीं, उनसे खरीदकर, उसे ये अपनी दूकान पर बेंचते थे। बाप-बेटा दोनों ही वचन के सच्चे और नीयत के अच्छे थे। उनकी दूकान पर चाहे बच्चा आवे या बुड्ढा, सब को एक ही भाव दिया जाता था। इसके अतिरिक्त, माल में वे कुछ मेल भी न करते थे। जैसा माल बतलाते थे, वैसा ही देते थे। इसी कारण थोड़े ही दिनों में उनकी अच्छी साख जम गई।

एक बार, एक गवलिन घी की मटकी लेकर पेथड़कुमार की दूकान पर आई और पूछा, कि—“ सेठजी ! आपको घी चाहिये क्या ? ”। पेथड़कुमार ने घी लेकर देखा, तो वह बड़ा ही सुगन्धित और दानेदार था। उन्होंने गवलिन से कहा, कि—“ हाँ, मैं लूँगा ”। गवलिन ने अपना बर्तन पेथड़कुमार को सौंप दिया और वे उसमें से घी निकाल-निकाल-कर तौलने लगे। पेथड़कुमार उस बर्तन में से घी निकालते ही

जाते थे, किन्तु उसमें का घी कम न होता था। यह देखकर उन्होंने विचारा, कि अवश्य ही इस बर्तन में कोई करामात है। अतः उन्होंने बर्तन को ऊपर उठाया। ऊपर उठाते ही उन्हें उसके पेंदे में एक बेल की गोल चुमली दिखाई दी। पेथड़-कुमार समझ गये, कि निश्चय ही यह चित्राबेली है। उसके अतिरिक्त और किसी चीज़ से बर्तन में घी नहीं बढ़ सकता। यों सोचकर, उन्होंने गवलिन से उस चुमली सहित घी का बर्तन खरीद लिया। अपने दाम पाकर गवलिन चली गई और पेथड़कुमार तथा झाँझण बड़े प्रसन्न हुए।

: २ :

ग़रीब पेथड़कुमार का भाग्य थोड़े ही दिनों में पलट गया और अब उन्हें खूब धन मिलने लगा। अब ये दोनों बाप–बेटे लोगों को बड़े चतुर मालूम होने लगे और सब लोग उनकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। वहाँ के राजा जयसिंह ने भी यह प्रशंसा सुनी। अतः उन्होंने इन दोनों बाप–बेटों को बुलवाया और इनकी चतुराई की परीक्षा की। परीक्षा लेने पर राजा को भी यह विश्वास होगया, कि ये दोनों बड़े चतुर हैं। उन्होंने पेथड़कुमार को अपना प्रधान और झाँझण को नगर का कोतवाल बनाया।

पुराने प्रधान को पेथड़कुमार से ईर्ष्या हुई, कि यह आज

-कल में आया हुआ बनिया माँडवगढ़ का प्रधानमंत्री कैसे होगया ? अतः उसने राजा के सामने यों चुगली की, कि —" महाराज ! इस पेथड़कुमार के पास चित्राबेली है। वह आपके बड़े काम की चीज़ है। यदि वह आपके पास हो, तो आपका भण्डार कभी खाली ही न हो।" राजा ने, पेथड़कुमार को बुलाकर इस विषय में पूछताछ की। पेथड़-कुमार ने सब बातें ठीक-ठीक बतला दीं और फिर राजा से कहा, कि—" महाराज, आज से वह चित्राबेली आपकी भेंट है "। यह सुनकर राजा बडे प्रसन्न हुए।

पेथड़कुमार-मंत्री ने प्रजा के बहुत से कर कम करवा दिये और प्रजा को अधिक से अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न किया।

एक बार वे थोड़े दिनों की छुट्टी लेकर यात्रा को गये। जीरावला पार्श्वनाथ की यात्रा करके आबू पहुँचे। आबू के सुन्दर-मन्दिर देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

आबू-पहाड़ पर अनेक प्रकार की वनस्पतियें और जड़ी-बूटियें होती हैं। कहा जाता है, कि पेथड़कुमार को यहाँ से एक ऐसी वनस्पति प्राप्त हुई, जिससे सोना बनाया जासकता था। भाग्यशाली की बलिहारी है, कि चित्राबेली हाथ से जाते ही स्वर्ण-सिद्धि प्राप्त होगई।

: ३ :

एक बार नगर में एक विद्वान-आचार्य पधारे । पेथड़कुमार ने उन्हें भक्तिपूर्वक वन्दना करके पूछा, कि—"गुरुदेव ! मेरे पाँच-लाख रुपये रखने की सीमा है, किन्तु धन उससे बहुत अधिक है । अतः आप बतलाइये, कि मैं उसे किस काम में खर्च करूँ ?" मुनिराज बोले, कि—"महानुभाव ! इस समय मन्दिरों का बनवाना सब से अच्छा काम है, अतः तुम अपना धन उसी में लगाओ"। पेथड़कुमार को यह बात ठीक मालूम हुई, अतः उन्होंने अठारह-लाख रुपये खर्च करके माँडवगढ़ में एक भव्य-मन्दिर बनवाया। देवगिरि में एक सुन्दर जैन-मन्दिर तयार करवाया और फिर भिन्न-भिन्न स्थानों पर बहुत से मन्दिर बनवाये । कहा जाता है, कि उन्होंने सब मिलाकर चौरासी मन्दिर बनवाये थे ।

पेथड़कुमार को अपने धर्म-बन्धुओं से बड़ा प्रेम था । उन्हें जब कोई भी स्वधर्मी मिल जाता, तो वे बड़े प्रसन्न हो उठते । ऐसे समय में यदि वे घोड़े पर बैठे होते, तो नीचे उतरकर उस स्वधर्मीबन्धु का सम्मान करते थे । अपने धर्म-बन्धुओं की आर्थिक-स्थिति सुधारने के लिये उन्होंने गुप्त-दान भी बहुत दिये ।

: ४ :

उन्होंने बत्तीस-वर्ष की अवस्था में, अपनी स्त्री सहित ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया और उसे ऐसी शुद्धता तथा दृढ़ता से पाला, कि उनका बड़ा विचित्र-प्रभाव पड़ने लगा। मनुष्य, रोग-शोक से पीड़ित हों और उनका कपड़ा ओढ़ लें, तो वे रोग-शोक मिट जावें।

एक बार, जयसिंह की रानी लीलावती को बड़े जोर से बुखार आया, जिससे शरीर में जलन होने लगी। अनेकों उपाय करने पर भी उसे किसी तरह ठण्डक न पहुँची। इसी समय एक दासी ने पेथड़कुमार का वस्त्र लाकर, रानी को ओढ़ा दिया। यह वस्त्र ओढ़ते ही रानी को शान्ति प्राप्त होगई। शान्ति मिलते ही उसे नींद आगई।

यह देखकर एक चुगलखोर-दासी ने राजा से कहा, कि-"लीलावती, प्रधान को प्रेम करती है, यही कारण है कि उनका वस्त्र ओढ़कर सो रही है"।

राजा, यह सुनकर बड़े नाराज़ हुए और मंत्री को पकड़-कर कैद कर दिया तथा रानी को जंगल में लेजाकर मार डालने का हुक्म दे दिया। राजा के एक दम ऐसा हुक्म देने पर, सब को बड़ा आश्चर्य हुआ।

जल्लाद लोग लीलावती को लेकर जंगल में गये, किन्तु उसे मारने को उनकी हिम्मत न पड़ी, अतः यों ही छोड़ दी। रानी, वेश बदलकर शहर में फिर लौट आई। झाँझण-कुमार ने चतुरतापूर्वक उसे अपने घर में छिपा लिया।

: ५ :

एक बार राजा के हाथी को शराब अधिक पिला दी गई, जिससे वह पागल होगया। थोड़ी देर उपद्रव कर चुकने के बाद, वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। राजा को अपने प्यारे–हाथी की यह दशा देखकर, बड़ा दुःख हुआ। अनेकों उपाय करने पर भी हाथी की दशा न सुधरी। इसी समय उस दासी ने कहा, कि—"महाराज! यदि पेथड़कुमार का वस्त्र मँगवाकर हाथी को ओढ़वाइये, तो वह अवश्य ही अच्छा होजाय"। राजा ने ऐसा ही किया और हाथी उठ खड़ा हुआ। इसके बाद दासी ने वह सब बात कह सुनाई, कि किस तरह रानी को बड़े जोर का बुखार चढ़ आया था, जिससे मैंने उन्हें यह वस्त्र ओढ़ाया था–आदि।

यह सुनकर, राजा को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पेथड़-कुमार को जेल से छोड़ दिया और उनसे अपनी भूल के लिये माफी माँगी। अब राजा जयसिंह को लीलावती की याद

आई, जिससे वे बड़ा शोक करने लगे। यह देखकर पेथड़-कुमार ने कहा, कि—"महाराज ! मैं थोड़े ही समय में रानी लीलावती को आपसे ला मिलाऊँगा, आप ज़रा भी शोक न कीजिये"। जयसिंह को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ, कि रानी लीलावती अभी जीवित ही है। फिर, पेथड़कुमार ने जो कुछ सुना था, वह सब राजा से कह सुनाया। राजा ने लीलावती को मँगवाकर, उससे अपने अपराध के लिये क्षमा माँगी और फिर सुख से रहने लगे।

: ६ :

अब पेथड़कुमार को वृद्धावस्था आनी शुरू हुई। इस समय, उनका मन अधिक पवित्र तथा अधिक सेवाभाववाला बन गया। उन्होंने सिद्धाचलजी की यात्रा के लिये संघ निकालने का इरादा किया।

बहुत-बड़ा संघ अपने साथ लेकर, उन्होंने सिद्धाचल (शत्रुंजय) की यात्रा की और वहाँ श्री आदिनाथ-भगवान की बड़ी भक्ति की। यहाँ से वे गिरनार गये। वहाँ एक सज्जन से स्पर्द्धा की बातचीत होजाने के कारण, इन्होंने ५६ मन सोना बोलकर इन्द्रमाल पहनी।

यह यात्रा करके, पेथड़कुमार वापस माँडव लौट आये। वहाँ उन्होंने अपने जाति-भाइयों की बड़ी मदद की। अनेकों लेखक बिठाकर, बहुत-सी पुस्तकें भी लिखवाईं, जिनसे बड़े-बड़े सात-भण्डार भर गये।

अब पेथड़कुमार अपना अधिकांश समय प्रभु-भक्ति में ही बिताने लगे। वे, सबेरे-शाम प्रतिक्रमण करते और तीन-बार ईश्वरपूजा करते। यों करते-करते, उन्हें यह जान पड़ा कि अब मेरा मरणकाल नज़दीक है, अतः उन्होंने तीर्थङ्कर-देव का ध्यान धर लिया और शान्तिपूर्वक अपनी आयु पूर्ण की।

सारा माँडवगढ़, मंत्रीश्वर के इस मरण से दुःखी हो उठा। झाँझणकुमार के दुःख की तो कोई सीमा ही न थी। इस शोक को दूर करने के लिये, उन्होंने शत्रुंजय का एक महान-संघ निकाला। इस संघ में बारह-हजार गाड़ियें और पचीस-हजार पीठ पर सामान ले चलनेवाले लोग थे। बहुत से मुनि-महात्मा भी इस संघ में थे। संघ के चौको-पहरे के लिये ही दो-हजार सिपाही साथ थे।

यह बाप-बेटे की जोड़ी धर्म-भावना से परिपूर्ण थी। उन्होंने अपने उच्च-जीवन तथा अपार-सम्पत्ति से जैन-धर्म को चमकाया था। ऐसे अनेकों रत्न जैन-समाज में पैदा हों और संसार में शान्ति तथा प्रेम की स्थापना करें।

शिवमस्तु सर्वजगतः

जैन ज्योति

सम्पादक–

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

गुजराती भाषा में प्रकाशित होनेवाला यह सचित्र और कलामय मासिक जैन समाज में अनोखा ही है। जैन समाज, जैन संस्कृति, साहित्य और जैन शिल्प के बहुमूल्य–लेख इस पत्र में प्रकाशित होते हैं। वार्षिक मूल्य सिर्फ रु. २–८–०। नव मास रु.२–०–०, छह मास रु. १–६–०, एक अंक के चार आने। आज ही ग्राहक बनिये।

—: तिरंगे-चित्र :—

प्रभु महावीर की निर्वाणभूमि जलमंदिर पावापुरी का मनमोहक तिरंगा चित्र.

चित्रकार धीरजलाल टो. शाह, मूल्य ०-२-० ।

प्रभु पार्श्वनाथ को मेघमाली का उपसर्गः अत्यंत भावपूर्ण जयंतीलाल झवेरी का चित्र. मूल्य ०-४-०.

ज्योति-कार्यालय,

हवेली की पोल, रायपुर-अहमदाबाद.

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम-श्रेणी :: :: पुष्प १६

विमलशाह

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ वि०	प्रथमावृत्ति	मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
धीरजलाल टोकरशी शाह,
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्रो. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पोरमशाहरोड,
अ म दा वा द

विमलशाह

: १ :

गुजरात के प्रथम राजा वनराज हुए हैं, जिन के सेनापति लाहिर नामक एक श्रावक थे। वे बड़े प्रतापी और बहादुर थे। उनकी नस-नस में क्षत्रिय का रक्त बहता था। उनके, वीर नामक एक पुत्र हुआ। वह भी बड़ा साहसी और शूरवीर तथा धर्म पर बड़ा प्रेम रखनेवाला था।

इस लड़के का विवाह वीरमती नामक एक कन्या से हुआ। इसी वीरमती के उदर से एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम रखा गया—विमल।

विमल, बत्तीस-लक्षणों से युक्त बालक था। वह दूज के चन्द्रमा की तरह दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। जब वह पाँच-वर्ष का होगया, तो पिता ने उसे पाठशाला में पढ़ने को भेजा। वहाँ थोड़े ही दिनों में वह खूब पढ़-लिखकर अपने

घर को वापस लौट आया। अब पिता ने समझ लिया, कि पुत्र बड़ी उमर का हो चुका है, अतः उन्होंने घर का सारा भार विमल पर डाल दिया और स्वयं दीक्षा लेकर चल दिये। चलते समय उन्होंने विमल को शिक्षा दी, कि—" बेटा! निडर बनना और जिन-भगवान की आज्ञा अपने सिर चढ़ा कर मानना "। विमल के जीवन पर इस उपदेश का बड़ा प्रभाव पड़ा।

: २ :

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों विमल का विकास प्रत्येक तरह से अधिक होता गया। उसके शत्रु, यह देख-देखकर मन ही मन खूब जलते तथा डाह करते थे। माता वीरमती को जब यह बात मालूम हुई, तो वे विचारने लगीं, कि—"विमल के शत्रु इस शहर में बहुत हैं, अतः जबतक वह सयाना न होजाय, तबतक मुझे कहीं दूसरी जगह जाकर रहना चाहिये "। यों सोचकर, वे अपने साथ विमल को ले, अपने पीहर को चली गईं।

उनके पीहर में बड़ी गरीवी थी। यहाँ तक, कि जब घर के बूढ़े-मनुष्य भी मिहनत-मजदूरी करते, तब खाने का गुजर चलता था। इसी कारण वीरमती के भाई को वीरमती तथा विमल का आना अच्छा न मालूम हुआ। किन्तु बहिन को नाहीं कैसे करी जासकती थी?

अतः उनका आदर-सत्कार किया। वीरमती तथा विमल वहीं रहने लगे।

: ३ :

पाटण के वीर-मंत्री का पुत्र विमल, अब गरीबी में पलने लगा। वह किसी-किसी समय खेत में जाता और मामा को खेती के काम में मदद देता। कभी घोड़ी-बछेड़ा अथवा गाय-भैंस लेकर जंगल में जाता और वहाँ उन्हें घास चराता। उसे न तो ऐसे काम करने से इनकार ही था और न कुछ अफसोस ही होता। उलटा इस काम में उसे बड़ा आनन्द आता।

जब वह जंगल में जाता, तो तीर-कमान खेलता, घोड़े पर सवारी करता, झाड़ों पर चढ़ता और तालाब में तैरता था। दिन भर इसी तरह आनन्द लूटकर शाम को वह अपने घर लौट आता।

इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने के कारण, विमल का शरीर बड़ा हृष्ट-पुष्ट होगया। बाण-विद्या में तो वह अद्वितीय था। धीरे-धीरे उसकी बाण-विद्या की प्रशंसा सब जगह होने लगी।

: ४ :

पाटण के नगरसेठ श्रीदत्त के, श्री नामक एक जवान-कन्या थी। इस कन्या के लिये वे योग्य-वर की तलाश कर रहे थे। उन्होंने, अनेकों स्थान देखे, किन्तु कहीं भी वर

पसन्द न पड़ा। इतने ही में उन्होंने विमल की प्रशंसा सुनी, अतः उसी के साथ अपनी कन्या की सगाई कर दी।

विमल के मामा अब विचारने लगे, कि—" इसके विवाह का खर्च कहाँ से आवेगा ?"

वीरमती सोचने लगीं, कि—" विमल का विवाह मेरे परिवार को शोभा दे, वैसा करना चाहिये। यह, लाहिर मंत्री का पौत्र है।" किन्तु भाई की स्थिति ध्यान में थी, अतः उन्होंने निश्चय किया, कि—" जबतक काफी धन न मिले, तबतक विमल का विवाह न करूँगी "। फिर विमल को बुलाकर उससे कहा, कि—" बेटा ! जब मुझे धन मिलेगा, तभी मैं तेरा विवाह करूंगी "। विमल ने, शान्तिपूर्वक यह सुन लिया।

दूसरे दिन ढोरों को लेकर विमल जंगल में गया। वहाँ एक झाड़ के नीचे बैठकर वह चिन्ता करने लगा, कि—" अब मुझे धन प्राप्त ही करना पड़ेगा। क्या करूँ ? मुझे किस तरह धन प्राप्त हो सकता है ?" यों विचार करते-करते उसने अपने हाथ में की लकड़ी पास ही की एक दरार में घुसेड़ी, कि त्यों ही धम-धम ढेले टूट पड़े। विमल, उन ढेलों को दूर करके देखता है, तो भीतर सोने की मुहरों का एक घड़ा दिखाई दिया। यह देखते ही उसके आनन्द की कोई सीमा न रही। वह घड़े को घर लाया और वीरमती के

चरणों में उसे रख दिया। वीरमती यह देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और थोड़े दिनों में ही उसने विमल के विवाह की तिथि निश्चित करवाई। इसके बाद परिवार को शोभा देने योग्य खूब धूमधाम से विमल का विवाह हुआ और श्रीदेवी घर आई।

विमल और श्रीदेवी, दोनों की समान जोड़ी थी। कोई भी एक, दूसरे से कम न था।

विमल अब ऐसा नहीं रह गया था, कि उसे शत्रु से डरना पड़े। अतः वह मामा का घर छोड़कर पाटण आया। यहाँ आकर उसने अपना भाग्य आजमाना शुरू किया।

एक दिन वह बाजार में होकर जा रहा था। वहाँ राजा के सिपाहीलोग निशानेबाजी कर रहे थे। अच्छे-अच्छे योद्धाओं ने निशाना ताका, किन्तु कोई भी ठीक न मार सका। यह देखकर विमल हँसने लगा और ज़ोर से बोला, कि—"वाह! सैनिकलोग हैं तो बड़े-बहादुर! महाराजा भीमदेव का जाता हुआ राज्य बचा लेने के काबिल ही हैं"। यह सुनकर सैनिकलोग बहुत चिढ़े। इसी समय महाराजा-भीमदेव भी वहीं आ पहुँचे। उन्होंने भी निशाना मारा, किन्तु वे भी चूक गये। अतः विमल ने हँसकर कहा, कि—"मालूम होता है, यहाँ सब नौसिखिये ही नौसिखिये इकट्ठे

हो रहे हैं। इन लोगों के हाथ में राज्य की बागडोर है, किन्तु ये क्या शासन कर सकते हैं ? "

ज्यों ही भीमदेव के कान पर ये शब्द पड़े, त्यों ही वे चौंक उठे। उन्होंने विमल से पूछा, कि—" सेठ ! क्या तुम बाण–विद्या जानते हो ? यदि जानते हो, तो इस तरफ आओ "। विमल ने उत्तर दिया, कि—" बाण–विद्या तो आपके समान क्षत्रियलोग जानें, हम तो व्यौपारी कहे जाते हैं, हमको भला वह क्यों आने लगी ? "

यह सुनकर भीमदेव जान गये, कि यह मनुष्य अवश्य कोई बड़ा जानकार है, इसकी बाण–विद्या देखनी चाहिये, कि यह उसमें कितना निपुण है। यों विचारकर, उन्होंने फिर विमलसे कहा, कि—" सेठ ! विद्या तो जो प्राप्त करे उसकी है। तुम्हें यदि बाण–विद्या आती हो, तो बतलाओ। " विमल ने कहा, कि—" यदि आपको बाण–विद्या देखनी ही हो, तो एक बालक को जमीन पर सुलाओ और उसके पेट पर नागरबेल के एकसौआठ पान रखवाओ। इन पानों में से आप जितने कहें, उतने पान मैं बाण से छेद दूँ। ऐसा करते हुए, उस बालक को ज़रा भी चोट न पहुँचेगी। आप जितने कहें, उससे यदि एक भी पान कम या ज्यादा होजाय, तो आप की तलवार है और मेरा सिर। अथवा यदि आप कहें, तो दही मथती हुई स्त्री के कान का हिलता हुआ आभूषण छेद दूँ। ऐसा करते समय, यदि उस

स्त्री के गाल को ज़रा भी चोट पहुँचे, तो आपको जो उचित प्रतीत हो, वह कीजियेगा।"

यों कहकर, विमल ने अपनी बाण-विद्या बतलाई, जिसे देखकर राजा भीमदेव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने विमल को पाँच-सौ घोड़े और दण्डनायक (सेनापति) की पदवी दी।

विमल बड़ा चतुर था। उसे यह अच्छी तरह मालूम था, कि सेना को किस तरह अपने कब्ज़े में रखना चाहिये और अपनी प्रतिष्ठा तथा अपना प्रभाव किस तरह बढ़ाना चाहिये। उसका बड़ा दबाव था। गुजरात के सब छोटे-छोटे राजा लोग उससे भय मानते थे। थोड़े ही समय में विमल अपनी चतुराई से दण्डनायक के पद से बढ़कर महा-मंत्री होगया।

अब वह बड़ी शान से रहने लगा। उसने अपने रहने के लिये राजा से भी अधिक अच्छा महल बनवाया और एक सुन्दर गृह-मन्दिर बनवाया। मकान और मन्दिर के चारों तरफ एक सुन्दर-कोट तयार करवाया। देश-विदेश से उत्तम-उत्तम हाथी-घोड़े मँगवाये और अपने लड़नेवाले योद्धाओं में वृद्धि की।

जिनेश्वरदेव की तरफ विमल की अपार भक्ति थी। वे अपनी अंगूठी में, जिनेश्वर की छोटी-सी तसवीर रखते

थे, जिससे किसी को वन्दन करने पर, पहला वन्दन उन्हीं को होता था।

विमल की यह स्थिति देखकर, उसके दुश्मनलोग राजा भीमदेव को उसके विरुद्ध उभारने लगे। उन्होंने कहा कि—"महाराज! विमलशाह आपका राज्य लेना चाहते हैं। उन्होंने बड़ी-भारी सेना तयार की है और वे जिनेश्वरदेव के अतिरिक्त और किसी को भी नहीं नमते हैं।" इस तरह खूब उभारे जाने पर राजा भीमदेव को ऐसा जान पड़ा, कि यह बात सच्ची है। अतः उन्होंने विमलशाह का घर देखने की इच्छा से एक दिन कहा, कि—"मंत्रीजी! मैंने आपका घर कभी नहीं देखा, अतः उसे देखने की बड़ी इच्छा है"। विमलशाह के मन में कुछ कपट न था, इसलिये वे बोले, कि—"स्वामी! वह घर आप ही का है। आप पधारिये और आज भोजन वहीं चलकर कीजियेगा"।

राजा, अपने साथ थोड़े-से घुड़सवार और पैदल-सिपाही लेकर विमलशाह के घर चले। वहाँ पहुँचकर, जब उन्होंने मन्दिर की बनावट देखी, तो चकित रह गये और जब महल के दूसरे भागों की बनावट देखी, तो अपने दाँतों तले उँगली दबाई। जब विमलकुमार का मजबूत क़िला देखा, तो उनके हृदय की शङ्का उन्हें सच्ची जान पड़ने लगी। वे मन में सोचने लगे, कि—"अहो! इस विमल के पास

इतनी अधिक ऋद्धि-सिद्धि है ? मेरा वैभव इसके सामने किस गिनती में है ! " यों सोचते हुए, राजा भोजन करके वापस चले गये ।

अब राजा अपने और-और मन्त्रियों के साथ सलाह करने लगे, कि विमल को यहाँ से किस तरह अलग करना चाहिये ? विचार करते-करते, एक मंत्री ने यह तरकीब सुझाई, कि—" महाराज ! जब तक वह गुड़ देने से मरे, तब तक ज़हर देकर मारने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कीजिये, कि कल ठीक भोजन के समय शेर को छुड़वा दीजिये । इससे सारे शहर में, निश्चित ही त्रास फैल जावेगा। इसी समय विमल को उत्तेजित कर दीजियेगा, अतः वह शान्त न बैठा रह सकेगा और शेर को पकड़ने के लिये जावेगा। वहाँ, उसका काम अपने आप तमाम होजायगा। " राजा को यह विचार पसन्द आया ।

दूसरे ही दिन, राजा ने सब तयारी ठीक करवा रखी । ज्यों ही विमलशाह आये और राजा को नमन करके बातें करने लगे, ठीक त्यों ही पींजरे में से शेर बाहर निकाल दिया गया । शेर के छूटने से, सारे शहर में हाहाकार मच गया । एक मनुष्य ने, जहाँ राजा और विमलशाह बैठे थे, वहाँ आ-कर समाचार दिया, कि—" महाराज ! शेर छूट गया है और सारे शहर में उसके कारण त्रास फैल रहा है "। यह

सुनकर, विमलशाह एक दम उठ खड़े हुए और बाघ को वश में करने के लिये तयार होगये। राजा तो यही चाहते ही थे अतः वे कुछ न बोले।

शहर में चारों तरफ सन्नाटा फैल रहा था। जिसे जिधर मौका मिला, वह उधर ही भागकर घर में घुस गया। वह सिंह, अकेला ही शहरमें दौड़ता फिर रहा था, कि इतने ही में उसे विमलशाह दिखाई दिये। इन्हें देखते ही शेर दौड़ा और झपाटा मारकर इनके सामने आगया। विमलशाह तो उसकी खबर लेने को तयार ही थे, अतः एक छलाँग मारकर उन्होंने उसके दोनों कान जा पकड़े। बाघ ने छूटने का बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु विमलशाह के हाथ ऐसे कमज़ोर न थे, कि उनमें से कान छूट जाते। अन्त में उस सिंह को लाकर उन्होंने फिर पींजरे में बन्द कर दिया।

सारे शहर में, विमलशाह की जय बोली जाने लगी। राजा भीमदेव तथा उनके मंत्रीलोग बड़े निराश हुए। उन्होंने तो विमलशाह की जान लेनी चाही थी, किन्तु उलटी उसकी कीर्ति में वृद्धि होगई। अब क्या करें? अन्त में, उन्होंने एक दूसरा उपाय सोच निकाला, कि राजमल्ल से विमलशाह को कुश्ती लड़ाया जावे और वहाँ उसका काम तमाम करवा दिया जाय। राजा ने मल्ल को बुलाकर, सब बातें अच्छी तरह से समझा दीं। थोड़े दिन बीतने पर, एक दिन राजा ने

विमलशाह से कहा, कि—“ मंत्रीजी ! यह राजमल्ल अपने बल का बड़ा अभिमान करता है, अतः इसकी एक दिन परीक्षा तो करो ” ।

मल्ल के साथ विमलशाह की कुश्ती हुई । कुश्ती के अनेक दाँव खेले गये, जिसमें विमलशाह ने मल्ल को बड़ी तेजी से पटककर, विजय प्राप्त की । सब दर्शकों के मुँह से वाह-वाह की ध्वनि निकल पड़ी ।

राजा और उनके मंत्रीलोग अब चिन्ता करने लगे, कि “ विमल में दैवी शक्ति है, जिससे वह किसी का मारा नहीं मर सकता । अब कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिये, जिससे वह यहाँ से चला जाय । ” इसके बाद, उन्होंने निश्चय किया, कि—“ उसके दादा के समय का ५६ करोड़ रुपया लेना निकालकर, उससे अब माँगा जावे । यदि वह यह कर्ज अदा करना स्वीकार करेगा, तो भिखारी हो जायगा और यदि न देना चाहेगा, तो राज्य छोड़कर चला जावेगा ।”

दूसरे दिन, विमलशाह राज-दरबार में गये । इन्हें देखकर, राजा भीमदेव इनकी तरफ पीठ करके बैठ गये । विमलशाह ने मंत्रियों से इसका कारण पूछा, तो उन्होंने बतलाया, कि—“ राजा को हिसाब के बारे में गुस्सा आ रहा है । आप, या तो आपके खाते में बाक़ी निकलते हुए ५६ करोड़ रुपये दे दीजिये, या नया खाता लिख दीजिये । ”

यह सुनकर, विमलशाह-मंत्री समझ गये, कि राजा कच्चे-कान के हैं। वे दूसरों के बहकाने में लगे हैं। अतः थे मेरे विरुद्ध कोई कार्रवाई करें, उससे पहले यही उचित है, कि मैं स्वयं ही चला जाऊँ।

यों विचारकर, उन्होंने वहाँ से चलने की तयारी की। सोलह-सौ ऊँटों पर सोना भरा और हाथी-ऊँट तथा रथ तयार करवाये। पाँच-हजार घोड़े और दस-हजार पैदल अपने साथ लिये। फिर भीमदेव से आज्ञा लेने गये। वहाँ से बिदा होते समय, उन्होंने राजा से कहा, कि—"महाराज ! आपने मुझे जैसी परेशानी में डाला, वैसी परेशानी में कृपा करके और किसी को मत डालियेगा"।

विमलशाह-मंत्री, अपना वैभव साथ लेकर, आबू की तरफ चले। उन दिनों आबू की तलहटी में, चन्द्रावती नामक एक नगरी थी। वहाँ के राजा ने, जब यह बात सुनी, कि विमल-मंत्री अपनी सेना सहित आ रहे हैं, तो वह नगर छोड़कर चला गया। विमल-मंत्री, यहाँ भीमदेव के सेनापति की ही तरह काम करने लगे।

यहाँ रहते हुए, उन्होंने बहुत-सी विजयें प्राप्त कीं। सिन्धदेश का राजा पंडिया, बड़ा घमण्डी हो गया था, अतः उसे बुरी तरह हरा दिया। परमार राजा धंधुदेव को

-जो भीमदेव की अधीनता नहीं स्वीकार करता था-भीमदेव की महत्ता मानने को विवश किया।

बिमलशाह ने अपने पराक्रम से विजय प्राप्त की और दोहाई राजा भीमदेव की फिरवाई। यह मालूम होने पर भीमदेव समझ गये, कि विमल-मंत्री को अलग करके, मैंने बड़ी-भारी भूल की है। उन्हें इसके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

चारों तरफ अपना दबाव जमाकर, विमलशाह ने चन्द्रावती में राजगद्दी ग्रहण की। इस समय पर, भीमदेव ने अपनी तरफ से छत्र तथा चवँर भेंट में भेजे। विमलशाह ने भी अपने मन से क्रोध को दूर करके, ये चीजें स्वीकार कर लीं।

राजा होजाने के बाद, विमलशाह एक दिन महल की अटारी पर चढ़कर नगर देखने लगे। किन्तु उन्हें चन्द्रावती नगर, कुछ दर्शनीय न मालूम हुआ। अतः उन्होंने, उसको फिर से बसाने का निश्चय किया।

चन्द्रावती नगर, फिर से बनवाया गया। उसके बाजार सीधे तथा सुन्दर तयार करवाये गये और बीच के चौक विशाल तथा दर्शनीय रखे गये। नगर में सुन्दर नक्काशीदार अनेक पक्के जिन-मन्दिर बनवाये गये। परम-शान्ति के धाम उपाश्रय रचे गये तथा बावड़ी, कुए, एवं तालाब भी काफी संख्या में तयार होगये।

इस तरह विमलशाह सब प्रकार की सांसारिक–सम्पत्ति प्राप्त करके, आनन्द करने लगे। इतने ही में एक बार श्री धर्मघोष नामक आचार्य वहाँ पधारे। उन्होंने पवित्र–जीवन का उपदेश दिया तथा धर्म का आसली मर्म समझाया। फिर, उन्हों ने विमलशाह की तरफ लक्ष्य करके कहा, कि— "विमलशाह! तुमने अपना सारा–जीवन धन तथा सत्ता प्राप्त करने में बिताया है। अतः अब कुछ धर्म–कार्य करो और कुछ परलोक की भी सामग्री एकत्रित करो।" विमलशाह को यह बात ठीक मालूम हुई। उन्हें, अपने जीवन में की हुई अनेक भयङ्कर–लड़ाइयों का स्मरण हो आया, जिस के कारण बड़ा पश्चाताप हुआ। अन्त में, वे गद्गद्–स्वर में बोले, कि—"गुरुदेव! आप जो आज्ञा दें, वह करने को मैं तयार हुँ, अतः फरमाइये, कि मेरे लिया क्या हुक्म है?" गुरुजी ने कहा, कि–"आबू के समान सुन्दर–पहाड़ पर एक भी जैन–मन्दिर नहीं है, अतः वहाँ जैन–मन्दिर तयार करवाओ"। विमलशाह ने, यह बात स्वीकार कर ली।

विमलशाह, मन्दिर वनवाने के लिये कुटुम्ब सहित आबू पहाड़ पर आये। उस समय आबू पर ब्राह्मणों का बड़ा ज़ोर था। शिवमन्दिर वहाँ इतने अधिक बने थे, कि सिर्फ उनकी पूजा करनेवाले पुजारी ही ग्यारह–हजार रहते थे। विमलशाह ने, वहाँ पहुँचकर मन्दिर के लिये जगह माँगी।

किन्तु पुजारियों ने जगह देने से साफ इनकार कर दिया। विमलशाह ने उन्हें खूब समझाया। पुजारियों ने कहा, कि –"यदि आपको यहाँ पर जगह की आवश्यकता ही हो, तो जितनी जमीन चाहो, उस पर सोने के सिक्के बिछवाकर, वे हमें दे दो और जमीन आप ले लो"। विमलशाह ने, यह बात स्वीकार कर ली और सोने के सिक्के बिछाकर जमीन ख़रीदी। जमीन प्राप्त कर चुकने पर, उन्होंने सारे देश में से छाँट-छाँटकर कारीगर बुलवाये और संगमरमर के पहाड़ में से संगमरमर-पत्थर खुदवा-खुदवा, हाथियों पर लाद-लादकर आबू-पहाड़ पर लाने लगे। कहा जाता है, कि यह पत्थर लगभग चाँदी के बराबर कीमती पड़ने लगा। विमलशाह के हृदय में उत्तमोत्तम-मन्दिर बनवाने की भावना थी, अतः उन्होंने सिलावटलोगों से कहा, कि—"तुम लोग, अपनी सारी कला इस काम में दिखलाना। पत्थर में नक्काशी खोदते हुए, जितना चूरा गिरेगा, मैं उतनी ही चाँदी तुम्हें दूँगा।" दो-हजार कारीगरों ने, चौदह-वर्ष तक काम किया। अठारह-करोड़ और तीस-लाख रुपये के खर्च से, एक भव्य-जिन-मन्दिर तयार हुआ, जिसमें श्री ऋषभदेव-भगवान की मूर्ति स्थापित की गई।

यह मन्दिर, आज भी आबू-पहाड़ पर शोभा दे रहा है। संसार में इसकी कारीगरी की कोई जोड़ नहीं है। प्रिय-

पाठको ! जीवन में एक बार तो आप भी इस अद्भुत-मन्दिर के दर्शन अवश्य कीजिये ।

विमल-मंत्री ने, संसार की यह सुन्दर-वस्तु तयार करके संघ को सौंपी और उसके खर्च के लिये कई ग्राम जागीर में दिये । इसके बाद, वे चन्द्रावती वापस लौट आये । यहाँ, कई वर्षों के बाद वे काल-धर्म को प्राप्त हुए ।

धन्य है वीर विमलशाह को, जिन्होंने अपने बाहुबल से उन्नति प्राप्त की और संसार को एक अमूल्य तथा अतीद्रिय-वस्तु की भेंट दी ।

शिवमस्तु सर्व जगतः

—: तिरंगे–चित्र :—

प्रभु महावीर की निर्वाणभूमि जलमंदिर पावापुरी का मनमोहक तिरंगा चित्र.

चित्रकार धीरजलाल टो. शाह, मूल्य ०–२–० ।

प्रभु पार्श्वनाथ को मेघमाली का उपसर्गः अत्यंत भावपूर्ण जयंतीलाल झवेरी का चित्र. मूल्य ०–४–०.

ज्योति–कार्यालय,

हवेली की पोल, रायपुर–अहमदाबाद.

जैन ज्योति

सम्पादक—

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

गुजराती भाषा में प्रकाशित होनेवाला यह सचित्र और कलामय मासिक जैन समाज में अनोखा ही है। जैन समाज, जैन संस्कृति, साहित्य और जैन शिल्प के बहुमूल्य-लेख इस पत्र में प्रकाशित होते हैं। वार्षिक मूल्य सिर्फ रु. २-८-०। नव मास रु.२-०-०, छह मास रु. १-६-०, एक अंक के चार आने। आज ही ग्राहक बनिये।

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम-श्रेणी :: :: पुष्प ९७

वस्तुपाल-तेजपाल

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ वि० | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
धीरजलाल टोकरशी
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पीरमशाहरोड,
अमदावाद

वस्तुपाल-तेजपाल

: १ :

तेरहवीं-सदी की बात है। जब कि गुजरात में सोलंकी राजाओं की शक्ति निर्बल पड़ गई थी और राजा वीरधवल की सत्ता बढ़ने लगी थी।

वीरधवल के एक मंत्री, आशराज नामक श्रावक थे। वे, सुंहालक ग्राम में रहते थे। उनके कुमारदेवी नाम की एक गुणवती-स्त्री थी। इस स्त्री से उनके तीन-पुत्र और सात-कन्याएँ हुईं। लड़कों के नाम थे-मल्लदेव, वस्तुपाल तथा तेजपाल। लड़कियों के नाम जल्हु, माउ, साउ, धनदेवी, सोहगा, वयजू और पद्मा थे।

आशराज ने अपने सभी पुत्रों तथा पुत्रियों को अच्छी तरह पढ़ाया-लिखाया। इनमें वस्तुपाल तथा तेजपाल सब से तेज़ निकले। इन दोनों को विद्या पर अथाह-प्रेम, कला से

गहरी-प्रीति और धर्म पर अपार श्रद्धा थी। इन दोनों भाइयों की जोड़ी सब का चित्त हरण करती और सब पर प्रभाव डालती थी।

जब ये सयाने हुए, तो पिता ने गुणवती-कन्याओं के साथ इन दोनों के विवाह कर दिये। वस्तुपाल का ललिता से तथा तेजपाल का अनुपमा से।

थोड़े दिनों के बाद, पिता की मृत्यु होगई, अतः पितृ-भक्त पुत्रों को बड़ा दुःख पहुँचा।

इस दुःख को भूलने के लिये वे माँडल में आकर बसे और माता की बड़ी सेवा-भक्ति करने लगे। यहाँ अपने अच्छे-व्यवहार से उन्होंने थोड़े ही समय में काफी नामवरी प्राप्त की।

थोड़े समय के बाद उनकी प्यारी-माता का भी देहान्त होगया, जिससे उन्हें बड़ा दुःख पहुँचा। इस दुःख को दूर करने के लिये उन्होंने शत्रुंजय की यात्रा की। पवित्र-तीर्थ शत्रुंजय की यात्रा करने पर किसका मन शान्त नहीं होता? उसके पवित्र-वातावरण में इन दोनों भाइयों का शोक दूर होगया। वहाँ से वे वापस लौटे और राज-सेवा की इच्छा से मार्ग में धोलका नामक ग्राम में रुक गये। यहाँ उनकी राजपुरोहित-सोमेश्वर के साथ घनिष्ट-मित्रता होगई।

: २ :

इस समय गुजरात की स्थिति बड़ी डाँवाडोल थी। इसी कारण राजा वीरधवल सोच रहे थे, कि यदि मुझे चतुर–प्रधान तथा सजग–सेनापति मिल जाय, तो मेरी इच्छाएँ पूर्ण हों।

राजपुरोहित को जब यह बात मालूम हुई, कि राजाजी प्रधान तथा सेनापति ढूँढने की चिन्ता में हैं, तो वे राजा के पास गये। वहाँ जाकर उन्हों ने राजा से कहा—"महाराज! चिन्ता दूर कीजिये। आपको जैसे मनुष्यों की आवश्यकता थी, वैसे ही दो रत्न इस नगर में आये हुए हैं। वे न्याय करने में बड़े निपुण हैं, राज्य–व्यवस्था खूब जानते हैं और जैन–धर्म के तो मानों रक्षक ही हैं। किन्तु सब पर समान रूप से प्रीति रखते हैं। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं उन्हें आपके सामने हाजिर करूँ।"

राजा ने, पुरोहित को आज्ञा दी, अतः वे इन दोनों–भाइयों को राज–सभा में लेगये। वहाँ राजा के सामने सुन्दर भेंट रखकर, इन दोनों भाइयों ने उन्हें प्रणाम किया। राजा वीरधवल ने इन्हें जैसे सुना था, वैसे ही पाया। अतः वे बोले, कि—"तुम लोगों की मुलाक़ात से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ और यह राज्य का सारा कारोबार तुम्हें सौंपता हूँ"। दोनों भाई यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। फिर वस्तुपाल ने राजा से कहा—"महाराज! यह हम लोगों का अहो-

भाग्य है, कि आपकी हम पर ऐसी कृपा हुई। किन्तु हमें एक प्रार्थना करनी है, उसे आप ध्यानपूर्वक सुन लीजिये। वह यह, कि-जहाँ अन्याय होगा, वहाँ हम लोग जरा भी भाग न लेंगे। राज्य का चाहे जितना जरूरी-काम हो, किन्तु देव-गुरु की सेवा से हमलोग न चूकेंगे। राज्य की सेवा करते हुए यदि आपसे कोई हमारी चुगली करे और उसके कारण हमें राज्य छोड़कर जाने का मौका आवे, तो भी हमारे पास जो तीनलाख रुपये का धन है, वह हमारे ही पास रहने देना होगा। यदि आप इन बातों का राजपुरोहित की साक्षी से वचन दें, तब तो हम आपकी सेवा करने को तयार हैं, नहीं तो आपका कल्याण हो!"

राजा ने इसी तरह का वचन देकर, वस्तुपाल को धोलका तथा खंभात का महा-मंत्री बनाया और तेजपाल को सेनापति का पद दिया।

: ३ :

जिस समय वस्तुपाल महा-मंत्री बने उस समय न तो खजाने में धन था और न राज्य में न्याय। अधिकारीलोग बहुत ज्यादा रिश्वतें खाते और राज्य की आय अपनी ही जेब में रख लेते थे। उन्हें दबाने की शक्ति किसी में भी न थी। इस सारी स्थिति को ध्यान में रखकर ही वस्तुपाल ने अपना काम शुरू किया।

वे सज्जनों का सत्कार करने और जितने अधिकारी घूँसखोर थे उन्हें पकड़-पकड़कर कड़ी-सजाएँ देने लगे। इस प्रकार के मुकदमों से उन्हें बहुत-सा धन मिलने लगा, जिस से उन्होंने एक बड़ी सेना तयार की। फिर राज्य का सारा कारोबार कुछ दिनों के लिये तेजपाल को सौंपा और आप सेना लेकर राजा के साथ चले। जिन-जिन ग्रामों के जिमीदारोंने राज्य का कर देना बन्द कर दिया था, उन-उन ग्रामों में जाकर उनसे सब रुपया वसूल किया। जिन जागिरदारों ने किश्तें देना बन्द कर दी थीं, उनसे भी पिछली सब बकाया रकम वसूल कर ली। इस तरह सारे राज्य में फिरकर उन्होंने राज्य का खजाना भर दिया और सब जगह शान्ति तथा व्यवस्था कायम की।

अब वस्तुपाल ने मिले हुए धन से एक मजबूत-सेना तयार की और पड़ोस के राजाओं को जीतने की तयारी की।

उस समय काठियावाड़ में बड़ी अन्धेर फैल रही थी। वहाँ के राजालोग यात्रियों को लूट लेते थे। इसी कारण वस्तुपाल सब से पहले काठियावाड़ की तरफ को चले और वहाँ के अधिकांश राजाओं को शीघ्र ही अपने वश में कर लिया। यों करते-करते, वे वनथली नामक स्थान पर आये। वहाँ राणा वीरधवल के साले सांगण और चामुण्ड राज्य करते थे। इनके अभिमान की कोई सीमा ही न थी। वस्तुपाल ने उन्हें खूब समझाया, किन्तु वे अधीन न हुए, अतः युद्ध

शुरू होगया। इस लड़ाई में सांगण तथा चामुण्ड दोनों मारे गये और वस्तुपाल की विजय हुई। वस्तुपाल ने उनके लड़कों को गादी दे दी। इस तरह सारे काठियावाड़ में विजय का डंका बजाकर, वस्तुपाल राजा के साथ ही साथ गिरनार गये। अत्यन्त भक्तिपूर्वक वहाँ की यात्रा करके, वे वापस लौट पड़े।

: ४ :

भद्रेश्वर का राणा भीमसिंह वीरधवल का कर देनेवाला अधीन राजा था। किन्तु इस समय उसने कर देने से नाहीं कर दी थी। उसकी सेना में, तीन बहादुर लड़नेवाले योद्धा थे। अतः उसे गर्व था, कि मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ सकता। वस्तुपाल तथा राणा वीरधवल ने उस पर चढ़ाई कर दी। इस लड़ाई में वीरधवल हार गये, किन्तु इसी समय वस्तुपाल फौज लेकर वहाँ आ पहुँचे। वे बड़ी चतुराई से लड़े और अन्त में विजय प्राप्त कर ही ली।

: ५ :

वस्तुपाल यह ज़बरदस्त-विजय प्राप्त करके पीछे लौटे। इसी मौके पर उन्होंने सुना, कि गोधरा का घूघुल खूब मदान्ध हो रहा है और अपनी प्रजा को नाना प्रकार के कष्ट दे रहा है। यह सुनकर वस्तुपाल ने उसे कहला भेजा, कि—“तुम शीघ्र ही राजा वीरधवल के अधीन हो जाओ”। उसने वस्तुपाल के इस सन्देश पर तो ध्यान दिया नहीं, उलटे एक

दूत के हाथ थोड़ा-सा काजल, एक चोली और एक साड़ी वीरधवल को भेंट-स्वरूप भेजी। इस अपमान से राजा वीरधवल बहुत चिढ़े। उनके नेत्रों से, आग-सी बरसने लगी। उन्होंने लाल-लाल नेत्रो से अपने सभासदों की तरफ एक आशापूर्ण दृष्टि से देखा, किन्तु कोई भी घूघुल को जीतकर पकड़ लाने के लिये तयार न हुआ। क्योंकि लोगों के हृदयों पर घूघुल का बड़ा आतङ्क जमा हुआ था। अन्त में तेजपाल उठकर खड़े हुए और यह प्रतिज्ञा की, कि मैं शीघ्र ही घूघुल को जीतकर उसे यहाँ पकड़ लाऊँगा। राजा वीरधल यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

तेजपाल एक बड़ी सेना लेकर गोधरे की तरफ चले। वहाँ पहुँचने पर एक भीषण-युद्ध हुआ। इस युद्ध में घूघुल पकडा गया और एक पींजरे में बन्द करके धोलका लाया गया। यहाँ उसी की भेंट भेजी हुई चोली तथा साड़ी उसे पहनाई गई। इस अपमान से दुःखी होकर उसने आत्महत्या कर ली।

: ६ :

खंभात में सिद्दीक नामक एक बड़ा-व्यापारी रहता था। वह वहाँ का मालिक-सा बना बैठा था। उसने एक बार ज़रा से अपराध के कारण नगरसेठ की सम्पत्ति लूट ली और

उसका खून करवा दिया। नगरसेठ के लड़के ने इस जुल्म की वस्तुपाल से शिकायत की। वस्तुपाल ने सिद्दीक को उचित-दण्ड देना तय किया। सिद्दीक को जब यह बात मालूम हुई तो उसने अपनी सहायता के लिये अपने मित्र शंख नामक राजा को बुलवा भेजा। ज़बरदस्त लड़ाई हुई, जिसमें शंख राजा मारा गया और वस्तुपाल की विजय हुई। इसके बाद खंभात शहर में जाकर सिद्दीक का घर खुदवाने पर वस्तुपाल को बहुत अधिक सोना तथा बहुत-से जवाहिरात मिले। कहा जाता है, कि इन चीजों की कीमत तीन-अरब रुपये के लगभग थी।

: ७ :

एक बार दिल्ली के बादशाह मौजदीन ने, गुजरात पर चढ़ाई कर दी। यह समाचार जब वस्तुपाल तथा तेजपाल को मालूम हुआ, तो ये दोनों भाई अपनी बड़ी-भारी सेना लेकर आबू-पहाड़ तक उसके सामने गये। वहाँ भयङ्कर-युद्ध करके इन्होंने मौजदीन के हजारों-मनुष्यों का वध करवा डाला। बेचारा मौजदीन हताश होकर, वापस दिल्ली को लौट गया।

ये सब लड़ाइयें लड़ चुकने पर उन्होंने समुद्र के किनारे की तरफ चढ़ाई की और वहाँ महाराष्ट्र तक अपनी दोहाई फिरवाई।

इस तरह इन दोनों भाइयों ने, अनेक छोटे-मोटे युद्ध कर के, गुजरात की सत्ता अच्छी तरह जमाई और चारों तरफ शान्ति तथा व्यवस्था की स्थापना करके विजय का डङ्का बजाया।

: ८ :

ये दोनों भाई लड़ाई तथा राज्य-कार्य में जैसे निपुण थे, वैसे ही धर्म में भी बड़ी दृढ़-श्रद्धा रखनेवाले थे। वे, अष्टमी और चतुर्दशी को तप करते तथा सामायिक एवं प्रतिक्रमण भी नियमित रूप से करते थे। अपने धर्म-बन्धुओं पर उन्हें अगाध-प्रेम था। प्रतिवर्ष एक-करोड़ रुपया अपने धर्म-बन्धुओं के लिये खर्च करने का उन्होंने व्रत ले रखा था।

उनकी उदारता की कोई सीमा न थी। वे मुक्त-हस्त होकर दान करते ही जाते थे। होता यह था, कि ज्यों-ज्यों वे धन का सदुपयोग करते थे, त्यों-त्यों धन और बढ़ता जाता था। इसलिये वे दोनों भाई विचार करने लगे, कि इस धन का आखिर किया क्या जावे?

तेजपाल की स्त्री अनुपमादेवी बुद्धि की भण्डार थीं, अतः इसके लिये उनसे सलाह पूछी। उन्होंने जवाब दिया, कि इस धन के द्वारा पहाड़ों के शिखरों की शोभा बढ़ाओ अर्थात् वहाँ सुन्दर-सुन्दर मन्दिर बनवाओ। यह सलाह सब को पसन्द पड़ी, अतः शत्रुंजय, गिरनार और आबू पर भव्य-मन्दिरों का निर्माण करवाया गया। इनमें से भी, आबू के

मन्दिर बनवाते समय तो उन्होंने पीछे फिरकर यह कभी न देखा, कि इन पर कितना धन खर्च हो रहा है। उन्होंने देश के अच्छे से अच्छे कारीगर एकत्रित किये और नक्काशी करते समय गिरनेवाले चूरे के बराबर उन लोगों को सोना तथा चाँदी पुरस्कार में दिया। इन मन्दिरों को शीघ्र पूरा करवाने के लिये उन्होंने अपनी तरफ से वहाँ भोजनालय की व्यवस्था की और जाड़े के दिनों में प्रत्येक कार्यकर्ता के पास एक सिगड़ी रखवाने का इन्तिजाम किया। लगभग बारह-करोड़ रुपयों के खर्च से ये मन्दिर तयार हुए, जिनकी जोड़ी आज भी संसार में कहीं नहीं है। विमलशाह के मन्दिर के पास ही ये मन्दिर भी बने हुए हैं। प्रिय-पाठको! हम आपसे यह अनुरोध करते हैं, कि आप कम से कम एक बार तो इन देलवाड़े के मन्दिरों को अपने जीवन में अवश्य देखिये।

इसके पश्चात्, उन्होंने और भी बहुत-से मन्दिर तथा उपाश्रय बनवाये एवं अनेकों पुस्तक-भण्डार स्थापित किये। बारह-बार शत्रुंजय और गिरनार के संघ निकाले। ये संघ इतने बड़े-बड़े थे, कि हमलोगों के चित्त में तो कभी उतने बड़े संघों का खयाल भी नहीं आ सकता। एक बार के संघ में तो सात-लाख मनुष्य थे।

इन दोनों-भाइयों की उदारता केवल जैनियों अथवा केवल गुजरातियों के लिये ही न थी। इन्होंने प्रत्येक धर्म-

वालों के साथ, सारे भारत में दानशीलता का व्यवहार किया। केदारनाथ से कन्याकुमारी तक ऐसा एक भी छोटा–बड़ा तीर्थ–स्थान नहीं है, जहाँ इन लोगों की उदारता का परिचय न मिला हो। सोमनाथ–पाटन को ये प्रति–वर्ष दस–लाख, और काशी, द्वारिका आदि स्थानों को प्रति–वर्ष एक–एक लाख रुपया सहायता–स्वरूप भेजते थे। यही नहीं, उन्होंने बहुत–से शिवालय तथा मस्जिदें भी तयार करवाई थीं। तालाब, कुए और बावलियें उन्होंने कितनी बनवाई थीं, इसकी तो कोई गिनती ही नहीं है।

इन दोनों भाइयों के चतुरतापूर्ण–कार्यों से प्रजा बड़ी सुखी थी। राज्य में बन्दोबस्त भी बहुत–अच्छा था।सब धर्मों के लोग अपना–अपना धर्म अच्छी तरह पालन कर सकते थे। देश में दुष्काल का कहीं नाम भी न था।

अब राजा वीरधवल की मृत्यु होगई। उनकी मृत्यु के बाद इन दोनों भाइयों ने उनके पुत्र वीसलदेव को राज–गद्दी पर बैठाया और स्वयं पहले की ही तरह राज्य–कार्य करने लगे।

कुछ दिनों के बाद वस्तुपाल को यह जान पड़ा, कि अब मेरा अन्तकाल समीप आगया है। अतः उन्होंने सब के साथ मिलकर, शत्रुंजय के लिये एक संघ निकाला। राजा

वीसलदेव और राजपुरोहित-सोमेश्वर ने, अपने नेत्रों से आँसू गिराते हुए इन्हें बिदा किया।

रास्ते में वस्तुपाल को बीमारी ने घेर लिया और उनकी मृत्यु होगई। उनके शव का अन्तिम-संस्कार शत्रुंजय पर किया गया और वहाँ एक जैन-मन्दिर का निर्माण हुआ। उनकी मृत्यु के बाद ललितादेवी ने भी उपवास करके अपना शरीर छोड़ दिया। इसके पाँच-वर्ष पश्चात्, तेजपाल का देहान्त हुआ और अनुपमादेवी ने पति-वियोग होते ही, अनशन प्रारम्भ करके अपनी सांसारिक-लीला पूर्ण कर दी।

संसार के अत्यन्त मूल्यवान-रत्नों के जाने पर भला किसे दुःख न होगा?

मनुष्यजाति की भूषण-स्वरूप, ऐसी अनेक-जोड़ियें संसार में उत्पन्न हों और आदर्श-जीवन बिताकर समाज की शोभा बढ़ावें।

शिवमस्तु सर्वजगतः

जैन ज्योति

तंत्री :

धीरजलाल टोकरशी शाह

गूजराती भाषामें प्रकट होनेवाला यह सचित्र और कलात्मक मासिक जैन समाजमें अनोखा ही है। जैन समाज, जैन संस्कृति, साहित्य और जैन शिल्प का बहुमूल्य लेखों इस पत्रमें प्रगट होते हैं। वार्षिक मूल्य सिर्फ रु. २-८-०। नव मास रु. २-०-०, छह मास रु. १-६-०, एक अंक चार आना। आज ही ग्राहक बनीये।

—: त्रिरंगी चित्रें :—

प्रभु महावीरकी निर्वाण भूमि जलमंदिर पावापुरीका मनोहारी त्रिरंगी चित्र.

चित्रकार धीरजलाल टो. शाह, मूल्य ०–२–० ।

प्रभु पार्श्वनाथ को मेघमालीका उपसर्गः अत्यंत भावपूर्ण

जयंतिलाल झवेरी का चित्र. मूल्य ०–४–०.

ज्योति कार्यालय,

हवेली की पोल, रायपुर—अहमदाबाद.

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी • • पुष्प १८

खेमा-देदराणी

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ वि. | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
धीरजलाल टोकरशी शाह,
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पोरमशाहरोड,
अ ह म दा बा द

खेमा-देदराणी

: १ :

चाँपानेर के नगरसेठ चाँपसी मेहता और सादुलखान उमराव, दोनों एक दिन साथ ही साथ राज-दरबार को जा रहे थे। इन्हें रास्ते में एक भाट मिला। उसने नगरसेठ की बड़ी प्रशंसा की और अन्त में कहा, कि—"भले शाह बादशाह"। भाट के मुँह से, यह बात सुनकर, सादुलखान को बड़ा बुरा मालूम हुआ। उसने दरबार में पहुँचकर बादशाह महमूद बेगड़ा से चुगली खाई, कि—"हुजूर आली! यह भिखमंगा भाट आपका दिया हुआ टुकड़ा तो खाता है और तारीफ करता है

चाँपसी–मेहता की ! आज इसने तारीफ करते–करते, उन्हें "भले शाह बादशाह" तक कह डाला।

बादशाह ने हुक्म दिया, कि–"भाट को बुलवाओ"। भाट के हाजिर होने पर, बादशाह ने उससे पूछा, कि–"अरे बंबभाट ! तू उस बनिये की इतनी तारीफ क्यों करता है ?" बंबभाट ने उत्तर दिया, कि–"गरीब–परवर ! उनके बाप–दादों ने बहुत बड़े–बड़े काम किये हैं। मैंने उनकी जो प्रशंसा की है, वह बिलकुल ठीक है।"

बादशाह ने फिर पूछा, कि–"क्या वे शाह–बादशाह के समान हैं ?"

बंबभाट ने निवेदन किया, कि–"हाँ खुदावन्द ! जिस प्रकार आप दुनिया का पालन कर सकते हैं, उसी प्रकार वे भी उसे जीवित रख सकते हैं। जब, संवत तेरह सौ पन्द्रहका भयङ्कर अकाल पड़ा था, तब जगड़ूशाह ने ही दुनिया को जिलाया था।

बादशाह ने कहा, कि–"ठीक, तुम जा सकते हो"। बंबभाट चला गया। बादशाह ने, अपने चित्त में यह निश्चय किया, कि मौक़ा पाते ही भाट की इस तारीफ को झूठी साबित करनी चाहिये।

: २ :

गुजरात में, भयङ्कर–अकाल पड़ा। न तो पशुओं

के लिये घास ही मिलती थी और न मनुष्यों के लिये अन्न-वस्त्र। पशुओं की मृत्यु होने लगी और मनुष्यों के झुण्ड के झुण्ड 'अन्न-अन्न' चिल्लाते हुए इधर-उधर दौड़ते दिखाई देने लगे।

बादशाह को जब यह हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने तय किया, कि इस समय नगरसेठ की परीक्षा लेनी चाहिये। अतः उन्होंने बंबभाट को बुलाया और उससे कहा, कि-" बंब! यदि चाँपसी मेहता शाह-बादशाह के समान हों, तो एक-वर्ष तक सारे गुजरात को अन्न-वस्त्र देकर जीवित रखें। यदि वे ऐसा न कर सकेंगे, तो शाह कहनेवाले तथा कहला-नेवाले, दोनों को अपराधी समझा जावेगा।"

भाट ने कहा-" जो हुक्म "।

उसने, चाँपसी-मेहता के पास आकर उनसे यह बात कही, कि-" बादशाह ने, आज मुझ से यह शर्त बतलाई है, कि यदि चाँपसी-मेहता गुजरात का एक-वर्ष तक पालन कर सकें, तब तो वे सच्चे शाह हैं। नहीं तो शाह कहने और कहलानेवाले दोनों ही अपराधी माने जाकर, दण्ड के भागी होंगे।"

चाँपसी-मेहता ने कहा, कि-" इसके लिये तुम फिर जाकर एक-महीने की मुहलत माँग आओ।

मास के अन्त में, महाजनवर्ग या तो एक-वर्ष तक गुजरात को जिलाने का जिम्मा ले लेगा, अथवा शाह पदवी छोड़ देगा।"

भाट ने, वापस जाकर एक-महीने की मुहलत माँगी। बादशाह ने, इसे स्वीकार कर लिया।

: ३ :

अब, चाँपसी-मेहता ने महाजनों को एकत्रित किया और उन्हें सब हाल कह सुनाया। महाजनों ने कहा, कि-" इसके लिये चन्दा करना चाहिये"। तत्क्षण, चाँपानेर के सेठ-साहूकारों की एक लिस्ट बनाई गई और लोग अपने-अपने नामों के सामने दिनों की संख्या लिखने लगे, कि वे कितने दिनों का खर्च देंगे। जब, सब लोग दिन लिख चुके, तो जोड़ लगाने पर मालूम हुआ, कि अभी तो सिर्फ चार ही महीने के खर्च की व्यवस्था हुई है। शेष आठ-महीनों के लिये क्या करें? अन्त में दूसरे ग्रामों से सहायता लेने जाना निश्चय हुआ।

पाटण, उस समय बड़ा भारी शहर था। उस में बड़े-बड़े सेठ-साहूकार तथा श्रीमन्त लोग रहते थे। चाँपसी-मेहता तथा कुछ अन्य प्रतिष्ठित-लोग पाटण को चले। पाटण के महाजनों ने इनका बड़ा स्वागत-

सत्कार किया और सब ने एकत्रित होकर चन्दे की फेहरिस्त तयार की। यहाँ, दो-महीनों के खर्च की व्यवस्था होगई। फिर ये लोग धोलका आये, जहाँ दस-दिन लिखे गये।

इस तरह, चन्दे की लिस्ट बनाने में उन्हें बीस-दिन तो लग गये, शेष केवल दस-दिन और रहे। इन दस-दिनों में ही, धोलका से चाँपानेर पहुँचना था, अतः महाजनलोग धंधुके जाने के लिये तेज़ी से चल पड़े। रास्ते में, हडाला नामक एक गाँव आया।

हडाला में खेमा नामक एक श्रावक रहता था! उसे यह बात मालूम हुई, कि चाँपानेर के महाजन लोग, मेरे घर के पास होकर जारहे हैं। अतः वह दौड़ता हुआ गाँव से बाहर आया और हाथ जोड़-कर यह प्रार्थना करने लगा, कि—"मेरी एक नम्र विनति स्वीकार कीजिये"। चाँपसी-मेहता तथा अन्य लोग, इस फटेहाल बनिये को देखकर मन में बड़े परेशान हुए और सोचने लगे, कि—"हम जहाँ जाते हैं, वहीं माँगनेवालों का ताँता-सा बँधा रहता है। इस भाई को और न मालूम क्या प्रार्थना करनी है।" यों विचारकर, उन्होंने खेमा से कहा, कि—"अवसर देखकर जो कुछ माँगना हो, वह माँगो"।

खेमा ने कहा, कि—"कलेवा करने को मेरे यहाँ पधारिये"।

चाँपसी-मेहता को निश्चिन्तता हुई, कि इसे किसी सहायता की आवश्यकता नहीं है। फिर, उन्होंने जवाब दिया, कि—"भाई! हमलोगों को घड़ी भर भी कहीं ठहरने का अवकाश नहीं है। हम बड़े ज़रूरी काम से जारहे हैं।

खेमा ने फिर कहा, कि—"चाहे जो हो, किन्तु आप अपने धर्म-बन्धु का आँगन अवश्य पवित्र कीजिये। ठीक कलेवा के समय पर आपका यहाँ से यों ही जाना कदापि नहीं होसकता।"

स्वधर्मी-भाई का निमन्त्रण ठुकराया नहीं जा-सकता था, अतः सब लोग कलेवा के लिये खेमा के यहाँ गये।

खेमा ने, रोटी और दही का नाश्ता करवाया। नाश्ते के बाद, महाजनों ने खेमा से जाने की स्वीकृति चाही।

खेमा ने कहा—"सेठ साहबो! अब भोजन करने के समय में थोड़ी देर और है। कुछ देर में ही गरमागरम-भोजन तयार हुआ जाता है, उसे जीमकर आप प्रसन्नतापूर्वक पधारियेगा।"

खेमा ने, हलुआ-पूड़ी तथा भजिये-पकौड़ी आदि पकवान तयार करवाये और उन लोगों को बड़े प्रेम से भोजन करवाया। भोजन कर चुकने पर, खेमा ने उन से पूछा, कि—" आप लोग किस कार्य के लिये बाहर निकले हैं ? " सेठों ने, सारी कथा कह सुनाई और फेहरिस्त में खेमा का नाम लिखकर, वह खेमा के आगे रख दी। खेमा को उस लिस्ट में अपना नाम देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा, कि—" मैं अपने पिता से पूछकर जवाब देता हूँ "।

खेमा, अपने बूढ़े-पिता देदराणी के पास गया और उनसे सब हाल कह सुनाया। देदराणी ने कहा, कि—" बेटा ! धन आजतक न तो किसी के साथ गया है और न जावेगा। पैसा फिर लौटकर मिल सकता है, किन्तु अच्छा-मौका बार-बार नहीं आता। यह तो घर बैठे गंगा आ गई है, अतः तू इससे जितना भी लाभ उठा सके, उठा ले।" खेमा ने, फेहरिस्त में अपने नाम के सामने ३६० दिन लिखकर, उसे चाँपसी-मेहता के हाथ पर रख दिया।

यह देखकर, सब के सब भौचक्के-से रह गये। वे सोचने लगे, कि कहीं खेमा के सिर पर पागलपन तो नहीं सवार है ? फिर चाँपसी-महेता बोले, कि —" खेमा सेठ ! जरा विचार कर के लिखिये "।

खेमा सेठ बोले, कि-" मैंने तो यह बहुत-थोड़ा ही लिखा है सेठ साहब ! आप कृपा करके इसे तो रहने ही दीजिये। फिर, खेमा उन लोगों को, झोंपड़े की तरह दिखाई देनेवाले अपने घर में लेगया। घर के भीतर एक गुफा थी, जिसमें ले जाकर, उसने वहाँ भरी हुई अपनी सम्पत्ति बतलाई।

सब लोग, उस सम्पत्ति को देख-देखकर, आश्चर्य करने और सोचने लगे, कि-" अहो ! इतने अधिक धन का स्वामी और इस वेश में ? और ऐसे घर में ? खेमा ! तू धन्य है, कि इतनी भारी सम्पदा होने पर भी, तुझे ज़रा-सा मान-अभिमान अथवा मस्ती नहीं है ! "

फिर, सब ने खेमा से कहा, कि-" खेमा सेठ ! अब इन कपड़ों को निकाल डालो और अच्छे-कपड़े पहन लो ! क्योंकि अब आपको बादशाह के सामने जाना है ! " खेमा ने उत्तर दिया, कि-" बादशाह के सामने जाने के लिये, तड़क-भड़कदार कपड़े पहनने की क्या आवश्यकता है ? सेठजी ! हम ग्रामीणलोग तो इसी पोशाक में अच्छे मालूम होते हैं। हमारे लिये, शाल-दुशालों की आवश्यकता नहीं है।"

चाँपसी-मेहता ने कहा, कि-" सचमुच, सेठ तो आप ही हैं, हमलोग तो केवल आपके गुमाश्ते

हैं "। इसके बाद, खेमा सेठ को पालकी में बैठाकर, चाँपानेर लेगये। दूसरे दिन, चाँपसी-मेहता तथा अन्य महाजनलोग, खेमा सेठ को लेकर कचहरी में पहुँचे।

खेमा सेठ ने तो, वही अपना फटा-टूटा कुर्ता पहन रखा था तथा फटी हुई पगड़ी सिर पर बाँध रखी थी और हाथ में, एक छोटी-सी गठरी लिये हुए थे।

चाँपसी-मेहता ने बादशाह से कहा, कि-"ये सेठ गुजरात को ३६० दिनों के लिये, मुफ्त में अन्न देंगे"। बादशाह, इस मैले-कुचैले बनिये को देखकर, बड़े आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने खेमा से पूछा, कि "तुम्हारे कितने गाँव हैं?"

खेमा ने कहा-"केवल दो"।

बादशाह—"कौन-कौन से?"

खेमा सेठ ने अपनी गठरी खोलकर उसमें से एक पली तथा तराजू निकाली और बादशाह से कहा, कि—"एक तो यह पली है और दूसरी है तराजू। इस पली से तो हम घी-तेल बेंचते हैं और तराजू से अनाज खरीदते हैं।"

बादशाह, यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए और खेमा सेठ की बड़ी तारीफ की।

खेमाशाह ने, एक-वर्ष तक, सारे गुजरात को तफ्मु में अनाज बाँटा, जिससे लाखों-मनुष्य भूखों मरने से बच गये और खेमाशाह को आशीर्वाद देने लगे।

खेमाशाह की उदार-दानशीलता धन्य है !

धीरे-गुजरात से वह दुष्काल दूर होगया। अब खेमाशाह ने शत्रुंजय की यात्रा की। फिर, पवित्र-जीवन व्यतीत करके, उन्होंने अपनी आयु पूर्ण की। इसी दान-वीर के समय से, यह कहावत चला है, कि-" व्यौपारी है पहला शाह, दूजा शाह बादशाह"।

भारतवर्ष में, ऐसे अनेक खेमा-देदराणी हों और अपनी उदारता से प्राणिमात्र का कल्याण करें।

शिवमस्तु सर्वजगतः

श्री रत्नाकरसूरिविरचित

रत्नाकर-पञ्चविंशतिका ।

शुभकेलि के आनन्द के धन के मनोहर-धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से पूजितचरण, गतकाम हो ।
सर्वज्ञ हो, सर्वोच्च हो, सब से सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में ॥१॥
संसार-दुख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश ! रत्नाकरप्रभो ! अनुपम कृपा-अवतार हो ।
गतराग ! है विज्ञप्ति मेरी मुग्ध की सुन लीजिए,
क्योंकि प्रभो ! तुम विज्ञ हो, मुझ को अभय वर दीजिए ॥२॥
माता-पिता के सामने बोली सुना कर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक बाल्य-वश लीलावती ? ।
अपने हृदयके हाल को त्यों ही यथोचित रीतिसे-
मैं कह रहा हूँ, आप के आगे विनय से प्रीति से ॥३॥
मैंने नहीं जग में कभी कुछ दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैं ने नहीं तप भी किया ।
शुभ भावनाएँ भी हुईं, अब तक न इस संसार में-
मैं घूमता हूँ, व्यर्थ ही भ्रम से भवोदधि धार में ॥४॥
क्रोधाग्नि से मैं रातदिन हा ! जल रहा हूँ हे प्रभो,
मैं लोभ नामक साँप से काटा गया हूँ हे प्रभो ।
अभिमान के खल ग्राह से अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भाँति हों स्मृत आप, माया-जालसे मैं व्यस्त हूं ॥५॥
लोकेश ! पर-हित भी किया मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो झींखता हूं शोकमें ।
जग में हमारे से नरों का जन्म ही बस व्यर्थ है,

मानां जिनेश्वर ! वह भवोंकी पूर्णता के अर्थ है ॥६॥
प्रभु ! आपने निज मुख सुधाका दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है, पर चित्तने उसका न कुछ भी फल लिया ।
आनन्द–रस में डूबकर सद्वृत वह होता नहीं,
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही ॥७॥
रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहुकाल तक बहु बार जब जगता भ्रमण मैंने किया ।
हा खो गया वह भी विवश मैं नींद आलस के रहा,
अब बोलिए उसके लिए रोउँ प्रभो ! किसीके यहाँ ? ॥८॥
संसार ठगने के लिए वैराग्य को धारण किया,
जगको रिझाने के लिए उपदेश धर्मों का दिया ।
झगड़ा मचाने के लिए मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊँ हे प्रभो ! अपनी हँसी ॥ ॥९॥
परदोष को कह कर सदा मेरा वदन दूषित हुआ,
दिख कर पराई नारियों को हा नयन दूषित हुआ ।
मन भी मलिन है सोच कर पर की बुराई हे प्रभो,
किस भाँति होगी लोक में मेरी भलाई हे प्रभो ॥१०॥
मैंने बढ़ाई निज विवशता हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई उत्पन्न जो दुख–राक्षसी ।
हा ! आपके सम्मुख उसे अतिलाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ ! हो सब जानते स्वयेमव संसृतिकी क्रिया ॥११॥
अन्यान्य मन्त्रों से परम परमेष्ठि–मंत्र हटा दिया,
सच्छास्त्रवाक्यों को कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया ।
बिधि–उदयको करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया ।
हे नाथ यों भ्रमवश अहित मैंने नहीं क्या क्या किया ॥१२॥
हा तज दिया मैंने प्रभो ! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञान–वश मैंने किया फिर देखिए किस पाप को ।

वामाक्षियों के कुच-कटाक्षों पर सदा मरता रहा,
उनके विलासों के हृदयमें ध्यान को करता रहा ॥१३॥
लच कर चपलदृग-युवतियों के सुख मनोहर रसमई,
जो मन-पटलपर राग भावों की मलिनता बस गई।
वह शास्त्रनिधि के शुद्ध जल से भी न क्यों धोई गई ?
बतलाइए यह आप ही मम बुद्धि तो खोई गोई ॥१४॥
मुझमें न अपने अंग के सौन्दर्य्य का आभास है,
मुझमें न गुणगण है विमल, न कलाकलाप-विलास है।
प्रभुता न मुझमें स्वप्न को भी चमकती है, देखिए,
तो भी भरा हूँ गर्व से मैं मूढ़ हो किसके लिए ॥१५॥
हा नित्य घटती आयु है पर पाप-मति घटती नहीं,
आई बुढ़ौती पर विषय से कामना हटती नहीं।
मैं यत्न करता हूँ दवा में, धर्म में करता नहीं,
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ नाथ ! बच सकता नहीं ॥१६॥
अघ, पुण्य को, भव, आत्म को मैंने कभी माना नहीं,
हा आप आगे हैं खड़े दिननाथ से यद्यपि यहीं।
तो भी खलो के वाक्य को मैंने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है, गया मम जन्म ही मानों वृथा ॥१७॥
सत्पात्र-पूजन देव-पूजन कुछ नहीं मैंने किया,
मुनिधर्म श्रावकधर्मका भी नहिं सविधि पालन किया।
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वन में व्यर्थ ही रोता रहा ॥१८॥
प्रत्यक्ष सुखकर जैनमत में प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ ! मेरी देखिये है मूढ़तम् भारी यही।
हा ! कामधुक कल्पद्रुमादिकके यहाँ रहते हुए,
हमने गँवाया जन्म को धिक्कार दुःख सहते हुए ॥१९॥
मैंने न रोका रोग-दुख संभोग-सुख देखा किया,

मनमें न माना मृत्यु–भय धन–काम ही लेखा किया।
हा ! मैं अधम युवतीजनों के ध्यान नित करता रहा,
पर नरक–कारागार से मनमें न मैं डरता रहा ॥२०॥
सद्वृत्ति से मनमें न मैंने साधुता हा साधिता,
उपकार कर के कीर्ति भी मैंने नहीं कुछ अर्जिता।
शुभ तीर्थ के उद्धार आदिक कार्य कर पाये नहीं,
नर–जन्म पारस–तुल्य निज मैंने गँवाया व्यर्थ ही ॥२१॥
शास्त्रोक्त–विधि वैराग्य भी करना मुझे आता नहीं.
खल–वाक्य भी गतक्रोध हो सहना मुझे आता नहीं।
अध्यात्म–विद्या है न मुझमें है न कोई सत्कला,
फिर देव ! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला ? ॥२२॥
सत्कर्म पहले जन्ममें मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्य में उसको करूँगा मैं कहीं।
इस भाँति:का यदि हूँ जिनेश्वर ! क्यों न मुझको कष्ट हों ?
संसार में फिर जन्म तीनों क्यों न मेरे नष्ट हों ? ॥२३॥
हे पूज्य ! अपने चरित को बहुभाँति गाऊ क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी है पापमय मेरी कथा।
क्योंकि त्रिजग के रुप हो तुम, ईश हो, सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो, तुम्हीं मम चित्तके मर्मज्ञ हो ॥२४॥
दीनोद्धारक धीर आप सा अन्य नहीं है,
कृपा–पात्र भी नाथ ! न मुझसा अपर कहीं है।
तो भी माँगूँ नहीं धान्य धन कभी भूल कर,
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न होवे मंगलकर ॥२५॥
श्रीरत्नाकर गुणगान यह दुरित दुःख सबके हरे।
बस एक यही है प्रार्थना मंगलमय जग को करे॥

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी • • पुष्प १९

जगडूशाह

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ वि. | प्रथमावृत्ति | मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
धीरजलाल टोकरशी शाह,
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोळ, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पोरमशाहरोड,
अ म दा वा द

जगड़ूशाह

: १ :

कच्छ-देश में, भद्रेसर नामक एक ग्राम था। इस ग्राम में एक सेठ-सेठानी रहते थे। सेठ का नाम था सोलक और सेठानी का लक्ष्मी। इनके, तीन लड़के हुए। इन लड़कों में से एक का नाम जगड़ू, दूसरे का नाम राज और तीसरे का पद्म था। ये तीनों भाई, बड़े-साहसी, बहादुर और चतुर थे। योग्य-अवस्था होने पर, इन तीनों का विवाह अच्छे-घराने की कन्याओं के साथ कर दिया गया। जगड़ू का यशोमती के साथ, राज का राजल्लदे के साथ और पद्म का पद्मा के साथ विवाह हुआ।

ये लड़के, अभी बीस-वर्ष की अवस्था के भीतर ही थे, कि सोलक-श्रावक का देहान्त होगया। तीनों भाइयों को इससे बड़ा दुःख पहुँचा। किन्तु शोक करने से क्या लाभ हो सकता था ? जगड़ू ने धीरज धारण करके, घर का सारा काम-काज अपने सिर पर उठा लिया।

तीनों-भाइयों में जगड़ू बड़ा चतुर था। उसका दिल बड़ा विशाल तथा हृदय प्रेम से लबालब था। दान करने में तो, उसकी जोड़ी का कोई था ही नहीं। कोई भी दीन-दुःखी अथवा मँगत-भिखारी, उसके दरवाजे आकर खाली हाथ न जाने पाता था।

जगड़ू, यह बात समझता था, कि धन आज है और कल नहीं, अतः उससे लाभ उठा लेना चाहिये। यही कारण था, कि दान देने में वह कभी पीछे नहीं रहता।

धन, धीरे-धीरे कम होने लगा। अब जगड़ू को यह चिन्ता होने लगी, कि—"क्या कभी ऐसा भी समय आसकता है, जब मेरे दरवाजे से किसी याचक को खाली-हाथ जाना पड़े ? हे नाथ ! ऐसा मौका मत लाना।"

जगडू, इसी प्रकार की चिन्ता किया करता था, कि एक दिन उसके भाग्य ने ज़ोर मारा। शहर के दरवाज़े पर, उसने बकरियों का एक झुण्ड देखा। इस झुण्ड में एक बकरी के गले में मणि बँधी हुई थी। मणि बड़ी मूल्यवान थी, किन्तु उस चरवाहे (गवली) का इस बात का क्या पता ? उसने तो काँच समझकर ही, बकरी के गले में बाँध रखी थी।

जगडू ने विचार किया, कि—" यदि यह मणि मुझे मिल जाय, तो संसार में मैं अपने सारे इच्छित-कार्य कर सकूँ। अतः मैं इस बकरी को ही खरीदे लेता हूँ, जिसमें उसे सन्देह भी न हो और मुझे मणि मिल जाय।" यों सोचकर, उसने थोड़े ही दामों में वह बकरी ख़रीद ली। इसके बाद, उसे धन की कोई कमी न रही।

उसने देश-विदेश में व्यौपार करना शुरू किया। पृथ्वी पर तो उसका व्यौपार खूब फैल ही गया, किन्तु समुद्र पर होनेवाले व्यौपार में भी, उस समय वह सब से आगे होगया। दूर-दूर के देशों में, जगडू के जहाज जाते और वहाँ पर माल का लेन-देन करके वापस आते थे।

: २ :

एक बार, जगडूशाह का जयंतसिंह नामक एक मुनीम ईरान देश के होर्मज नाम के बन्दरगाह पर गया। वहाँ उसने समुद्र के किनारे पर एक बड़ी बखारी किराये पर ली। उसके पास की बखारी, खंभात के एक मुसलमान-व्यौपारी ने ली।

कुछ दिनों के बाद, इन दोनों बखारियों के बीच से, एक सुन्दर-पत्थर निकला। जयन्तसिंह कहते थे, कि यह पत्थर हमारा है और वह मुसलमान व्यौपारी उसे अपना बतलाता था। यों कहते-सुनते, आपस में लड़ाई होगई।

मुसलमान ने कहा—इस पत्थर के लिये मैं यहाँ के राजा को, एक-हजार दीनार दूँगा।

जयन्तसिंह बोले—मैं दो-हजार दीनार दूँगा।

मुसलमान ने फिर कहा—मैं चार-हजार दीनार देकर, इस पत्थर को ले लूँगा।

जयन्तसिंह ने कहा—मैं पूरे एक-लाख दीनार इसके बदले में दे दूँगा।

मुसलमान ने कहा—मैं अपनी हठ पूरी करने के लिये इसके बदले में दो-लाख दीनार दे डालूँगा।

जयन्तसिंह बोले—मैं अपने स्वामी की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये, इसके बदले में तीन-लाख दीनार देने से भी नहीं चूकूँगा।

यह सुनकर, वह मुसलमान-व्यौपारी ठण्डा पड़ गया। जयन्तसिंह ने तीन-लाख दीनार देकर, वह पत्थर ख़रीद लिया और उसे जहाज में डालकर, भद्रेश्वर ले आया।

किसी ने जाकर जगड़ूशाह से यह समाचार कहा, कि तुम्हारा मुनीम तो बड़ा कमाऊ है। तीन-लाख दीनार देकर, उनके बदले में एक पत्थर ख़रीद लाया है।

जगड़ूशाह ने उत्तर दिया, कि वह धन्यवाद का पात्र है, जो उसने मेरी इज्जत बढ़ाई।

इस के बाद, जगड़ूशाह बड़ी धूम-धाम से जयन्तसिंह तथा उस पत्थर को अपने घर ले आये। जयन्तसिंह ने सब कथा कह सुनाई और अन्त में कहा, कि—"आपकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये ही मैंने इतना रुपया खर्च कर डाला। अब, आपको जो दण्ड देना उचित प्रतीत हो, मुझे दे सकते हैं।" जगड़ूशाह बोले, कि—"जयन्तसिंह! क्या तुम पागल होगये हो? तुमने तो मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई है,

अतः तुम्हें तो सिरोपाव देना चाहिये, न कि दण्ड।" यों कहकर एक मूल्यवान पगड़ी और मोतियों की माला पुरस्कार में दी।

यह पत्थर, जगड़ूशाह ने अपने घर के आँगन में जड़वा दिया। एक बार, एक जोशी बाबा जगड़ूशाह के यहाँ भिक्षा माँगने आये। उन्हों ने, यह पत्थर देख कर जगड़ूशाह से कहा, कि—"बच्चा! इस पत्थर में बड़े-बड़े मूल्यवान-रत्न हैं, अतः तू इसको तोड़कर उन्हें निकाल ले"। जगड़ूशाह ने, उन के कहने के अनुसार उस पत्थर को तोड़कर, उसमें से वे रत्न निकाल लिये, जिससे उन्हें पैसे की कुछ भी कमी न रही।

: ३ :

जगड़ूशाह के पास, ऋद्धि-सिद्धि तो खूब होगई, किन्तु उनके कोई पुत्र न था। एक कन्या हुई थी, जो विवाह करते ही विधवा होगई। इस से उन्हें बड़ा दुःख पहुँचा। किन्तु इस दुःख के रोने न रोकर, उन्होंने धर्म के कार्य करने शुरू कर दिये और इस तरह अपने आत्मा को शान्ति पहुँचाई।

: ४ :

एक बार पारदेश के पीठदेव नामक राजा ने,

भद्रेश्वर पर चढ़ाई की और शहर को बरबाद कर दिया। बहुत–सा धन-माल लूटकर, अन्त में वह अपने देश को वापस लौट गया। यह देखकर, जगड़ूशाह ने फिर से भद्रेश्वर का क़िला बनाना शुरू किया।

अभिमानी पीठदेव ने जब यह समाचार सुना, तो उसने जगड़ूशाह को कहला भेजा, कि—“ यदि गधे के सिर पर सींग उगना सम्भव हो, तो तुम इस क़िले को बनवा पाओगे, अन्यथा कभी नहीं ”।

जगड़ूशाह ने उत्तर दिया, कि—“ गधे के सिर पर सींग उगाकर ही मैं इस किले को बनवाऊँगा ”। इस के बाद, पीठदेव की ज़रा भी परवाह किये बगैर ही उन्होंने किले का काम जारी रखा। क़िले की दीवार में उन्होंने एक गधा खुदवाया और उसके सिर पर दो सोने के सींग रखवाये। अब तो बड़े के साथ वैर होगया था, अतः चेतकर रहने की आवश्यकता थी। इसी विचार से जगड़ूशाह, गुजरात के राजा विमलदेव से जाकर मिले और उन्हें सारा हाल सुनाकर उनसे एक बड़ी–सेना ले आये। इस सेना के आजाने का समाचार पाकर, पीठदेव

चुप हो रहा और उसने आकर जगड़ूशाह से सन्धि कर ली।

: ५ :

जगड़ूशाह के पास अपार-धन था, किन्तु फिर भी उनमें अभिमान का नाम न था। प्रभु-पूजा और गुरु-भक्ति में भी वे एक ही थे। एक बार गुरु-जी ने उनसे कहा, कि—"जगड़ू! तीन-वर्ष का भयङ्कर-अकाल पड़नेवाला है, अतः तुम अपने धन का अधिक से अधिक सदुपयोग करना"। जगड़ूशाह से इतना कह देना ही काफी था। उन्होंने, देश-विदेश के प्रत्येक बड़े-बड़े शहरों में, अनाज ख़रीद-ख़रीदकर कोठे भरवा दिये और उन पर लिखावा दिया—"गरीबों के लिये"।

ठीक संवत तेरह सौ तेरह का प्रारम्भ होते ही भयङ्कर-दुष्काल पड़ा। लोग, अन्न-अन्न चिल्लाकर मरने लगे। यह दुष्काल तीन-वर्ष तक रहा। इन तीन वर्षों में से भी संवत तेरह सौ पन्द्रह के साल में तो यह चरम-सीमा पर जा पहुँचा था। 'तेरह सौ पन्द्रह' के अकाल के नाम से यह अकाल मशहूर है। कहा जाता है, कि इसके बाद फिर कभी वैसा दुष्काल

नहीं पड़ा। उस समय, महँगाई की यह दशा थी, कि चार–आने के सिर्फ तेरह–चने मिलते थे। अपने बच्चों को भूनकर खाने के–से बीभत्स–कार्य के उदाहरण भी इसी समय मिलते हैं।

ऐसे भयङ्कर–दुष्काल में से बचाने के लिये, जगड़ूशाह ने देश–देश के राजाओं को अनाज उधार दिया। किसी को बारह–हजार बोरी, किसी को अठारह–हजार बोरी, किसी को इक्कीस–हजार और किसी को बत्तीस–हजार बोरी। इस तरह, नौलाख और निन्नानवेहजार बोरी अनाज उन्होंने राजालोगों को उधार दिया।

किन्तु, वीरों का साहस क्या इतना ही कर के समाप्त होसकता है? जगड़ूशाह ने इसके बाद एक–सौबारह सदाव्रतशालाएँ खोलीं, जिनमें सदैव पाँच–लाख मनुष्य भोजन करते।

इस मौके पर, उन्होंने खुले हाथ होकर इतना अधिक दान दिया, कि लोग उन्हें कुबेर कहने लगे। वास्तव में, जगड़ूशाह की यह उदारता धन्य है।

उनकी इस उदारता ने, समस्त जैन–धर्म को संसार में चमकाया। लोगों को यह बात मालूम होगई,

कि जैन शब्द का वास्तविक अर्थ है–जगतभर की दया पालनेवाला।

उन्होंने, तीन–बार बड़े–बड़े संघ निकालकर पवित्र–तीर्थ शत्रुंजय की यात्राएँ कीं। भद्रेश्वर का बड़ा–मन्दिर बनवाया और अन्य भी अनेक छोटे–बड़े मन्दिरोंकी रचना करवाई। कहाजाता है, कि उन्होंने कुल एकसौआठ मन्दिर बनवाये।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने भद्रेश्वर में खीमली नामक एक मस्जिद भी बनवाई। यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है, कि जगड़ूशाह के समान धार्मिक–मनुष्य ने यह मस्जिद क्यों बनवाई? तो उत्तर यह है, कि जगड़ूशाह एक बहुत–बड़े व्यौपारी थे। उनके यहाँ देश–विदेश से व्यौपारीलोग आया करते थे। इन व्यौपारियों में, बहुत–से मुसलमान–व्यौपारी भी होते थे। इन लोगों को, नमाज़–बन्दगी आदि कार्यों में मस्जिद के बिना बड़ी अड़चन पड़ा करती थी। अपने घर पर आये हुए मिहमान को यदि किसी प्रकार की असुविधा पड़े, तो घरवाले का गृहस्थ–धर्म नष्ट होता है। यही सोचकर उन्होंने मस्जिद बनवाई थी। इसी मस्जिद में जाकर उनके सब मुसलमान–मिहमान खुदा की बन्दगी किया करते थे।

गुजरात के कुबेर जगड़ूशाह, इसी प्रकार बड़े-बड़े कार्य कर चुकने पर, स्वर्ग लोक को चले गये।

यह समाचार सुनकर, सारे देश में दुःख छा-गया। राजालोगों के नेत्रों में से भी आँसू गिर पढ़े। जगड़ूशाह के भाई, इस समय बड़ा दुःख करने लगे, किन्तु गुरूजी के उपदेश को सुनकर, उनके हृदयों को शान्ति मिली।

इस काल में, जगड़ूशाह के समान और कोई दान-वीर नहीं हुआ।

यदि धन मिले, तो जगड़ूशाह के समान ही सात्विक-भावनाएँ भी मिलें।

शिवमस्तु सर्वजगतः

मेरी भावना।

[राष्ट्रीय नित्यपाठ]

(१)

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्षमार्गका निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह चित्त उसीमें लीन रहो॥

(२)

विषयोंकी आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हित-साधनमें जो निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या विना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके दुखसमूहको हरते हैं॥

(३)

रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्यामें यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूठ कभी नहि कहा करूँ,
परधन-[1]वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूं॥

(४)

अहंकारका भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरोंकी बढ़तीको कभी न ईर्षा-भाव धरूँ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहाँतक इस जीवनमें औरोंका उपकार करूँ॥

---

१ स्त्रियाँ 'वनिता' की जगह 'भर्त्ता' पढ़े।

(५)

मैत्रीभाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उरसे करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥

(६)

गुणीजनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड आवे,
बने जहाँतक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥

(७)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्गसे मेरा कभी न पद डिगने पावे॥

(८)

होकर सुखमें मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवीसे नहिं भय खावे।
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन, दृढतर बन जावे,
इष्टवियोग-अनिष्टयोगमें सहनशीलता दिखलावे॥

(९)

सुखी रहें सब जीव जगतके, कोई कभी न घबरावे,
वैर-पाप-अभिमान छोड जग नित्य नये मंगल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्मकी, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना मनुज-जन्मफल सब पावें॥

(१०)

ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी न्याय प्रजाका किया करे।
रोग मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्तिसे जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगतमें, फैल सर्वहित किया करे॥

(११)

फैले प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं कोई मुखसे कहा करे।
बनकर सब 'युग वीर' हृदयसे देशोन्नतिरत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशीसे सब दुख-संकट सहा करें॥

हिन्दी बालग्रंथावली प्रथम श्रेणी • • पुष्प २०

धर्म के लिये प्राण देनेवाले महात्मागण

: लेखक :

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह.

: अनुवादक :

श्री भजामिशङ्कर दीक्षित.

ज्योति कार्यालय
अहमदाबाद

संवत १९८८ वि. } प्रथमावृत्ति { मूल्य डेढ़-आना

: प्रकाशक :
धीरजलाल टोकरशी शाह,
ज्योति कार्यालय :
हवेली की पोल, रायपुर,
अहमदाबाद.

सर्वाधिकार-सुरक्षित

मुद्रक :
'श्रीसूर्यप्रकाश प्री. प्रेसमां
पटेल मूलचन्दभाई त्रिकमलाले
छाप्युं पीरमशाहरोड,
अ ह म दा बा द

धर्म के लिये प्राण देनेवाले महात्मागण

१–धर्मरुचि अणगार

नागिला नामक ब्राह्मणी ने, भाँति–भाँति के भोजन बनाये। तेज़ और चरपरे साग तयार किये, जिनमें तूँबे का साग बनाते समय यह न देखा, कि तूँबा मीठा है या कड़ुआ। सब साग तयार होजाने पर, जब उनमें से एक–एक टुकड़ा चखा, तो उसे मालूम होगया, कि मैंने कड़ुए–तूँबे का साग बना डाला है, जिसे कोई भी न खा पावेगा। अतः उसने इस साग का बर्तन उठाकर एक तरफ रख दिया। भोजन का समय होने पर, सब आये और भोजन कर गये।

इतने ही में 'धर्मलाभ' कहते हुए, धर्मरुचि नामक एक साधु उसके यहाँ भिक्षा लेने आये। वे, एक–मास से उपवास कर रहे थे। नागिला ने सोचा, कि–"लाओ यह साग इन साधुजी को ही क्यों न दे दूँ, मेरे यहाँ बाहर डालने

को अब कौन जाता है "। यों सोचकर, उसने वह सब साग श्री धर्मरुचिजी को बहरा दिया।

धर्मरुचिजी, यह आहार लेकर अपने गुरु धर्मघोष मुनि के पास आये। उस आहार को सूँघकर गुरुजी ने धर्मरुचिजी से कहा, कि—" हे शिष्य! तुम इस आहार का उपयोग मत करो, नहीं तो यह तुम्हारे प्राण ले लेगा। जहाँ कीड़े-मकोड़े आदि जीव न हों, वहाँ जाकर इसे परठ आओ और भविष्य में फिर ऐसा आहार मत लाना।"

धर्मरुचिजी, उस आहार को परठने के लिये गाँव से बाहर चले। वहाँ पहुँचने पर, साग के रस की एक बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। इस बूँद की सुगन्धि से लुभा, बहुत-सी चींटियें वहाँ आकर उससे चिपट गईं। तत्क्षण वे सब मर गईं। यह देखकर, धर्मरुचि मुनि ने विचार किया, कि—"अहो! इस साग की एक ही बूँद से इतने अधिक जीवों की मृत्यु होगई, तो इस सब साग के जमीन पर पड़ने से कितने अधिक जीवों का संहार होगा? अतः यही उचित है, कि मैं ही इसे खाकर मर जाऊँ। मेरे मरने से, बहुत-से जीव बच जावेंगे।" यों सोचकर, वे सब साग स्वयं खागये और संसार के सब जीवों से क्षमा माँगकर, ध्यान लगा लिया। थोड़ी ही देर में ज़हरीले साग के प्रभाव से मुनिराज का शरीर छूट गया। अन्त-समय तक शुभ-भावना रखने के कारण, वे देवलोक को गये।

इस सीमा तक अहिंसा-व्रतका पालन करनेवाले, कितने महात्मा होंगे ?

२—गजसुकुमाल

श्री नेमिनाथ, मधुर-वाणी से उपदेश दे रहे थे। वहाँ, श्रीकृष्ण महाराज के छोटे भाई गजसुकुमाल आये। उन्होंने भी वह उपदेश सुना, जिससे उन्हें वैराग्य होगया। अतः वे अपनी माता देवकीजी के पास गये और उनसे दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी। देवकीजी ने उन्हें बहुत कुछ समझाया, कि-" बेटा! अभी तुम्हारी उमर बहुत कम है और संयम का पालन करना बड़ा कठिन-कार्य है। वह तुमसे पल नहीं सकता, अतः तुम अभी यह इच्छा छोड़ दो।" किन्तु गजसुकुमाल की भावनाएँ बड़ी दृढ़ थीं, अतः वे अपने विचारों पर स्थिर रहे। अन्त में देवकी ने अपनी आज्ञा देदी और गजसुकुमाल ने दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा लेने के पश्चात्, उन्होंने भगवान से कहा, कि-" प्रभो! मोक्ष शीघ्र मिल जाय, ऐसा कोई उपाय बतलाइये "। प्रभु श्री नेमिनाथजी ने उत्तर दिया, कि-" ध्यान धरकर खड़े रहो और मन, वचन तथा काया को अच्छी तरह पवित्र बनाओ "।

गजसुकुमाल ने, स्मशान में जाकर ध्यान लगाया।

इसी समय, गजसुकुमाल का ससुर सोमल ब्राह्मण, वहाँ होकर निकला। उसने, गजसुकुमाल को इस दशा में देखा, अतः वह खूब नाराज़ हुआ और दाँत पीसकर बोला, कि-" अरे? तूने तो मेरी लड़की की ज़िन्दगी ही ख़राब कर डाली! यदि तुझे उससे विवाह ही न करना था, तो फिर उसके साथ अपनी सगाई क्यों की?"। यों कहते-कहते, उसका क्रोध बहुत बढ़ गया। वह, इस विचार से, कि-" मैं अब इस गजसुकुमाल को कौनसा दण्ड दूँ " क्रोध में पागल-सा हो उठा। जब, उसके क्रोध की कोई सीमा ही न रही, तब उसने पास ही जलते हुए अङ्गारों को मिट्टी के घड़े के एक ठीकरे में भरकर, उस ठीकरे को गजसुकुमाल के सिरपर रख दिया।

गजसुकुमाल का हृदय, क्षमा का सरोवर था। उनका शरीर चाहे जले, किन्तु मन ऐसा था, कि उस पर ज़रा भी आँच नहीं लग सकती थी। इस कष्ट से दुःखी होने के बदले वे उलटे यह विचार करने लगे, कि—" कोई ससुर तो बीस ही पचीस रुपये की पगड़ी बँधवाते होंगे, किन्तु इस ससुर ने तो ऐसी पगड़ी बँधवाई है, जिसके द्वारा मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है। ऐ जीव? शान्तिपूर्वक इस प्रसंग को सहन कर ले, ऐसे मौके बार-बार नहीं आया करते।" यों विचार करते-करते, उनके हृदय में क्षमा का प्रवाह प्रबल हो उठा, समता की भावना और भी अधिक बढ़ने लगी और इसी दशा में उन्हें केवलज्ञान होगया।

सिर पर रखे हुए अंगारों की गर्मी के कारण, थोड़ी ही देर में उनका शरीर छूट गया और वे मोक्ष को पधार गये।

हे नाथ ! ऐसे क्षमासागर की क्षमाभावना हमारे हृदय में भी उत्पन्न हो।

३—अवन्तिसुकुमाल

उज्जयिनी नगरी में, चढ़ती जवानीवाला एक बाल–श्रीमन्त रहता था। वह, बत्तीस–स्त्रियों का पति और बड़े धन–माल का स्वामी था। उसके पिता धनदत्त सेठ की मृत्यु होजाने के कारण, उसकी भद्रामाता घर का सारा कारोबार चलाती थीं।

एक समय आर्यमहागिरि महाराज नामक एक मुनिराज, भद्रा सेठानी के बरामदे में उतरे। वहाँ एक बार सब साधु मिलकर, नलिनीगुल्म विमान की सज्झाय पढ़ने लगे। अव-न्तिसुकुमाल ने जब यह सज्झाय सुनी, तो उन्हें ऐसी याद आने लगी, कि मैंने कहीं पर ऐसा अनुभव किया है। अतः वे गुरुजी के पास आये और हाथ जोड़कर बोले, कि —"गुरु महाराज ! ऐसा सुख किस तरह मिल सकता है, यह मुझे बतलाने की दया कीजिये"। गुरु महाराज ने उत्तर दिया, कि—"जो शुद्ध–चारित्र्य पालते हैं, वे मोक्ष को जाते हैं और जो मोह सहित चारित्र्य पालते हैं, वे देवलोक

को जाते हैं "। अवन्तिसुकुमाल ने प्रार्थना की, कि—" तो आप मुझे दीक्षा दे दीजिये "। गुरुदेव ने उत्तर दिया, कि— " तुम यदि अपनी माता की आज्ञा ले लो, तो हमें दीक्षा देने में कोई आपत्ति नहीं है "।

अवन्तिसुकुमाल माता के पास गये और उनसे दीक्षा के लिये आज्ञा माँगी। माता यह सुनकर बड़ी दुःखी हुई और स्त्रियों को भी इससे बड़ा अफसोस हुआ। किन्तु, अन्त में समझ लेने के बाद, उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी।

दीक्षा ले चुकने पर, अवन्तिसुकुमाल ने गुरु से प्रार्थना की, कि—" गुरुदेव ! मुझे तो वही मार्ग ग्रहण करना है, जिससे अत्यन्त शीघ्र मोक्ष प्राप्त होजाय। अतः यदि आप आज्ञा दें, तो मैं थूहर के वन में जाकर अनशन करूँ।" गुरुदेव ने फरमाया, कि—" जिससे तुम्हें सुख मिले, वह करो "।

गुरु की स्वीकृति लेकर, अवन्तिसुकुमाल चले और नगर से थोड़ी ही दूरी पर, थूहर के एक भयानक-वन में पहुँचे। इस वन में प्रवेश करते ही, उनके पैर में थूहर का एक ज़बरदस्त काँटा चुभ गया, जिसके कारण पैर से रुधिर की धार बह चली। किन्तु अवन्तिसुकुमाल ने अपने हृदय में इसके लिये किंचित भी दुःख न माना। उन्होंने अनशन (उपवास) प्रारम्भ किया।

उन्हें, अनशन व्रत धारण किये अभी थोड़ी ही देर हुई थी, कि उनके पैर से निकलनेवाले खून की गन्ध पाकर, एक सियारनी वहाँ आ पहुँची। यह सियारनी नई बियाई हुई और बहुत भूखी थी, अतः वहाँ पहुँचते ही वह अवन्तिसुकुमाल का पैर चबाने लगी। कैसा भारी संकट! किन्तु जिनका मन मजबूत है, उनके लिये ऐसे कष्ट क्या चीज़ हैं? अवन्तिसुकुमाल, इस समय भी ध्यान में ही खड़े रहे।

सियारनी, काट-काटकर मांस खाने लगी और थोड़ी ही देर में उस ने एक पैर खा डाला। किन्तु अवन्तिसुकुमाल अपने ध्यान से ज़रा भी न डिगे। थोड़ी ही देर के बाद उसने दूसरा पैर भी चबा डाला, किन्तु अवन्तिसुकुमाल ने न तो अपने मन में ज़रा-सा दुःख ही माना और न मुँह से 'आह' ही निकाली। केवल शुभ-ध्यान, शुभ-चिन्तन और शान्त-भावना उनके हृदय में थी।

सियारनी तो आज खाऊँ-खाऊँ कर ही रही थी, अतः वह इतने से क्यों अघाने लगी? उसने पेट खाया, छाती खाई और अन्त में सिर भी चबा गई। शाम पड़ते-पड़ते, वहाँ केवल हड्डियें ही हड्डियें बाक़ी रह गई।

शूरवीर अवन्तिसुकुमाल, अपने स्थिर-ध्यान के कारण नलिनीगुल्म नामक विमान में उत्पन्न हुए।

दूसने दिन का सबेरा हुआ, अतः भद्रामाता तथा अव-

न्तिसुकुमाल की स्त्रियें, आर्यमहागिरि महाराज के दर्शन करने आईं। वहाँ आकर, उन्होंने अवन्तिसुकुमाल के समाचार पूछे, जिसके उत्तर में मुनिजी ने कहा, कि—" अवन्ति-सुकुमाल ने थूहर के वन में जाकर अनशन-व्रत किया है "। यह सुनकर, माता तथा स्त्रियें उन्हें वन्दन करने के लिये थूहर के वन में गईं। वहाँ पहुँचकर वे देखती हैं, कि सुन्दर-कुमार के स्थान पर खून से भीजी हुई कुछ हड्डियें पड़ी हैं। यह देखते ही भद्रा बेहोश होगई और स्त्रियें फूट-फूटकर रोने लगीं। किन्तु इस से क्या लाभ हो सकता था? अन्त में, इस दृश्य पर विचार करते-करते उन सब को भी वैराग्य हो-गया और माता तथा इकतीस-स्त्रियों ने दीक्षा ले ली। केवल एक गर्भवती-स्त्री शेष रही।

इस गर्भवती-स्त्री के एक पुत्र हुआ। उसने अपने पिता की मृत्यु के स्थान पर, उनकी यादगार के लिये, महाकाल नामक एक सुन्दर-मन्दिर बनवाया। आज भी, उज्जैन से थोड़ी दूरी पर अवन्ति-पार्श्वनाथ के नाम से यह मन्दिर मौजूद है। हजारों-यात्री वहाँ जाकर इस कथा को सुनते हैं और समता के भण्डार अवन्तिसुकुमाल की प्रशंसा करते हैं।

हम लोगों से, इस महापुरुष के अपार गुण किस तरह गाये जा सकते हैं?

४—मुनि श्री मेतार्य

ठीक दोपहर का समय, गर्मी के दिन होने से आग के समान गर्मी बरस रही थी। इसी समय, राजगृही नगरी में एक–मास का उपवास किये हुए एक साधु, भिक्षा के लिये निकले। धीमी–चाल से, नीचे की तरफ दृष्टि किये हुए, वे एक सुनार के घरके सामने पहुँचे। वह सुनार, हार बनाने के लिये, सोने की गुरिया तयार कर रहा था। मुनिराज को अपने घर के सामने आते देख, वह बड़ा प्रसन्न हुआ और दोनों हाथ जोड़-कर प्रार्थना करने लगा, कि—"हे मुनिराज! मेरा आँगन पवित्र करिये, और मेरे यहाँ से भिक्षा ग्रहण कीजिये"। 'धर्मलाभ' बोलकर, मुनिराज उसके घर में पधार गये।

सुनार, सोने की गुरियाएँ जहाँ की तहाँ छोड़कर, रसोई में गया और भिक्षा देने की तयारी करने लगा। इसी समय, वहाँ एक क्रौंचपक्षी आया और उन सोने की गुरियाओं को निगल गया। उन्हें खाकर, वह पास ही के एक वृक्ष की डाली पर जा बैठा। मुनिराज, यह दृश्य देखते रहे।

सुनार, रसोई में से मोदक–मिठाई आदि का थाल लेकर बाहर निकला और बड़ी उच्च–भावना से मुनिराज को वह भिक्षा बहराई। भिक्षा लेकर मुनिराज चल दिये। इधर सुनार दूकान पर आया। वहाँ आकर देखता है, तो सोने की गुरि-याओं का पता नहीं। उसे आश्चर्य हुआ, कि यहाँ से सोने की

गुरियाएँ कहाँ चली गईं ? उसके हृदय में इससे भारी धक्का लगा। उसने इधर-उधर सब जगह देखा, किन्तु कहीं भी उनका पता न चला। उसे ऐसा सन्देह हुआ, कि अवश्य ही वे साधुजी गुरियाओं को उठा लेगये । अतः उन्हें पकड़कर, उनकी तलाशी लेने का उसने निश्चय किया।

मुनिराज तो एक महीने के उपवासी थे ही, अतः वे अभी तक आँगन से बाहर भी न निकल पाये थे। सुनार ने उन्हें पकड़कर खड़े किया और पूछा, कि-"सोने की गुरियाएँ कहाँ हैं ?"। मुनिराज ने विचार किया, कि यदि मैं क्रौंच-पक्षी की बात कहता हूँ, तो उस बेचारे के प्राण जावेंगे, अतः शान्त रहना ही उचित है। उन्होंने सुनार के प्रश्न का कोई उत्तर न दिया, जिससे उसकी शंका और भी पुष्ट होगई। उसने दो-तीन बार मुनि से पूछा, किन्तु कुछ भी जवाब न मिला। अब तो सुनार के क्रोध की सीमा न रही। पास ही एक गीले-चमड़े का टुकड़ा पड़ा था, उसे कसकर मेतार्य मुनि के सिरपर बाँध दिया। किन्तु मेतार्यमुनि तो समता के भण्डार जो ठहरे, वे कुछ भी न बोले।

सुनार ने उन्हें पकड़कर धूप में बैठा दिये, फिर भी वे शान्त ही बने रहे। धूप की गर्मी से वह चमड़ा सिकुड़ने लगा, जिससे उनके सिर में पीड़ा बढ़ने लगी। इस कष्ट के समय, अत्यन्त धैर्य के साथ उन्होंने अपने मन में कहा, कि-"हे जीव! सिर पर पड़ा हुआ दुःख शान्तिपूर्वक सहन

कर ले, उससे ज़रा भी भय मत खा "। यों विचार करते ही करते, उनका मन पवित्र होने लगा और थोड़ी ही देर में वह इस सीमा तक पवित्र होगया, कि उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होगई।

इधर गर्मी से वह चमड़ा बहुत सिकुड़ गया और उसके दबाव से मेतार्यमुनि की दोंनों आखें बाहर निकल पड़ी तथा खोपड़ी भी फट गई। समता के सागर मेतार्य मुनिराज निर्वाण-पद को प्राप्त होगये।

इसी समय, वहाँ आकर एक लकड़हारिनि ने अपना लकड़ी का बोझ धड़ाम–से जमीन पर पटका। इस अचानक धड़ाके से क्रौंचपक्षी डर उठा और उसने बीट कर दी। सुनार ने देखा, कि उस बीट में सोने की गुरियाएँ मौजूद हैं। यह देखकर, वह काँप उठा और सोचने लगा, कि–" मुझ दुष्ट ने यह क्या किया ? निर्दोष–मुनिराज के प्राण अकारण ही क्यों ले लिये ? किन्तु अब क्या होसकता है ? यदि राजा को यह बात मालूम होगई, तो वह मुझे अवश्य ही प्राण–दण्ड देगा।"

यों सोचकर, उसने उन्हीं मुनिराज के कपड़े पहन लिये और साधु बनकर चल दिया। फिर अत्यन्त–कठिन संयम का पालन करके, उसने अपने आत्मा का कल्याण किया।

सच है: " मेतार्य मुनिवर ! धन्य–धन्य तुम अवतार !"

५—सुकोशल मुनि

राजर्षि कीर्तिधर तथा उनके पुत्र राजर्षि सुकोशल, दोनों एक भयंकर-वन में होकर जारहे थे। वहाँ, अचानक एक सिंहनी दिखाई दी। भला ऐसा कौन-सा मनुष्य होगा, जो इसके सामने से भागकर अपने प्राण बचाने का प्रयत्न न करता? किन्तु इन राजर्षियों ने तो भागने का प्रयत्न ही न किया और उलटे आपस में यों विचार करने लगेः—

राजर्षि कीर्तिधर बोले—"सुकोशल! तुम पीछे रहो, पहले मुझे संकट सहने दो"।

राजर्षि सुकोशल ने उत्तर दिया—"क्षमाश्रमण! आप यह क्या कह रहे हैं? मैं तो संकट को कभी गिनता ही नहीं। क्या लड़ने के लिये निकला हुआ योद्धा कभी पीछे को पैर रख सकता है? अतः कृपा करके मुझे ही यह उपसर्ग सहन करने का मौका दीजिये।"

यों कह, सुकोशल मुनि आगे आकर खड़े हो गये और इष्टदेव का ध्यान करके अपने हृदय में विचारने लगे, कि —"हे जीव! इस शरीर ही के मोह के कारण तू अनन्त-काल तक संसार में भ्रमण करता रहा है, अतः अब तो इसका मोह छोड़ दे और सब जीवों को समान गिनकर उनसे क्षमा माँग"। फिर वे मन ही मन में बोलेः—

खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमन्तु मे।

मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥

अर्थात्—मैं, संसार के सब जीवों से क्षमा माँगता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरी सब प्राणियों के साथ मित्रता है, किसी से भी मेरा वैर नहीं।

इतने ही में, सिंहनी ने छलाँग मारी और सुकोशल मुनि के शरीर पर गिरी। वह, अपने भयङ्कर–पंजों तथा विकराल-दाँतों से उनका शरीर फाड़ने लगी। किन्तु, इस समय भी राजर्षि सुकोशल शान्त-दशा में रहकर, अपने हृदय को पवित्र बना रहे थे। थोड़े ही समय में वह पवित्रता अन्तिम–सीमा तक पहुँच गई और उन्हें केवलज्ञान होगया।

सिंहनी ने उनका शरीर खा डाला और वे निर्वाणपद को प्राप्त होगये। राजर्षि कीर्तिधर बच गये, अतः उन्होंने कठिन–तपस्या करके, उसके प्रभाव से मोक्ष प्राप्त किया।

धन्य है आदरणीय-वीर सुकोशल को !

६--खन्धक मुनि के पाँच-सौ शिष्य

बीसवें–तीर्थङ्कर प्रभु मुनिसुव्रत से, राजपुत्र खन्धक ने पाँच–सौ मनुष्यों सहित दीक्षा ली और फिर धर्म का खूब अध्ययन करने लगे। थोड़े ही समय में वे बड़े ज्ञानी होगये, अतः भगवान ने उन्हें पाँच–सौ मुनियों के आचार्य बना दिये।

एक बार उन्होंने अपने बहनोई को उपदेश देने के लिये, कुंभारकट नगर जाने की आज्ञा, भगवान से माँगी।

भगवान बोले, कि-" वहाँ जाने में तुम्हारे सब की जान का ख़तरा है "। खन्धकाचार्य ने फिर पूछा, कि—" किन्तु इससे हमारा कल्याण होगा या नहीं ? "। भगवान ने फ-रमाया, कि-"तुम्हारे अतिरिक्त और सब का कल्याण होगा"।

खन्धकाचार्य ने कहा, कि—" सब का कल्याण होने पर, मैं अपना ही कल्याण समझूँगा। "। वे पाँच-सौ साधुओं को साथ लेकर, कुंभारकट नगर के पास आये।

कुंभारकट नगर का राजा दण्डक था। उसके प्रधान का नाम था-पालक। एक बार व मंत्री, राजकुमार खन्धक के शहर को गया था, जहाँ वाद-विवाद में खन्धक ने उसे हरा दिया था। इसी कारण, उसके हृदय में खन्धक के प्रति शत्रुता के भाव थे। यों तो वह साधुमात्र का शत्रु था ही, उसमें फिर खन्धकाचार्य को देखकर तो उसके वैर की अग्नि और भड़क उठी। वह, किसी भी तरह इन साधुओं को ठिकाने लगाने का उपाय सोचने लगा।

खन्धकाचार्य जिस बागमें ठहरनेवाले थे, उसमें उसने बहुत-से हथियार गड़वा दिये।

खन्धकमुनि, अपने शिष्यों सहित उसी बाग में आकर ठहरे। वहाँ, राजा, प्रधान तथा सब रिआया उनका उपदेश सुनने आई। इसके बाद, रात्रि के समय पालक प्रधान ने, राजा से जाकर कहा, कि-" महाराज ! यह खन्धक तो बड़ा

बगुलाभगत जान पड़ता है। साधुओं के वेश में अच्छे अच्छे सिपाहियों को लाया है। इन्हीं योद्धाओं की मदद से वह आपका राज्य छीनना चाहता है। यदि आपको इसका विश्वास करना हो, तो जहाँ वे साधुलोग ठहरे हैं, उस जगह को खुदवा डालिये, फिर अपने आप ही आपको सब हाल मालूम होजावेगा!"

दण्डक राजा ने उस जगह को खुदवाया, तो वहाँ बहुत-से हथियार निकले। हथियारों को देखते ही राजा को बड़ा क्रोध आया। उसने प्रधान को आज्ञा दी, कि—" इन दुष्टों को जो उचित जान पड़े, वह दण्ड दो। इनके लिये अब मुझसे कुछ भी न पूछना।"

पालक प्रधान की चाल सफल हो गई। उसने मनुष्यों को मारनेवाला कोल्हू तयार करवाया और उसे बाग में लगवा दिया। फिर खन्धकाचार्य को यह हुक्म सुनाया, कि राजा के अपराधी होने के कारण, आप लोगों को कोल्हू में डालकर पेल डाला जावेगा।

यह हुक्म सुनाकर, उसने तत्क्षण अपना नीच-कार्य शुरू कर दिया। खन्धकाचार्य, प्रत्येक साधु को अन्तिम-समय में शान्त रहने का उपदेश देने लगे। एक-एक साधु शान्ति धारण कर के इष्टदेव का नाम स्मरण करता हुआ कोल्हू पर जाकर खड़ा होता और पालक प्रधान उसे पेलकर बड़ा प्रसन्न होता। इस तरह चार-सौ निन्नानवे साधुओं के प्राण उसने

ले लिये। अन्तिम सब से छोटे एक साधु, जब कोल्हू पर लाकर खड़े किये गये, तब खन्धकाचार्य का हृदय दया से भर आया। उन्होंने पालक से कहा, कि–"महानुभाव! पहले मुझे पेल डाल, जिसमें इस बाल–साधु की हत्या मुझे न देखनी पड़े। मेरा इतना कहना मान जा।" पालक प्रधान तो वह कार्य करना ही चाहता था, जिससे उन्हें दुःख पहुँचे। अतः उसने इनके कहने की तरफ ध्यान न देकर उन बाल–मुनि को कोल्हू में डलवाया और खन्धकाचार्य के देखते ही देखते उन्हें पेल डाला। सब मुनिगण, शुद्ध–भाव रखकर मरने से निर्वाणपद को प्राप्त होगये।

अब आचार्य की बारी आई। अन्तिम हत्या देखकर, इस समय उनकी नस–नस में क्रोध व्याप रहा था। अतः अन्तिम-समय में उन्होंने यह इच्छा की, कि–"यदि मेरे जप–तप में कुछ शक्ति हो, तो मैं इस राजा, प्रधान तथा सारे देश का नाश करनेवाला होऊँ"। खन्धक मुनि भी कोल्हू में डालकर पेल डाले गये। कहा जाता है, कि परलोक में जाकर वे अग्निकुमार देव हुए। उन्होंने, दण्डक राजा का सारा देश जलाकर भस्म कर दिया। हरा–भरा और फूला–फला देश उजाड़ हो गया। अब भी वह स्थान दण्डकारण्य के नाम से प्रसिद्ध है।

खन्धकाचार्य के वे पाँच–सौ शिष्य धन्य हैं, जिन्होंने मरने का ढङ्ग जाना।

७-खन्धक मुनि

खन्धक महा-मुनि को बारम्बार नमस्कार। खन्धक मुनि क्षमा के भण्डार थे। श्रावस्ती के राजा कनककेतु उनके पिता और मलयासुन्दरी उनकी माता थीं। एक बार, साधु-मुनिराज उपदेश से उन्हें वैराग्य होगया, अतः दीक्षा ले ली। जिस शुद्ध-भावना से उन्होंने दीक्षा ली थी, उसी तरह संयम का पालन भी करते थे। सदैव कठिन-तपस्या करते और संकट आने पर उन्हें हँसते हुए सहन करते। यों करते-करते, एक दिन वे अपनी बहिन के शहर में आये।

बहिन और बहनोई दोनों छज्जे में बैठे हुए नगर की शोभा देख रहे थे। वहीं बैठे-बैठे उन्होंने दूर से मुनिराज को आते देखा। बहिन ने उन्हें देखते ही पहचान लिया, कि यह तो मेरा प्यारा-भाई मुनिराज के वेश में आ रहा है। वह, मुनिराज के सामने टक-टक देखती और नेत्रों से आँसुओं की धारा बहाती रही।

यह देखकर, राजा के चित्त में बड़ा सन्देह पैदा हो-गया। वह मन ही मन सोचने लगा, कि-" यह कैसा साधु, जिसे देखकर रानी रो रही है? अवश्य ही रानी के साथ इसका अनुचित-सम्बन्ध होगा। अच्छा, तो मैं अभी जाकर इस दुष्ट की खबर लेता हूँ।" राजा वहाँ से उठकर चला और बाहर आकर अपने सेवकों को हुक्म दिया, कि-"उस साधु की जीवित ही चमड़ी उतार लाओ"। सेवकगण दौड़े

और खन्धक मुनि के पास पहुँचकर उनसे कहा, कि–"राजा का यह हुक्म है, कि तुम्हारे शरीर पर से जीते जी चमड़ी उतार ली जावे"। खन्धक मुनिवर ने उत्तर दिया, कि– "वाह! समता की कसौटी का यह कैसा सुन्दर–मौका मिला है। भाई! तुम प्रसन्नतापूर्वक अपने राजा की आज्ञा का पालन करो। किन्तु मुझे यह बतला दो, कि मैं किस तरह खड़ा रहूँ, जिसमें तुम्हें अपना कार्य करने में असुविधा न हो?"

अमृत के प्रवाह की तरह मुनिराज की मीठी वाणी सुनते ही सेवकों के हाथ ढीले पड़ गये। किन्तु उन्हें तत्क्षण राजा के हुक्म की याद हो आई, अतः वे अपना कार्य करने को तयार हुए।

राजसेवकों ने अपनी फरसी तयार की। खन्धक मुनिराज शान्त-भाव से मन में बोलेः—

चत्तारि सरणं पवज्जामि।
अरिहन्ते सरणं पवज्जामि।
सिद्धे सरणं पवज्जामि।
साहू सरणं पवज्जामि।
केवली पन्नतं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अर्थात्—मैं, चार की शरण ग्रहण करता हूँ। अरिहन्त

की शरण ग्रहण करता हूँ, सिद्ध की शरण ग्रहण करता हूँ, साधु की शरण ग्रहण करता हूं और केवली भगवान के कहे हुए धर्म की शरण ग्रहण करता हूं।

बस, इतना बोलकर खन्धक मुनि ने ध्यान लगा लिया।

राजसेवकगण, उनकी चमड़ी उतारने लगे। चमड़ी चर्र-चर्र उतरने लगी, किन्तु मुनीश्वर अपने ध्यान से न डिगे। उन्होंने, अपने मन में किंचित भी बुरा-विचार न आने दिया और समता धारण किये रहे। यों करते-करते, उनके हृदय में समता की इतनी वृद्धि होगई, कि उसी स्थान पर उन्हें केवल-ज्ञान होगया।

इधर, उनके सारे शरीर की चमड़ी उतार ली गई, अतः वे निर्वाण को प्राप्त होगये।

इस हत्याकाण्ड के स्थान पर, चीलें उड़ने और मांस खींच-खींचकर खाने लगीं। इन चीलों में से एक ने खून से भीजी हुई मुँहपत्ती और ओगे को मांस जानकर उठा लिया। योगायोग से ऐसा हुआ, कि कुछ दूर उड़ने के बाद, ये दोनों चीजें उस चील के पैर से छूट गइ और ठीक राजमहल की छत पर गिरीं।

बहिन ने ज्यों ही इन चीजों को देखा, त्यों ही वह सब मामला समझ गई। उसके दुःख का पार न रहा। वह मूर्छा खाकर जमीन पर गिर पड़ी। होश आने पर उसे वैराग्य

होगया, अतः वह दीक्षा लेकर साध्वी बन गई। बहुत दिनों तक पवित्र-जीवन व्यतीत करके, अन्त में वह भी निर्वाणपद को प्राप्त होगई।

पाठको ! एकाध बार शान्त-भाव से श्री खन्धक मुनि की यह सज्झाय गाना, कि:—

नमो नमो खन्धक मुनिवरजी,
पूर्ण क्षमा के सागर जो रे ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः

जैन ज्योति

सम्पादक–

श्री धीरजलाल टोकरशी शाह

गुजराती भाषा में प्रकाशित होनेवाला यह सचित्र और कलामय मासिक जैन समाज में अनोखा ही है। जैन समाज, जैन संस्कृति, साहित्य और जैन शिल्प के बहुमूल्य–लेख इस पत्र में प्रकाशित होते हैं। वार्षिक मूल्य सिर्फ रु. २–८–०। नव मास रु.२–०–०, छह मास रु. १–६–०, एक अंक के चार आने। आज ही ग्राहक बनिये।

—ः तिरंगे-चित्र ः—

प्रभु महावीर की निर्वाणभूमि जलमंदिर पावापुरी का मनमोहक तिरंगा चित्र.

चित्रकार धीरजलाल टो. शाह, मूल्य ०-२-० ।

प्रभु पार्श्वनाथ को मेघमाली का उपसर्गः अत्यंत भावपूर्ण जयंतीलाल झवेरी का चित्र. मूल्य ०-४-०.

ज्योति-कार्यालय,

हवेली की पोल, रायपुर-अहमदाबाद.

उपयोगी पुस्तकें.

महावीर जीवन विस्तार	०-१२-०
नमस्कार महामंत्र कल्प	०—८-०
मूर्तिपूजाका इतिहास	३—०-०
श्रीमान् लोंकाशाह	२—०-०
तत्वार्थ सूत्र	०—८-०
शीघ्रबोध भा. १ सें २२	११—८-०
मेरी मेवाडयात्रा	०—६-०
चिकागो प्रश्नोत्तर	०-१२-०
श्री जंबू नाटक	०—४-०
उवनिषद् रहस्य	०—२-०
सदाचार रक्षा	०—८-०
दण्डक (अर्थसहित)	०—४-०
इंद्रिय पराजय दिग्दर्शन	०—६-०

धी ज्योति कार्यालय लीमीटेड.

जुम्मा मस्जिद के सामने, अहमदाबाद.